भाकृअनुप
ICAR

पर्यावरण एवं जल संरक्षण विशेषांक

इक्षु

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 8 अंक 2
जुलाई–दिसंबर, 2019

भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
ISO 9001 : 2015

संस्थान को राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार से सम्मानित

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रशस्ति-पत्र

राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार

वर्ष 2017-18 के दौरान सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग में उल्लेखनीय योगदान के लिए भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ को बड़े संस्थानों की श्रेणी में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

दिनांक: 16 जुलाई 2019
नई दिल्ली

सचिव
(भा.कृ.अनु.प.)

महानिदेशक
(भा.कृ.अनु.प.)

इक्षु: राजभाषा पत्रिका
वर्ष 8 : अंक 2
जुलाई–दिसम्बर, 2019

इक्षु

संरक्षक एवं प्रकाशक
अश्विनी दत्त पाठक

सम्पादक
अजय कुमार साह

सह–सम्पादक
मनोज कुमार त्रिपाठी
ब्रह्म प्रकाश
अभिषेक कुमार सिंह

कला एवं छायांकन
विपिन धवन
योगेश मोहन सिंह
अवधेश कुमार यादव

भाकृअनुप ICAR

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226 002

ISO 9001 : 2015

© भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संस्थान अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अपने लेख एवं सुझाव भेजें :

संपादक, इक्षु एवं
प्रभारी, राजभाषा प्रकोष्ठ
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
पोस्ट : दिलकुशा, लखनऊ–226 002
ई–मेल : ikshuiisr@yahoo.in

वर्ष 2019 : संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य

डॉ. अश्विनी दत्त पाठक	अध्यक्ष
डॉ. सुधीर कुमार शुक्ल	सदस्य
डॉ. देवेन्द्र राम मालवीय	सदस्य
डॉ. (श्रीमती) राधा जैन	सदस्य
डॉ. महाराम सिंह	सदस्य
डॉ. अखिलेश कुमार सिंह (कृषि अभियंत्रण)	सदस्य
डॉ. एस.आई. अनवर	सदस्य
डॉ. ए.पी. द्विवेदी	सदस्य
वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी	सदस्य
श्री अतुल सचान	सदस्य
श्रीमती आशा गौड़	सदस्य
श्री अभिषेक कुमार सिंह	सदस्य
डॉ. अजय कुमार साह	सदस्य सचिव

प्रकाशक
निदेशक
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पोस्ट : दिलकुशा, लखनऊ 226 002
फोन : 0522–2961318 फैक्स : 0522–2480738
ई–मेल : director.sugarcane@icar.gov.in
वेबसाइट : www.iisr.nic.in

मुद्रित : आर्मी प्रिंटिंग प्रेस, 33, नेहरू रोड, सदर कैण्ट, लखनऊ–226002, फोन : 0522–2481164

डॉ. अश्विनी दत्त पाठक
निदेशक

निदेशक की लेखनी से..........

कृषि एवं सम्बद्ध उद्योग आज भी विश्व भर में करोड़ों लोगों की आजीविका सुरक्षा का सबसे बड़ा स्त्रोत है। खाद्य, फल, चारा, रेशा तथा ईंधन की बढ़ती मांग से कृषि का सघनीकरण हो रहा है। जनसंख्या में लगातार हो रही वृद्धि, शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण के कारण भूमि एवं जल का गैर कृषि कार्यों में उपयोग भी लगातार बढ़ रहा है। अतः पर्यावरण के सभी संसाधनों को संरक्षित करते हुए कृषि की उत्पादकता एवं लाभदेयता में वृद्धि करने के लिए हमें नवोन्मेषी कार्य करने होंगे।

पृथ्वी की सतह का 71 प्रतिशत अंश पानी से ढका होने के कारण ही पृथ्वी को 'ब्लू प्लेनेट' के नाम से भी जाना जाता है। इतनी अधिक मात्रा में जल की उपलब्धता के बावजूद मात्र 0.5% ही उपयोगी है। जबकि शेष 99.5% पानी समुद्र, ग्लेशियर बेसिन तथा वायुमंडल में विद्यमान है। भारत में पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता जो वर्ष 1947 में 6042 क्यूबिक मीटर थी, वर्ष 2001 तथा वर्ष 2011 में घटकर क्रमशः 1816 तथा 1545 क्यूबिक मीटर रह गई है। अनुमान है कि वर्ष 2021, 2031, 2041 तथा 2051 में यह और घटकर क्रमशः 1486, 1367, 1282 तथा 1228 क्यूबिक मीटर रह जाएगी। पानी की समस्या हमारे देश के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर समस्या है। किसी भी देश की कृषि क्षमता निर्धारित करने में जल एक महती भूमिका का निर्वहन करता है। वैश्विक जनसंख्या में भारत की भागीदारी लगभग 17 प्रतिशत है जबकि उपयोग में लाए जाने वाले जल की दृष्टि से हमारे देश में केवल 4 प्रतिशत जल उपलब्ध है जिसका 83 प्रतिशत उपयोग कृषि के लिए होता है। भारत वार्षिक रूप से 40 करोड़ हेक्टेयर मीटर के समतुल्य वर्षा जल प्राप्त करता है जिसमें से जल उपलब्धता क्षमता 18.69 करोड़ हेक्टेयर मीटर है। इसका केवल 6.9 करोड़ हेक्टेयर मीटर भूमिगत जल संसाधन के रूप में रहता है। इसमें से सिंचाई के लिए 2.13 करोड़ हेक्टेयर मीटर तथा घरेलू उपयोग, उद्योगों तथा अन्य कार्यों में 0.18 करोड़ हेक्टेयर मीटर का प्रयोग हो रहा है। भारत में भूजल का जहाँ सिंचित कृषि में 50% से भी अधिक का योगदान है वहीं यह दूसरी ओर पेयजल एवं औद्योगिक आवश्यकताओं के बड़े भाग को भी पूरा करता है।

भारत में वर्षा वितरण में भी अत्यंत विभिन्नता है। देश के पश्चिमी भाग के कुछ हिस्से में 100 मि.मी. से भी कम तथा उत्तर–पूर्वी भाग के कुछ स्थानों पर सर्वाधिक 11,800 मि.मी. वर्षा होती है। अतः वर्षा जल संरक्षण के लिए नए तालाबों का निर्माण, तालाबों का गहरीकरण करना, वर्षाजल का उपयोग कर भूजल की वृद्धि करना, मेड़ीकरण द्वारा खेत में वर्षा जल का संचयन करना, सतही जल एवं भूजल का संयोजित एवं संतुलित उपयोग, सिंचाई की नवीन पद्धतियों यथा ड्रिप एवं बौछारी विधि का उपयोग, पहाड़ी क्षेत्रों में ढालनुमा खेती कर वर्षा जल संचयन तथा जल उपलब्धता के आधार पर फसलों का चुनाव समय की आवश्यकता है। इन चुनौतियों के व्यापक सम्बोधन में प्रत्येक व्यक्ति को अपना सहयोग देना होगा। इसके लिए जल की उपलब्धता के अनुसार फसल योजना तैयार करके फसलों एवं किस्मों का चुनाव करना होगा तथा कृषि वानिकी व कृषि उद्यानिकी को बढ़ावा देना होगा। मुझे उम्मीद है कि इक्षु का यह विशेषांक हम सभी को पर्यावरण एवं जल संरक्षण की दिशा में जागरूक करते हुए आवश्यक रणनीति बनाने एवं कार्यान्वित करने हेतु प्रेरित करेगा।

स्थान : लखनऊ
दिनांक : 25 जनवरी, 2020

(अश्विनी दत्त पाठक)

डॉ. अजय कुमार साह
प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभारी, प्रसार व प्रशिक्षण
संपादक (इक्षु) एवं प्रभारी, राजभाषा प्रभाग

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002
ISO 9001 : 2015

'इक्षु—सार'

पर्यावरण शब्द का अर्थ है हमारे चारों ओर का वातावरण या परिवेश। पर्यावरण संरक्षण का तात्पर्य है कि हम अपने चारों ओर के वातावरण को संरक्षित करें तथा उसे जीवन के अनुकूल बनाएँ। पर्यावरण एवं जीव एक दूसरे के पूरक है। इसी कारण भारतीय दर्शन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना यहाँ मानव जाति का इतिहास है। भारतीय दर्शन के अनुसार मानव शरीर कि रचना पर्यावरण के पाँच महत्वपूर्ण घटकों– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश से हुई है। दीर्घायु तथा स्वस्थ मानव जीवन के लिए यह आवश्यक है कि पर्यावरण के इन सभी पाँच घटकों को प्रदूषित न करते हुये भविष्य के लिए संरक्षित किया जाय। विश्व भी भारत के इस दर्शन को सम्मान करता है। इसीलिए पर्यावरण की सुरक्षा तथा संरक्षण हेतु पूरे विश्व में प्रत्येक वर्ष 05 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। भारत सरकार ने वर्ष 1976 में पर्यावरण संरक्षण का विशेष संज्ञान लेते हुये संविधान में संसोधन कर नया अनुच्छेद 48A तथा 51A(G) जोड़े थे। अनुच्छेद 48A सरकार को निर्देश देता है कि वह पर्यावरण की सुरक्षा करे तथा अनुच्छेद 51A(G) नागरिकों को पर्यावरण कि रक्षा के लिए प्रेरित करता है।

पर्यावरण संरक्षण के विरोधाभास में प्रगति के नाम पर मानव द्वारा पर्यावरण को विकृत करने का प्रयास हो रहा है। अगर हम कृषि की बात करें तो मृदा का अनावश्यक दोहन, रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग तथा भूजल का अत्यधिक दोहन से खेती के लिए आवश्यक इन संसाधनों के गुणवत्ता तथा उपलब्धता पर संकट खड़ा हो गया है। देश के कई हिस्सों में खेती के लिए उपलब्ध जमीन बंजर होता जा रहा है, भूजल स्तर प्रति वर्ष लगातार नीचे जा रहा है। इन कारणों से लाखों किसानों के आजीविका पर प्रश्न चिन्ह सा लगता दिखाई दे रहा है। जल संकट कि समस्या को गंभीरता से लेते हुये भारत सरकार ने पिछले वर्ष जल शक्ति मंत्रालय का गठन किया जिससे जल संसाधन को संरक्षित करने हेतु अधिक समग्र तथा उपयोगी नीति बनाकर पूरे देश में तीव्र गति से लागू किया जा सके। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले 'मन की बात' कार्यक्रम के एक अंक में जल संकट पर बोलते हुये अपने विचार साझा करते हुये विभिन्न क्षेत्र के विशिष्ट हस्तियों से जल संरक्षण के क्षेत्र में नवोन्मेषी कार्य करने का आग्रह किया था।

कुछ लोग यह मानते हैं की पर्यावरण संरक्षण के लिए कार्य करना सिर्फ सरकार या कुछ संस्थाओं की जिम्मेदारी है। यह निरर्थक सोच है, वास्तव में पर्यावरण संरक्षण समाज के हर वर्ग तथा हर नागरिक की जिम्मेदारी है। प्रत्येक व्यक्ति जब इस अभियान से जुड़ेगा, तभी हम पर्यावरण को वर्तमान तथा भविष्य के लिए संरक्षित कर पाएंगे।

पर्यावरण एवं जल संरक्षण पर आधारित "इक्षु" का विशेष अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुये मुझे अति हर्ष की अनुभूति हो रही है। इस अंक में विभिन्न लेखकों द्वारा पर्यावरण तथा जल संकट एवं उसके संरक्षण से संबन्धित विषयों पर रुचि पूर्ण आलेख प्रस्तुत किया गया है जो इस विशेषांक को सार्थकता प्रदान करता है। प्रस्तुर जानकारी पाठकों को इस दिशा में कार्य करने हेतु प्रेरित करेगा, साथ ही हम सभी को मार्गदर्शन प्रदान करेगा।

इस अंक में योगदान के लिए सभी लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करते हुये भविष्य में भी आप सभी से बौद्धिक सहयोग की अपेक्षा करता हूँ।

स्थान : लखनऊ
दिनांक : 25 जनवरी, 2020

(अजय कुमार साह)

इक्षु: राजभाषा पत्रिका
राजभाषा प्रकोष्ठ की अर्धवार्षिक पत्रिका
वर्ष 8 : अंक 2
जुलाई–दिसम्बर, 2019

विषय वस्तु

राजभाषा प्रभाग 1–7

राजभाषा विभाग एवं सहयोगी पत्रिकाएँ : एक परिचय 1
कृष्णवीर सिंह सिकरवार

राष्ट्रभाषा हिंदी ही क्यों? 4
अभिषेक कुमार सिंह, ब्रह्म प्रकाश, अखिलेश कुमार सिंह एवं अजय कुमार साह

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग 8–80

वर्षा–जल संचयन: जल संरक्षण की ओर एक कदम 8
संगीता श्रीवास्तव एवं राघवेन्द्र कुमार

कृषि में जल संरक्षण की विधियाँ 12
मीना निगम, विजय प्रकाश जायसवाल एवं आशा गौड़

कृषि में जल संरक्षण 14
ओम प्रकाश, ब्रह्म प्रकाश, अजय कुमार साह, पल्लवी यादव एवं अश्विनी दत्त पाठक

कृषि में जल संरक्षण एवं प्रबंधन 19
हिमांशु राय

खेती के लिए जल सरंक्षण परमावश्यक 23
राम किशोर

कृषि में जल संरक्षण कैसे करें ? 25
दिव्या साहनी, पल्लवी, वी.पी. जायसवाल, लालन शर्मा एवं आशा गौड़

कृषि में जल संरक्षण 28
आकांक्षा विश्वकर्मा

कृषि में जल संरक्षण के उपाय 30
राम लखन शाक्य, अनुज कुमार, अनिल कुमार मौर्य एवं उपेन्द्र यादव

वर्षा जल संरक्षण एवं प्रबंधन 32
रंजय कुमार सिंह

प्रदूषण का पौधों और जंतुओं पर प्रभाव 34
दीपक कोहली

चुकंदर के जैविक ऊर्जा एवं औद्योगिक उपयोगिता में बायोइन्फॉर्मेटिक्स से कितना फायदा? 37
राघवेन्द्र कुमार, संगीता श्रीवास्तव, मीर आसिफ इकबाल, सारिका जयसवाल एवं दिनेश कुमार

गन्ने में समेकित खरपतवार प्रबंधन 43
आदित्य प्रकाश द्विवेदी, वेद प्रकाश सिंह, मनोज कुमार त्रिपाठी, के.के. सिंह एवं अभिषेक कुमार सिंह

गन्ने के प्रमुख खरपतवार एवं उनकी रोकथाम 45
हिमांशु वर्मा

लवण प्रभावित समस्याग्रस्त मृदा को कैसे बनाएँ उपजाऊ ? 48
प्रशान्त देव सिंह, आनन्द सिंह, अभिलाषा पाठक एवं उदय प्रताप शाही

चुकन्दर के प्रमुख रोग एवं उनका नियंत्रण 51
राम जी लाल, वरूचा मिश्रा, आशुतोष कुमार मल्ल, मुकेश कुमार एवं अश्विनी दत्त पाठक

गन्ने में पादप वृद्धि नियमक तथा पोषक तत्वों के साथ इनके क्रमिक प्रयोग का अंकुरण, कार्यकीय तथा उत्पादकता लक्षणों पर प्रभाव 58
राधा जैन, अंशु सिंह, सी.पी. सिंह, एस.पी. सिंह एवं अमरेश चन्द्रा

जड़ों के आस–पास के मूल परिवेश मृदा में पेड़ी गन्ना की उत्पादकता की महत्ता 61
राम सिंह, रवि कान्त पाण्डेय, मंजू, राजीव कुमार, आर.एस. चौरसिया, अनम एवं पुष्पा सिंह

प्रदूषित मृदा के जैविक उपचार में ट्राईकोडर्मा का महत्व 65
मोनिका उपाध्याय, उमेश कुमार त्रिपाठी एवं दीक्षा जोशी

वर्तमान जलवायु परिवर्तन परिदृश्य में गन्ने में सिलिका की भूमिका 67
राजीव कुमार, पुष्पा सिंह, राधा जैन, अमरेश चन्द्रा, सी.के. गुप्ता, आर.आर. वर्मा एवं आर.के. सिंह
रसायन रहित विधि से फलों को पकाना 68
शिव पूजन, देवेन्द्र पाण्डेय, देवेश पाण्डेय, अंकित कुमार पाण्डेय एवं स्वप्निल पाण्डेय
पर्यावरण संरक्षण 70
सी.पी. प्रजापति, आर.एस. चौरसिया एवं अनीता सावनानी
मृदा स्वास्थ्य एवं समृद्धि हेतु जैविक खेती अपनायें 71
रेनू आर्या, सोनम आर्या एवं आर.एल. आर्या
फसलों में पोषक तत्वों के कार्य एवं महत्व 75
मोहन सिंह एवं आर.के. सिंह
बदलते परिवेश में गृह वाटिका की उपयोगिता 78
सत्यम चौरिहा एवं ममता त्रिपाठी

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग 81–97
गुड़ की उपयोगिता 81
मिथिलेश तिवारी, राजीव रंजन राय, दिलीप कुमार एवं एस.आई. अनवर
औषधीय गुणों वाला फल : आँवला 82
ब्रह्म प्रकाश, लाल सिंह गंगवार, अश्विनी कुमार शर्मा, अनीता सावनानी, अतुल कुमार सचान एवं ओम प्रकाश
सोयाबीन एवं स्वास्थ्य 88
कविता बिष्ट, योगेन्द्र प्रताप सिंह एवं पंकज
महिलाओं के स्वास्थ्य स्थिति का आंकलन 90
शालिनी श्रीवास्तव
कीटनाशकों के प्रभावी प्रयोग हेतु यंत्र, उचित उपयोग एवं सावधानियाँ 92
एस.एन. सुशील एवं दीक्षा जोशी
चुकन्दर अतिथि के लिए परोसे 97
मिथिलेश तिवारी, राजीव रंजन राय, दिलीप कुमार, एस.आई. अनवर एवं ए.के. सिंह

आमोद–प्रमोद प्रभाग 98–104
लघु उद्योग प्रदर्शनी 98
आशा यादव एवं सुधीर कुमार
दृष्टिकोण 99
सी.पी. सिंह एवं देवेंद्र सिंह
सभ्य व्यक्ति की पहचान 100
आर.के. सिंह एवं आर.एस. चौरसिया
पर्यावरण : कारण और निवारण 101
सुरेश कुमार
पानी पीते समय रखें ये ध्यान, नहीं होगा स्वास्थ्य को कोई नुकसान 102
ब्रह्म प्रकाश
हिंदी है भारत की भाषा 103
सी.पी. प्रजापति
परिणाम 103
राम जी लाल
प्रकृति के प्रति आभार 104
अरूण कुमार
नराकास प्रभाग
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–3), लखनऊ छमाही प्रगति 105
शब्दकोश 106
समाचार प्रभाग 111

राजभाषा प्रभाग

राजभाषा विभाग एवं सहयोगी पत्रिकाएँ : एक परिचय

कृष्णवीर सिंह सिकरवार
राजीव गाँधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, एयरपोर्ट रोड, भोपाल

राजेन्द्र यादव का अंतिम भाषण, दृश्यांतर मासिक पत्रिका, सितम्बर 2013, दूरदर्शन नई दिल्ली, पृष्ठ : 71

हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की प्रथम राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। चीनी भाषा के बाद यह विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा भी है। हिंदी और इसकी बोलियाँ उत्तर एवं मध्य भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिंदी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। इसके अलावा भारत, पाकिस्तान और अन्य देशों में 14.1 करोड़ लोगों द्वारा बोली जाने वाली उर्दू मौखिक रूप से हिंदी के काफी समान है। लोगों का एक विशाल बहुमत हिंदी और उर्दू दोनों को ही समझता है। भारत में हिंदी विभिन्न भारतीय राज्यों की 14 आधिकारिक भाषाओं और क्षेत्र की बोलियों का उपयोग करने वाले लगभग 1 अरब लोगों में से अधिकांश की दूसरी भाषा है। हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, सम्पर्क भाषा, जनभाषा के स्तर को पार कर विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। भाषा विकास क्षेत्र से जुड़े वैज्ञानिकों की भविष्यवाणी हिंदी प्रेमियों के लिए संतोषजनक है कि आने वाले समय में विश्वस्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की जो चंद भाषाएँ होगीं उनमें हिंदी भी प्रमुख होगी। हम प्रति वर्ष 14 सितम्बर का दिन 'हिंदी दिवस' के रूप में बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। 14 सितम्बर, 1949 के दिन संविधान में हिंदी को राजभाषा घोषित करने वाली धारा स्वीकृत की थी। हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है अतः इसके प्रति अपना प्रेम और सम्मान प्रकट करना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य ही नहीं, नैतिक जिम्मेदारी भी है। आज हिंदी भाषा के महत्व को सरकार ने भी समझा है और अधिकतर शासकीय संस्थानों, कार्यालयों, बैंकों एवं शिक्षण संस्थाओं में हिंदी में ही कार्य करने हेतु आदेश भी प्रसारित किए हैं तथा आम नागरिकों से अपील भी की है कि वे अपना समस्त कार्य हिंदी में कर राष्ट्रहित में योगदान प्रदान करें। एक समय था जब समस्त शासकीय एवं गैर शासकीय औषधि केंद्रों पर मिलने वाली दवाईयों पर अंग्रेजी में ही जानकारियाँ मुद्रित रहती थी जिसके कारण आम नागरिकों को पढ़ने में परेशानी का सामना करना पड़ता था। इस समस्या को समझते हुए सरकार ने समस्त औषधि केंद्रों पर मिलने वाली दवाईयों को अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिंदी में भी मुद्रित कर बिक्री हेतु भेजा जाना अनिवार्य किया। अब आम नागरिक को दवाई की बोतल पर लिखी समस्त जानकारियों जैसे दवाई का बैच नम्बर, दवाई की उत्पादन तिथि, दवाई की खत्म होने की तिथि आदि सभी जानकारियाँ हिंदी में ही लिखी मिल रही हैं। हिंदी दिवस हम सभी को यह जानने का भी अवसर प्रदान करता है कि हम रोजमर्रा की जिंदगी में हिंदी का कितना प्रयोग करते हैं। हम अपने-अपने कार्यालयों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करते हुए राजभाषा के महत्व को समझें एवं उसके विकास में योगदान भी प्रदान करें तभी हमारी हिंदी को देश में राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने का बल मिलेगा। यह कार्य किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि समस्त नागरिकों की एक नैतिक जिम्मेदारी भी है। राजभाषा एवं उसकी सहयोगी पत्रिकाओं पर कुछ कहने से पहले हिंदी पत्रिकाओं के वर्तमान परिदृश्य से पाठकों का परिचय कराना आवश्यक है। आज हिंदी में देश से कई छोटी बड़ी साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं एवं इन पत्रिकाओं का पाठक वर्ग भी बहुतायत में है जो इनको खरीदता व पढ़ता है। इस दृष्टि से इनकी स्थिति सुदृढ़ कहीं जा सकती है। इन पत्रिकाओं की लोकप्रियता का कारण यह भी है कि कम कीमत में यह पाठकों तक पहुँच जाती हैं और इनके पाठकों को खरीदकर पढ़ने में कोई गुरेज भी नहीं होता है। इनकी बिक्री भी दिनों-दिन संतोषजनक होती जा रही है। यह पत्रिकाएँ आज व्यापक रूप से प्रकाशित हो रही हैं व इनका क्षेत्र फैलता जा रहा है। पाठक इन पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक क्षेत्र में हो रही घटनाओं की जानकारी व हिंदी के प्रतिष्ठित रचनाकारों की लेखनी की जानकारी प्राप्त होती रहती है। देश में कई पुरानी पत्रिकाएं बेहतर प्रचार-प्रसार के अभाव में व पाठक न मिलने के कारण बन्द भी हो रही हैं फिर भी हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का एक अपना बाजार है जो इनको जिंदा बनाये रखे हुये है। आम लोगों के जीवन में बढ़ते हुए कम्प्यूटर व इन्टरनेट के कदम को देखते हुए कुछ पत्रिकाएँ सीधे वेबजाल पर भी प्रकाशित की जा रही हैं। यह एक सराहनीय कदम है क्योंकि वेबजाल पर प्रकाशित होने से यह पत्रिकाएं देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी बैठे प्रवासी भारतीय पाठक भी आसानी से इन पत्रिकाओं को पढ़ सकते हैं। इस प्रक्रिया से इन पत्रिकाओं के विदेश मे भेजने का डाक खर्च भी बच जाता है जो कि काफी ज्यादा होता है और पत्रिका भी काफी समय बाद पाठकों तक पहुँचती थी। अब पाठकों को पत्रिका सीधे वेबजाल

पर पढ़ने को मिल जाती है। इस लिहाज से वेबजाल पर पत्रिकाओं का प्रकाशन पाठकों के दृष्टिकोण से लाभप्रद ही माना जायेगा। एक अनुमान के मुताबिक देश में आज 15 हजार से अधिक *आई. एस.एस.एन.* वाले *जर्नल* और शोध पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। भारत दुनिया में सर्वाधिक पंजीकृत पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित करने वाला देश है। चीन के बाद दुनिया भर में दूसरे स्थान पर सर्वाधिक प्रतियाँ भारत से ही प्रकाशित हो रही हैं। 31 मार्च 2014 तक देश में 94,067 पत्र पत्रिकाएँ पंजीकृत थे। इनमें से 8,155 आवधिक और शेष 12,511 दैनिक प्रकाशन हैं। इनमें हिंदी भाषा की पत्र पत्रिकाएँ सर्वाधिक है। उत्तर प्रदेश से सर्वाधिक पंजीकृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। यह पत्रिकाएं आज व्यापक रूप से प्रकाशित हो रही हैं व इनका क्षेत्र फैलता जा रहा है। पाठकों को पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक क्षेत्र में हो रही हर छोटी-बड़ी घटनाओं की जानकारी हिंदी के नए पुराने रचनाकारों की लेखनी से प्राप्त होती रहती है। इस संबंध में स्व. राजेन्द्र यादव जी के अंतिम भाषण के रूप में दृश्यातंर मासिक पत्रिका में दर्ज लघु पत्रिकाओं के संबंध में विचारों को जानना जरूरी है वे कहते हैं कि-आप विश्वास कीजिए साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक सब मिलाकर पाँच, सात पत्रिकाएँ तो रोज मेरे पास आती हैं। ये वे हैं जो आती हैं, न जाने कितनी और हैं जो नहीं आती। हिंदी में आज करीब दो से ढाई हजार पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं और उनको पलटना तक मुश्किल है। इसलिए यह कहना कि हिंदी में पत्रिकाएँ नहीं हैं, गलत है। मुझे लगता है कि पत्रिका में जो चीज विशिष्ट होती है वह है रचनाएँ। कई पत्रिकाओं में हम एक ही तरह की चीजें पाते हैं। कोई भी विषय लें जैसे उपन्यास पर केंद्रित पत्रिका 'उपन्यास' नाम से ही निकलती थी। जैसे आलोचना पर केंद्रित पत्रिका है और कविताओं पर तो खैर जरूरत ही नहीं कुछ कहने की। मेरा ख्याल है कि 50 पत्रिकाएँ ऐसी हैं जो सिर्फ कविताओं से भरी रहती हैं जिन्हें कोई पढ़ता है या नहीं, मालूम नहीं। हर अच्छी पत्रिका में संपादक को एक लीक पर चलना होता है कि उसने 20-25 पन्ने कविता के रंग डाले और जान छूट गई, और कुछ सोचने की जरूरत ही नहीं। (1) हिंदी में प्रकाशित होने वाली साहित्यिक लघु पत्रिकाओं की स्थिति बेहतर कही जा सकती है क्योंकि एक तो इनकी कीमत कम होती है व आसानी से यह पत्रिकाएँ पाठकों को रेलवे स्टेशन, बस स्टैण्ड एवं देश के प्रत्येक शहरों में खुले पत्रिकाओं के स्टॉल पर प्राप्त हो जाती हैं। अतः इन पत्रिकाओं की स्थिति बेहतर ही मानी जा सकती है। हिंदी निदेशालय हिंदी की दशा व दिशा तय करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पत्रिका 'राजभाषा भारती' अर्थात् विद्या की देवी माँ सरस्वती की वाणी की पत्रिका का प्रकाशन करता है। राजभाषा भारती संघ की राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा प्रोत्साहन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका है, जिसे राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका का प्रथम अंक अप्रैल 1978 में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के प्रथम सचिव श्री रमाप्रसन्न नायक के कार्यकाल तथा श्री राजमणि तिवारी के संपादन में प्रकाशित हुआ था। राजभाषा विभाग के दायित्वों में हिंदी के प्रगामी प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी एक प्रमुख दायित्व है। यह पत्रिका न केवल उस दायित्व का निर्वाह करती है वरन् संपूर्ण संघ सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/कार्यालयों आदि में हिंदी संबंधी गतिविधियों के वृहत प्रचार हेतु एक औपचारिक मंच भी प्रदान करती है। पत्रिका का वितरण केंद्र सरकार के मंत्रालयों/कार्यालयों आदि के बीच निःशुल्क किया जाता है। वर्तमान में इस पत्रिका के संपादक श्री हरिन्द्र कुमार जी हैं। सहायक संपादक श्री राकेश शर्मा 'निशीथ' जी हैं। पत्रिका का कलेवर व सामग्री उच्च स्तरीय है जो पाठकों पर अपनी छाप छोड़ने में सहायक सिद्ध हो रही है। पत्रिका की बेवसाइट www.rajbhasha.gov.in पर कई अंकों को पीडीएफ फाइल के रूप में पाठकों हेतु रखा गया है जिसे आसानी से अवलोकन किया जा सकता है।

राजभाषा विभाग, *गार्डन रीच शिपबिल्डर्स एण्ड इंजीनियर्स लिमिटेड, कोलकाता* से अर्धवार्षिक हिंदी पत्रिका 'राजभाषा जागृति' का प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका की संपादिका, श्रीमती सुनीता शर्मा, उपमहाप्रबंधक (राजभाषा) है। पत्रिका में विविध लेखों के अलावा पर्यटन, अध्यात्म, कविताएँ, तकनीकी लेख, मुद्दा, राजभाषा की गतिविधियाँ, स्वास्थ्य, कैमरे की नजर से, निगमित सामाजिक दायित्व आदि के तहत प्रकाशित ज्ञानवर्धक सामग्री पाठकों के लिए उपयोगी होती है। हाल ही में पत्रिका का 12वाँ अंक प्रकाशित हुआ है जो पत्रिका की बेवसाइट www.grse.nic.in पर पाठकों के अवलोकन हेतु रखा गया है। पत्रिका का वितरण केंद्र सरकार के मंत्रालयों/कार्यालयों आदि के बीच निःशुल्क किया जाता है।

स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली से द्वैमासिक पत्रिका 'इस्पात भाषा भारती' का प्रकाशन पिछले 10 वर्षों से निरंतर किया जा रहा है। पत्रिका के मुख्य संपादक श्री सुशील वातल एवं संपादक श्री हीरा बल्लभ शर्मा जी हैं। पत्रिका में जल संरक्षण, जल और ऊर्जा, साहित्यिक आलेख, स्वास्थ्य, राजभाषा की गतिविधियाँ, कविताएँ एवं विविध के तहत पठनीय सामग्री को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका का वितरण निःशुल्क किया जाता है। राजभाषा विभाग की ओर से स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर के लिए प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका का शीर्षक है 'उपवन'। पत्रिका के

प्रधान संपादक श्री सुनील दत्त बाली, सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा) एवं संपादक, श्री विनय कुमार सिंह, प्रबंधक (राजभाषा) है। यह त्रैमासिक पत्रिका पिछले 29 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है। पत्रिका में बैंक की गतिविधियों की सम सामयिक जानकारी के साथ-साथ, राजभाषा हिंदी के ऊपर ज्ञानवर्धक आलेख, हिंदी साहित्य की लोकप्रिय सामग्री, स्वास्थ्य, धार्मिक चर्चा को भी प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता है। राजभाषा विभाग, भारतीय स्टेट बैंक, कॉरपोरेट केन्द्र, मुम्बई की तिमाही पत्रिका 'प्रयास' का प्रकाशन करता है। पत्रिका के संपादक श्री ए.वी. ब्रह्माराव, महाप्रबंधक (राजभाषा एवं *कॉरपोरेट* सेवाएँ) हैं। पत्रिका में बैकिंग, तकनीकी, भाषा, व्यक्तित्व, सम-सामयिक, व्यंग्य, संस्कृति, कविताएँ एवं विविध के तहत प्रकाशित पुस्तक समीक्षाएँ पाठकों हेतु महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती है। यह त्रैमासिक पत्रिका पिछले 27 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है। पत्रिका का माह अक्टूबर-दिसंबर, 2015 का अंक जो 'विश्व हिंदी दिवस विशेषांक' के रूप में प्रकाशित हुआ था। यह अंक अपनी उच्च स्तरीय सामग्री के कारण पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय हुआ था। इस अंक में राजभाषा हिंदी के ऊपर प्रकाशित शोध आलेख शोधार्थियों के लिए बहुमूल्य साबित हो सकते हैं। बैंक ऑफ बड़ौदा, मुम्बई की हिंदी तिमाही पत्रिका का शीर्षक है 'अक्षय्म्'। पत्रिका के कार्यकारी संपादक, श्री रवि कुमार अरोरा, महाप्रबंधक (राजभाषा प्रभारी) एवं संपादक, श्री डॉ. जवाहर कर्नावट, सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा) हैं। यह त्रैमासिक पत्रिका पिछले 12 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका केवल राजभाषा हिंदी के विकास के लिए ही नहीं बल्कि बैंक के व्यावसायिक संप्रेषण के लिए भी एक सशक्त माध्यम साबित हो चुकी है। इसका प्रमाण इस पत्रिका में प्रकाशित बैंकिग विषयों सहित विविध आलेखों से मिलता है। पत्रिका का वितरण *बैंक ऑफ बड़ौदा* की सभी शाखाओं/कार्यालयों में निःशुल्क किया जाता है। पाठक भी पत्रिका के कार्यालय में संपर्क कर इसे निःशुल्क मंगा सकते है। कार्पोरेशन बैंक, राजभाषा प्रभाग, मंगलूर, कर्नाटक से तिमाही हिंदी गृह पत्रिका 'मंगला' का प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिका के मुख्य संपादक डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल, उप महाप्रबंधक (स्वतंत्र प्रभार) एवं संपादक, श्री अम्बरीश कुमार सिंह, मुख्य प्रबंधक हैं। पत्रिका में हिंदी भाषा के ऊपर केन्द्रित आलेख प्रमुखता से प्रकाशित किये जाते हैं एवं साहित्यिक रचनाओं को भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशित किया जाता है।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक), हैदराबाद की छमाही पत्रिका 'भारती' का प्रकाशन करता है। पत्रिका के संपादक मंडल में डॉ. विष्णु भगवान, सदस्य सचिव, *स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद;* श्री प्रेम कुमार, इण्डियन ओवरसीज बैंक; डॉ. अरूण कुमार इंगले, *भारतीय स्टैट बैंक;* श्री उमेश चन्द्र पाण्डेय, इंडियन बैंक; श्री शेख मस्तान बली, *इलाहाबाद बैंक;* श्री राजेन्द्र वर्मा, *सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया;* श्रीमती कंचनलता पाण्डेय, भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक आदि। पत्रिका में साहित्यिक घटनाओं के साथ-साथ बैंक की गतिविधियों की जानकारी भी प्रकाशित की जाती है। दक्षिण स्थित सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की राजभाषा समिति की हिंदी पत्रिका 'भारत भारती' का प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका में बैंकिंग गतिविधियों की जानकारी के साथ-साथ सम सामयिक घटनाओं की जानकारी पत्रिका में प्रमुखता के साथ प्रकाशित की जाती है। 'प्रागज्योतिका' नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (उपक्रम), गुवाहाटी की यह वार्षिक पत्रिका सिर्फ एक पत्रिका मात्र नहीं, अपितु सदस्य कार्यालयों का प्रतिबिम्ब है जिसमें समूचे संगठनों की राजभाषा गतिविधियों की झलक मिलती है। प्रागज्योतिका के माध्यम से सभी सदस्यों ने अपनी सर्जक प्रतिभा से हिंदी के प्रति लगाव को दर्शाया है। पत्रिका की संपादिका बिनीता ब्रह्म, सदस्य सचिव, नराकास (उपक्रम), गुवाहाटी हैं। समग्रतः यह आसानी से कहा जा सकता है कि राजभाषा के ऊपर केन्द्रित विभिन्न पत्रिकाएँ आज प्रचुर मात्रा में निकल रही हैं। शासकीय स्तर पर किया जा रहा इनका बेहतर प्रचार-प्रसार इन पत्रिकाओं की स्थिति को मजबूती प्रदान कर रहा है। इनमें से कई पत्रिकाओं का वितरण केवल आंतरिक केंद्रों के मध्य निःशुल्क किया जा रहा है। पाठक द्वारा उपरोक्त वेबसाइट पर जाकर इन पत्रिकाओं को आसानी से देखा व पढ़ा जा सकता है। इन पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री किसी भी शोधार्थी के लिए लाभप्रद साबित हो सकती है। अतः एक बार अवश्य ही पाठकों को इन पत्रिकाओं का अवलोकन करना चाहिए और इनमें प्रकाशित सामग्री से लाभ उठाना चाहिए। उपरोक्त पत्रिकाओं के अलावा भी कुछ अन्य पत्रिकाओं का प्रकाशन राजभाषा विभाग द्वारा किया जा रहा है उनकी जानकारी स्थानाभाव के कारण नहीं दी गयी है। भारत शुरू से ही आध्यात्मिक व साहित्यिक विधा का गढ़ रहा है जहाँ पर प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष के निवासी रामायण, महाभारत, श्रीमतभगवद्गीता, वेद, पुराण आदि ग्रंथों का रसास्वादन करते चले आ रहे हैं एवं यह सिलसिला आज भी बदस्तूर चालू है। साहित्यिक विधा हमेशा से ही पाठकों के बीच लोकप्रिय रही है। आज भी पाठकों के बीच कई हजार छोटी-बड़ी साहित्यिक पत्रिकाएँ व हिंदी पुस्तकें हमारे देश से प्रकाशित हो रही हैं जो पाठकों के बीच लगातार अपनी उपस्थिति बनाए हुए है। जरूरत केवल इन पुस्तकों व पत्रिकाओं को बेहतर प्रचार व प्रसार की है ताकि जनमानस तक इनको सीधे पहुँचाया जा सके। सरकार को भी इस दिशा में कुछ निर्णय लेने होगें, ताकि साहित्य की यह स्वस्थ परंपरा हमेशा कायम रह सके।

राजभाषा प्रभाग

राष्ट्रभाषा हिंदी ही क्यों?

अभिषेक कुमार सिंह, ब्रह्म प्रकाश, अखिलेश कुमार सिंह एवं अजय कुमार साह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कहा जाता है कि भारत में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पानी के साथ-साथ भाषा भी बदल जाती है। भारत की आजादी के पूर्व इस देश में बहुत सारी रियासतें थी। इन रियासतों में जिस राजा का शासन होता था, वह अपनी भाषा को आगे बढ़ता था। इसी क्रम में भाषाओं का बटवारा हुआ। इसी क्रम में भाषा वैज्ञानिक ग्रियर्सन के अनुसार आर्य परिवार की भाषाओं का क्रम कुछ निम्नवत था:

1. वैदिक संस्कृत
2. लौकिक संस्कृत
3. पाली (बौद्ध युग)
4. साहित्यिक प्राकृतें (प्राकृत युग)
5. अपभ्रंष भाषाएं (अपभ्रंश युग)
6. आधुनिक भारतीय भाषाएं (आधुनिक युग) खड़ी बोली हिंदी सहित

विद्वानों का मानना है कि ऋग्वेद की रचना वैदिक संस्कृत में की गई है। ऋग्वेद की रचनाओं में हमें प्राचीनतम आर्यभाषा की बानगी मिलती है। उस समय साहित्यिक संस्कृत के रूप में व्याकरण को भी विकसित किया जा रहा था, लेकिन संस्कृत भाषा में थोड़ी कठिनाई होने की वजह से वह धीरे-धीरे बोल-चाल की भाषा से हटने लगी और दूसरी भाषाएं बोल-चाल में आने लगी। भगवान बुद्ध के उपदेशों और अशोक की धर्मलिपियों को देखने के बाद यह ज्ञात होता है कि पाली उस समय बोलचाल की भाषा के साथ ही साथ धीरे-धीरे साहित्यिक भाषा के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। बौद्ध धर्म के आगे बढ़ने के समय में पाली भाषा का भी अत्यंत विकास एवं प्रसार हुआ तथा साथ ही इस भाषा को दिन पर दिन और सरल बनाया जाने लगा। जितनी तेजी से पाली भाषा का विकास हो रहा था उतनी ही तेजी से संस्कृत भाषा का जटिल स्वरूप भी समाप्त हो रहा था।

संस्कृत

संस्कृत का प्रचलन 5,000 वर्ष ई. पू. से 500 वर्ष ईसा पूर्व तक माना जाता है। उस समय संस्कृत के दो रूप देखने को मिलते हैं: वैदिक एवं लौकिक। वैदिक संस्कृत में चारों वेदों तथा वैदिक वाङ्घ्मय की रचना की गई थी। लौकिक संस्कृत बोलचाल एवं लौकिक साहित्य की भाषा थी जिसका मानक रूप पाणिनी ने दिया था।

प्राकृत

संस्कृत भाषा जब साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी तो जन भाषा उससे भिन्न हो गई जिसे प्राकृत भाषा का नाम दिया गया। समय के साथ-साथ, प्राकृत भाषा के भी कई भेद हो गये जैसे- शौरसेनी, महाराष्ट्री, मगधी एवं पैशाची आदि।

अपभ्रंष

कालचक्र बढ़ता गया और प्राकृत में ढ़ेर सारी रचनाऐं लिखी जाने लगीं, जिससे यह भी संस्कृत की तरह काफी नियमों में बंधकर साहित्य भाषा के रूप में जानी जाने के कारण जन-भाषा पुनः उससे पृथक होने लगी। तब एक अलग अपभ्रंष भाषा ने जन्म लिया जिससे अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं का उद्‌गम हुआ।

हिंदी भाषा का विकासः- आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के साथ ही हिंदी भाषा के विकास की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। खड़ी बोली या खिचड़ी भाषा के रूप में पहचानी जाने वाली हिंदी भाषा का वास्तविक विकास निम्नलिखित चार चरणों में हुआ माना जा सकता है:

1. आदिकाल (मुगलकाल से पूर्व का हिंदू शासन काल)
2. मध्य काल (मुस्लिम शासन काल)
3. आधुनिक काल (ब्रिटिश शासन काल) और
4. वर्तमान काल (आजादी के बाद का काल)

आदिकाल

संस्कृत और प्राकृत की छिट-पुट रचनाओं के साथ अपभ्रंश भाषाओं का प्रयोगकाल आदिकाल में रहा। जैनाचार्य हेमचंद की रचनाओं और संत गोरखनाथ के छंद में भी खड़ी बोली हिंदी की छाया दिखाई देती है। इसी के साथ ही दिल्ली के महाराजा पृथ्वीराज चौहान और महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात कवि चंदरबरदाई द्वारा रचित काव्य पृथ्वीराज रासो को इस काल की रचना की श्रेणी में रखा गया है।

मध्य काल

मध्यकाल के पूर्व भाग में अनेक निर्गुण निराकार संत कवियों

की रचनाओं की प्रधानता देखने को मिलती है जिनमें मुख्य हैं- संत रैदास, संत कबीर, गुरू नानक, नामदेव आदि। इन सबकी रचनाओं में पंजाबी, ब्रज, अवधी और राजस्थानी आदि का मिला-जुला रूप सामने आता है। उसी समय उत्तर भारत में उर्दू ने भी जन्म लिया और खड़ी बोली दक्षिणांचल में जाकर दक्खिनी कहलाई। उत्तर मध्यकाल में राजकाज की भाषा फारसी के साथ ही साथ उस दौरान साहित्य में ब्रज और रीतिकाल के रूप में सृजन किया गया। इस काल में हिंदी भाषा को साहित्य और कला के रूप में जमकर प्रोत्साहन मिला। यहाँ आते-आते हिंदी ने अरबी, फारसी और तुर्की के शब्दों को आत्मसात करना प्रारंभ कर दिया क्योंकि मुगलकाल में दिल्ली व्यापार का बड़ा केंद्र बन गया था, जहाँ मुस्लिम व्यापारियों ने बाजार के साथ-साथ पूरे जन-जीवन को प्रभावित किया था।

खड़ी बोली

खड़ी बोली की शुरूआत भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना से हुई। उन्नीसवी सदी में खड़ी बोली के प्रसार में सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संस्थाओं के प्रचार और उद्बोधन साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहा। साथ ही उस समय किये गये आन्दोलन का भी बहुत बड़ा योगदान रहा चाहे वह आर्य समाज का आन्दोलन हो या स्वामी दयानंद सरस्वती का वैदिक धर्म आन्दोलन या फिर देवकीनंदन खत्री की रोचक, तिलस्मी और अय्यारी कथाएं हों, इन सबने अपने भाषणों, ग्रथों और प्रकाशनों तथा प्रचार साहित्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया। इसका कारण था कि देश की अधिकांश जनता भारतीय भाषाओं के इस स्वरूप को अच्छी तरह जानती-समझती थी। जिस भाषा में जनता से संवाद किया जा सकता है वही भाषा उस समय लागू होती है। उधर स्वतंत्रता आन्दोलन की मांग थी कि जन-चेतना का संवाद किस भाषा में स्थापित हो? उस समय देश में अंग्रेजी जानने वाले मात्र तीन प्रतिशत लोग थे तो ब्रज केवल काव्य की ही श्रेष्ठ भाषा बनकर रह गई। अतः आम बोलचाल में इसका प्रयोग नगण्य ही था। खड़ी बोली हिंदी या हिंदुस्तानी ही सामान्य बोलचाल की एकमात्र ऐसी भाषा थी जो किसी न किसी रूप में देश के अधिकांश भागों में समझी और बोली जाती थी। जिसके कारण से एक राष्ट्र एवं एक राष्ट्रभाषा की भावना यहां जागृत हो उठी और हिंदी सबसे आगे निकलकर राष्ट्र भाषा, सम्पर्क भाषा और मानक भाषा बनती चली गई। इस अभियान में गांधी जी की भूमिका अहम रही जिन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में राजनीतिक और सामाजिक मान्यता और संरक्षण प्रदान किया तथा इसका परिणाम यह रहा कि उत्तरी भारत में हिंदी साहित्य सम्मेलन और दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार सभा जैसी हिंदी सेवी संस्थाओं का जन्म हुआ जिनके माध्यम से हजारों अहिंदी भाषी भारतीयों ने स्वैछिक तौर पर हिंदी को सीखना और अपनाना शुरू किया। उस समय सभी साहित्यकारों, पत्रकारों, लेखकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने हिंदी में अपनी रचनाएं लिखीं। उस समय हिंदी साहित्य के अनेक मूर्धन्य लेखकों-साहित्यकारों द्वारा अनेकों रचनाएं लिखी गयीं।

वर्तमान काल

देश के आजादी के बाद से अब तक के समय को वर्तमान काल का नाम दिया जा सकता है। देश की स्वतन्त्रता के साथ ही यह महसूस किया जाने लगा कि अब इस देश की अपनी राष्ट्रभाषा होनी चहिए। अतः इस पर विचार-विमर्श होना प्रारम्भ हो गया।

बहुत सारे लोगों ने यह माना कि इस देश की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी होनी चहिए। अंग्रेजी के पीछे उनके अपने तर्क थे। उनका यह मानना था कि यदि अंग्रेजी इस देश की राष्ट्रभाषा नहीं हुई तो हम बहुत सारी चीजों में पिछड़ जाएंगे। इन सब चीजों को ध्यान में रखते हुए डा. प्रेम नाथ ने 'फ्यूचर ऑफ इंग्लिश' की रचना की जिसमें उन्होंने अंग्रेजी की भरपूर वकालत की। उन्होंने यह भी लिखा कि अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। बिना इसके प्रयोग से हम बहुत पीछे रह जाएंगे। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि अधिकांश पुस्तकें अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं जो कि हिंदी में नहीं हैं। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व में अंग्रेजी भाषा के ही प्रयोग का तर्क दिया। उनका मानना था कि यदि हमारे यहाँ इसे राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं दिया गया तो हम प्रगति के मार्ग पर अत्यंत पिछड़ जाएंगे। साथ ही उनका कहना था कि विज्ञान से आधारित लगभग सभी किताबें अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं जिससे भारतवासियों को विज्ञान समझने में काफी दिक्कतें होंगी।

इसके ठीक उल्टे, कुछ विद्वानों का यह मानना था कि अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। इस बात के पीछे उनके अपने तर्क थे। उनका मानना था कि कोई भी भाषा उस देश की सभ्यता, संस्कृति और विरासत को दर्शाती है। उपरोक्त गुण अंग्रेजी भाषा में नहीं है क्योंकि अंग्रेजी भाषा *ब्रिटिशर्स* की भाषा है। दूसरी बात यह है कि भारत देश के बहुत सारे राज्यों में अंग्रेजी समझी नहीं जाती है। भारत की राष्ट्रभाषा वह होनी चाहिए जो कि देश के बहुत बड़े भू-भाग में बोली एवं समझी जाती हो। लोगों का तर्क यह था कि जिस प्रकार जापान ने अपनी जापानी भाषा में विज्ञान संबन्धित सभी जानकारी पुस्तकों के रूप में विकसित कर ली है, ठीक उसी तरह हम भी अपनी भाषा में विज्ञान सम्बंधी जानकारी उपलब्ध करा सकेंगे। विज्ञान को हिन्दी भाषा में विकसित करने सम्बंधी कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रारंभ किया जा चुका है। इसे और भी आगे बढ़ाया जा सकता है।

अंग्रेजी के बाद पुनः चर्चा संस्कृत पर हुई कि क्यों न संस्कृत

को राष्ट्रभाषा बनाया जाए। इसके लिए 1948 से 1951 के मध्य पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल, डा. कैलाश नाथ काटजू ने तर्क दिया कि संस्कृत ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो हमारी सभ्यता, संस्कृति और विरासत को दर्शाती है। इसमें उनका साथ पंडित मैत्रा ने दिया। जिनका मानना था कि संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है जिसे पूरे एशिया महाद्वीप में अधिकांश स्थानों में प्रयोग में लाया जा रहा है। लेकिन संस्कृत के भी विरोध में भी लोगों ने अपने विचार रखे। ऐसे लोगों का विचार था कि संस्कृत बहुत ही कठिन भाषा है तथा इसके साथ इसकी व्याकरण भी अत्यंत क्लिष्ट है और इसको बोलने में भी बहुत ही दिक्कत का सामना करना पड़ता है।

संस्कृत के बाद कुछ लोगों का मानना था कि क्यों न बंगाली को राष्ट्रभाषा बनाया जाए। बंगाली भाषा के प्रति समर्थन दिखते हुए ऐसे लोगों का मानना था कि बंगाली भाषा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं शरतचंद्र बाबू की भाषा है तथा इसका व्याकरण भी संस्कृत की तुलना में कठिन नहीं है। लेकिन बंगाली के भी विरोध में लोगों का यह कहना था कि बंगाल के अतिरिक्त बहुत कम भू-भाग में बंग्ला भाषा का प्रयोग किया जाता है।

इसके बाद बहुत सारे लोगों का मानना था कि क्यों न हम हिंदुस्तानी भाषा को ही अपनी राष्ट्रभाषा रखें। हिंदुस्तानी भाषा के लिए पंडित जवाहर लाल नेहरू, महात्मा गांधी एवं गाडगिल जी जैसे लोगों की मान्यता थी कि हम अपनी राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी रखें। क्योंकि यह लगभग 15 करोड़ लोगों द्वारा बोली जाती है एवं इसका व्याकरण अत्यंत सरल है। लेकिन इसके विरोध में भी लोगों का मानना था कि यह भाषा भी हमारी संस्कृति को नहीं दर्शाती। साथ ही यह उर्दू एवं हिंदी का मिला-जुला रूप है।

इसके बाद यह चर्चा आरंभ हुई कि क्यों न हिंदी को ही भारत की राष्ट्रभाषा बनाया जाए। इसके पीछे लोगों का यह विचार था कि यह भाषा हमारी संस्कृति को स्पष्टतया दर्शाती है। इस भाषा में बहुत सारे ग्रंथ हैं। यह भाषा काफी वैज्ञानिक है। हिन्दी भाषा में शब्दों की कोई कमी नहीं है। लोगों का कहना था कि इस भाषा को लगभग 180 करोड़ लोग बोल सकते हैं तथा लगभग 110 करोड़ लोग समझ सकते हैं। साथ ही इसका व्याकरण बहुत कठिन नहीं है और यह भाषा वैज्ञानिक भी है। इसलिए इस भाषा को ही राष्ट्रभाषा बनाया जाना चहिए।

हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने के पीछे महात्मा गांधी ने तर्क देते हुए कहा था "मैं कहता हूँ कि आप अपनी भाषा में बोलें, अपनी भाषा में लिखें। उनको गरज होगी तो वे हमारी बात सुनेंगे। मैं अपनी बात अपनी भाषा मे कहूँगा। जिसको गरज होगी वह सुनेगा। आप इस प्रतिज्ञा के साथ काम करेंगे, तो हिंदी भाषा का दर्जा बढ़ेगा।" लाला लाजपत राय जी का कहना था" आरम्भिक जीवन से ही मुझे यह निश्चय हो गया था कि राष्ट्रीय मेल और राजनीतिक एकता के लिये सारे देश में हिन्दी का प्रचार आवश्यक है।" पं. जवाहर लाल नेहरू का स्पष्ट मत था कि राजभाषा के रूप में हिन्दी देश की एकता में अधिक सहायक होगी, इस पर दो मत नहीं हो सकते। गुरुवर रवीन्द्र नाथ टैगोर का कथन था "आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित कमल के सामान है, जिसका एक-एक दल प्रांतीय भाषा और उसकी साहित्य संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियां जिनमें सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने अपने घर में (प्रांत में पटरानी बनकर रहें। प्रांत के जन-गण की भाषाएं प्रकाश भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार के मध्य मणि हिंदी, भारत-भारती होकर विराजती रहे"। डा. गिर्यसन का मानना था "हिंदी ही वह भाषा है, जिसमें दो विभिन्न प्रान्तों के लोग आपस में बातचीत कर सकते हैं। यह भारत में सर्वत्र समझी जाती है, क्योंकि इसका व्याकरण भारत की अधिकांश भाषाओं के समान है और इसका शब्दकोश सबकी सम्मिलित संपत्ति है।" नेताजी सुभाष चन्द्र बोस देश की सबसे बड़ी संख्या में बोली जाने वाली हिंदी को ही राजभाषा की अधिकारिणी मानते थे। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन का कहना था "हिन्दी वह धागा है जो विभिन्न मातृभाषाओं रूपी फूलों को पिरोकर भारत माता के लिए सुन्दर हार का सृजन करेगा।" चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का कहना था "यदि भारतीय लोग कला, संस्कृति और राजनीति में एक रहना चाहते हैं तो इसका माध्यम हिंदी हो सकता है।" थॉमस डेविड का मानना था "कोई राष्ट्र अपनी भाषा छोड़कर राष्ट्र नहीं कहला सकता। अपनी भाषा की रक्षा देश की सीमाओं की रक्षा से भी जरूरी है।"

लोकमान्य तिलक का कहना था "राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा से अधिक बलशाली कोई तत्व नहीं है। मेरे विचार में हिन्दी ही ऐसी भाषा है।" सरदार पटेल का कहना था "राष्ट्रभाषा हिंदी किसी व्यक्ति या प्रांत की सम्पत्ति नहीं। इस पर सारे देश का अधिकार है। देश भर की जनता को इसके सीखने में गर्व का अनुभव करना चाहिए। भूदान के प्रणेता आचार्या विनोबा भावे का कहना था "मैं दुनिया की सब भाषाओं की इज्जत करता हूँ, परन्तु मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं नहीं सह सकता।" सर जार्ज ग्रियर्सन का स्पष्ट मानना था कि समस्त आर्यावर्त या ठेठ हिंदुस्तान की राष्ट्र तथा शिष्ट भाषा हिंदी या हिंदुस्तानी ही है।

हिंदी का व्याकरण सर्वाधिक वैज्ञानिक है और हिंदी की शब्द संख्या भी अंग्रेजी के मुकाबले कहीं अधिक है। आज फ्रेंच

मे 1 लाख, रूसी में 1.25 लाख, स्पैनिश में 2.25 लाख, तथा अंग्रेजी में केवल 10 हजार शब्द हैं जबकि हिंदी में लगभग 2.5 लाख से भी अधिक शब्द हैं। हिंदी की देवनागरी लिपि दुनिया की सर्वश्रेष्ठ लिपि में है। इसका समर्थन विनोबा भावे, जान क्राइस्ट, सर विलियम जोन्स जैसे लोगों ने किया। दिन पर दिन हिंदी आगे की तरफ बढ़ती चली जा रही है। यह भाषा अब केवल प्रदेश, देश ही नहीं अपितु विश्व में अपने परचम लहराती जा रही है जो निम्नलिखित सारणी में निहित आंकड़ों से स्पष्ट है:

भारत में हिंदी जानने वालों से संबंधित जानकारी

क्षेत्र	कुल जन संख्या	हिंदी जानने वाले	प्रतिशत
क–क्षेत्र (हिंदी भाषी राज्य)	61,72,26,843	61,72,26,843	100
ख–क्षेत्र (हिंदी और प्रांतीय भाषा का समान स्तर)	20,82,78,328	18,74,50,495	90–00
ग–क्षेत्र हिंदीतर भाषी राज्य	44,86,85,821	20,74,54,95	46–24
कुल–संपूर्ण भारत	1,27,41,90,991	1,01,21,31,433	79–43

विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या

डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल द्वारा वर्ष 2015 में किए गए शोध अध्ययन के अनुसार भारत में हिंदी जानने वाले 10120 लाख, पाकिस्तान में हिंदी जानने वाले 1650 लाख, बंगलादेश में हिंदी जानने वाले 700 लाख, नेपाल में हिंदी जानने वाले 250 लाख व्यक्ति हैं। कुल राष्ट्रों में 12720 लाख व्यक्ति हिंदी जानने वाले, विश्व के अन्य राष्ट्रों में 280 लाख व्यक्ति हिंदी जानने वाले हैं। इस प्रकार संपूर्ण विश्व में 13,000 लाख व्यक्ति हिंदी जानने वाले हैं।

अब यह उचित समय आ गया है कि हम हिंदी को राष्ट्रभाषा की तरफ बढ़ाने का प्रयास करें। जिससे अपने देश का एक राष्ट्रीय चिन्ह, राष्ट्रीय झण्डा, राष्ट्रीय पशु, राष्ट्रीय पक्षी की ही तरह राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा भी हो। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने से किसी भी प्रादेशिक भाषा का महत्व कम नहीं होगा। सभी प्रदेश अपने-अपने प्रदेश में अपनी अपनी भाषा का प्रयोग करें।

पुस्तकेशु च या विद्या परहस्तेशु यद्धनम।
उन्पन्नेशु च कार्येशु न सा विद्या न तद्धनम।।

अर्थ- जो विद्या पुस्तकों में लिखी है और कंठस्थ नहीं है तथा जो धन दूसरों के हाथ में गया है, ये दोनों आवश्यकता के समय काम नहीं आते।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

वर्षा–जल संचयनः जल संरक्षण की ओर एक कदम

संगीता श्रीवास्तव एवं राघवेन्द्र कुमार
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

क्या आपने कभी जल के बिना एक दिन की कल्पना की है? नहीं न और इसकी कल्पना करना भी कठिन है। हम सभी एक दिन में जल का उपयोग अलग-अलग कार्यों जैसे सफाई, धोने, स्नान, खाना पकाने, पीने और अन्य घरेलू और औद्योगिक उपयोगों के लिए करते हैं। पौधों, जानवरों और मनुष्यों सहित सभी जीवित वस्तुओं को जीवित रहने और विभिन्न कोशिकीय गतिविधियों को पूरा करने के लिए जल की आवश्यकता होती है।

जल पारिस्थितिकी तंत्र का एक कीमती, आवश्यक और अजैविक घटक है। आज हम सभी जल की कमी की ओर बढ़ रहे हैं और इसका मुख्य कारण जल संरक्षण की कमी और जल निकायों का प्रदूषण है। तो आइए, हम पानी की एक बूंद भी बर्बाद न करें और आगे के उपयोग के लिए पानी के संरक्षण के तरीकों पर विचार करना शुरू करें। ऐसा ही एक तरीका है-वर्षा जल संचयन *(रेन वाटर हारवेस्टिंग)*।

क्या है वर्षा जल संचयन ?

वर्षा जल संचयन, वर्षा के जल को एकत्रित करने और उसे अच्छे उपयोग में लाने की सरल प्रक्रिया या प्रौद्योगिकी है, जिसका उपयोग वर्षा के पानी को इकट्ठा करने, भंडारण, संवहन और शुद्ध करने के लिए किया जाता है जो बाद में उपयोग के लिए छतों, पार्कों, सड़कों, खुले मैदानों आदि से निकलता है। वर्षा जल संचयन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वर्षा जल को एकत्र करना और अशुद्धियों को समाप्त करके इसके मूल्य में वृद्धि करना या इसे उन स्थानों पर निर्देशित करना शामिल है जहाँ इसका उपयोग अत्यधिक आवश्यक है। यह एक ऐसी प्रथा है जो लंबे समय से चली आ रही है। फर्क सिर्फ इतना है कि अब इस प्रक्रिया को सुलभ बनाने के लिए बेहतर तरीके विकसित किए जा रहे हैं। नई प्रौद्योगिकियाँ इस प्रक्रिया को आसान और अधिक कुशल बना रही हैं।

क्यों करते हैं वर्षा जल संचयन ?

वर्षा जल संचयन प्रणाली पानी के संरक्षण के लिए प्रचलित और पालन की जाने वाली सर्वोत्तम विधि है। आज, अच्छी गुणवत्ता वाले पानी की कमी चिंता का एक महत्वपूर्ण कारण बन गई है। हालांकि, वर्षा जल, जो शुद्ध और अच्छी गुणवत्ता का है, इसका उपयोग सिंचाई, धुलाई, सफाई, स्नान, खाना पकाने और अन्य पशुधन आवश्यकताओं के लिए किया जा सकता है।

कैसे संरक्षित करें वर्षा जल को ?

वर्षा जल संचयन की प्रक्रिया में कृत्रिम रूप से तैयार की गई प्रणालियों की सहायता से प्राकृतिक रूप से या मानव निर्मित जलग्रहण क्षेत्रों जैसे- छत, यौगिकों, चट्टान की सतह, पहाड़ी ढलानों, कृत्रिम रूप से मरम्मत की गई या अर्ध-विकृत भूतल से वर्षा जल का संचयन और संग्रहण शामिल हैं।

वर्षा जल संचयन प्रणाली में निम्नलिखित घटक होते हैं:

- *कैचमेंट*-वर्षा जल को इकट्ठा करने और *स्टोर* करने के लिए उपयोग किया जाता है।
- *कन्वेंस सिस्टम*-इसका उपयोग *कैचमेंट* से *रिचार्ज जोन* में संचयित जल पहुँचाने के लिए किया जाता है।
- *फ्लश*-इसका इस्तेमाल बारिश के पहले दौर को साफ करने के लिए किया जाता है।
- *फिल्टर*-एकत्रित वर्षा जल को छानने और प्रदूषकों को हटाने के लिए उपयोग किया जाता है।
- *टैंक* और पुनर्भरण संरचना- *फिल्टर* किए गए पानी को संग्रहित करने के लिए उपयोग किया जाता है।

वर्षा जल संचयन में महत्वपूर्ण कारक

स्पष्ट रूप से, कई कारक वर्षा जल संचयन की मात्रा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन कारकों में से कुछ निम्नवत हैं:

- अपवाह की मात्रा
- *कैचमेंट* की विशेषताएं
- पर्यावरण पर प्रभाव
- प्रौद्योगिकी की उपलब्धता
- भंडारण टैंकों की क्षमता
- छत के प्रकार, इसकी ढलान और सामग्री
- वर्षा की आवृत्ति, मात्रा और गुणवत्ता

वर्षा जल संचयन की विधियाँ

विभिन्न विधियों द्वारा बारिश के पानी को संग्रहित किया जा

सकता है। इनमें से कुछ विधियाँ बहुत प्रभावी हैं और वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए भी बहुत सारे पानी के संग्रहण में सहायता कर सकती हैं, जबकि अन्य केवल घरेलू उपयोग के लिए जल संचयन के लिए उपयुक्त हैं। हर प्रणाली के अपने गुण और अवगुण होते हैं। वर्षा जल संचयन की कुछ सामान्य विधियाँ निम्नलिखित हैं:

भूतल जल संग्रह प्रणाली: जब बारिश का पानी पृथ्वी की सतह पर गिरता है, तो यह आमतौर पर ढलान से नीचे बहता है क्योंकि यह ढलान के एक बिंदु की ओर बढ़ता है, जहाँ पर पानी इकट्ठा हो सकता है। भूतल जल संग्रह प्रणाली अन्य स्थानों पर बहने से पहले भूजल वर्षा जल संग्रहण को सक्षम बनाती है। ऐसी प्रणालियों के उदाहरणों में नदी, तालाब और कुएँ शामिल हैं। इन प्रणालियों में पानी के लिए *ड्रेनेज पाइप* का उपयोग किया जा सकता है। पानी को इन स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है और फिर अन्य उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

रूफटॉप सिस्टम: इनका प्रयोग बारिश के पानी के संचयन के लिए किया जाता है। इनका उपयोग वर्षा के पानी को निर्देशित करने के लिए किया जा सकता है जो किसी इमारत की छत पर *कंटेनर* या टैंकों में गिरता है। इन टैंकों को आमतौर पर ऊँचा रखा जाता है ताकि जब नल खोला जाए, तो पानी एक उच्च दबाव पर बहे। वर्षा जल संचयन की यह विधि अच्छी है क्योंकि संचित जल ज्यादातर स्वच्छ होता है और आमतौर पर इसे मानव उपयोग के लिए उपयुक्त बनाने के लिए किसी और उपचार की आवश्यकता नहीं होती है।

बाँध: ये ऐसे अवरोध हैं जो पानी को रोकने के लिए *डिजाइन* किए गए हैं। बारिश का पानी सीधे उनमें जमा हो सकता है। बाँधों में एकत्रित पानी का उपयोग ज्यादातर सिंचाई के लिए किया जाता है या इसे उपचारित किया जाता है और फिर घरेलू उपयोग के लिए वितरित किया जाता है।

भूमिगत *टैंक:* ये वर्षा के पानी को इकट्ठा करने के लिए आदर्श हैं। इनका निर्माण जमीन में खुदाई करके और एक जगह बनाकर किया जाता है, जिसे सीमेंट से बनाया जाता है। शीर्ष को भी *सील* कर दिया जाता है और *टैंक* में निर्देशित पाइपों के माध्यम से पानी प्राप्त किया जाता है। पानी निकालने के लिए, पंपों का उपयोग किया जाता है। भूमिगत *टैंक* वर्षा जल संचयन के लिए अद्भुत होते हैं क्योंकि सूरज की रोशनी प्रवेश न करने के कारण वाष्पीकरण की दर कम हो जाती है।

बारिश-तश्तरी *(रेन सॉसर)* : बारिश-तश्तरी का उपयोग करके आकाश से गिरते बारिश के पानी को एकत्र कर सकते हैं। ये उल्टा छाते या बड़े *फनल* की तरह दिखते हैं। कुछ आमतौर पर एक *पाइप* से जुड़े होते हैं ताकि एकत्रित पानी कहीं और भेजा जा सके। यह अभी तक प्रभावी एक सरल विधि है।

जल संग्रह जलाशय: इस विधि के माध्यम से एकत्र किया गया जल वास्तव में स्वच्छ नहीं होता है और दूषित हो सकता है। हालांकि, यह अभी भी फसल सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इस तरह के वर्षा जल को सड़कों और फुटपाथों से संचित किया जाता है।

बैराज: *बैराज* एक बांध है जिसमें कई द्वार होते हैं जिन्हें बंद किया जा सकता है या पानी की मात्रा को नियंत्रित करने के लिए खोला जा सकता है। यह आमतौर पर बड़ा होता है और इसका उपयोग बहुत सारे पानी को इकट्ठा करने के लिए किया जा सकता है।

ढलान: बारिश का पानी जब पहाड़ी जमीन पर बहता है तब यह ढलान के तल पर इकट्ठा होता है। जब भारी बारिश होती है, तो पानी का स्तर पहाड़ी चोटी तक बढ़ सकता है। यह वर्षा जल के संचयन का एक सरल और प्राकृतिक तरीका है।

खाईयाँ: यह सिंचाई के लिए वर्षा जल संचयन का एक और बढ़िया तरीका है। जब बारिश होती है, तो खाईयों का पानी उपयोग करके खेत को भेजा जा सकता है। यह वर्षा जल संचयन के पारंपरिक तरीकों में से एक है जो आज भी बहुत उपयोग में है।

रेन बैरल: बारिश का जो पानी छतों पर गिरता है उसका उपयोग रेन *बैरल* द्वारा वर्षा जल संचयन के लिए किया जाता है। वे विशेष रूप से इस उद्देश्य के लिए *डिजाइन* किए गए हैं और खुदरा *स्टोर* से खरीदे जा सकते हैं।

वर्षा जल संचयन के लाभ

1. घरेलू उपयोग के लिए पानी: वर्षा जल संचयन फायदेमंद है क्योंकि यह घरेलू उपयोग के लिए पानी का एक स्रोत प्रदान करता है। एकत्रित पानी का उपयोग घर की सफाई, कपड़े धोने के लिए और खाना पकाने के लिए किया जा सकता है। जब उपचारित किया जाता है, तो बारिश का पानी पीने के लिए अच्छा होता है।

2. औद्योगिक उपयोग के लिए पानी: औद्योगिक उपयोग के लिए वर्षा जल का उपयोग कंपनियों द्वारा सामान्य रूप से बड़े पैमाने पर किया जाता है। ऐसी कंपनियाँ अपने स्वयं के बांधों का निर्माण कर सकती हैं या वर्षा जल को संग्रहित करने के लिए भूमिगत टैंक बनाती हैं।

3. अनुपूरक जल स्रोत: कई क्षेत्रों में बारिश की कमी और

वाष्पीकरण की उच्च दर के परिणामस्वरूप गर्मियों में पानी की कमी का अनुभव होता है। इस अवधि के दौरान पानी का एक विश्वसनीय स्रोत प्राप्त करना मुश्किल हो सकता है। अधिक मांग और कम आपूर्ति के कारण पानी बेचने वाले भी अपने दाम बढ़ा सकते हैं। इसलिए बारिश के पानी को गर्मियों में पानी की कमी को पूरा करने की तैयारी के रूप में देखा जाता है।

4. लागत प्रभावीः हम मूल रूप से वर्षा जल को मुफ्त में संचित करते हैं क्योंकि यह स्वाभाविक रूप से प्राप्त होता है। यदि बारिश के मौसम में पर्याप्त पानी जमा करें, तो आपको कभी भी पानी की सेवाओं के लिए भुगतान नहीं करना पड़ेगा। यह पानी के बिल पर आपके मासिक खर्च में कटौती करके आपके पैसे बचाता है।

5. संचित पानी का विश्वसनीय प्रवाहः भले ही वर्षा जल का संचयन वर्षा पर निर्भर करता है, एक बार संग्रहित होने पर, उपलब्ध जल की मात्रा की आपूर्ति की *गारंटी* होती है। भंडारण की जगह से पानी का एक निर्बाध प्रवाह हो सकता है जब तक कि संचित की गई जल की राशि समाप्त नहीं हुई है।

6. बाढ़ के प्रभावों को कम करनाः बाढ़ के नकारात्मक प्रभाव बहुत अधिक हैं। वर्षा जल संचयन बाढ़ के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब वर्षा जल को खाईयों के माध्यम से खेतों में ले जाया जाता है या बांधों में एकत्र किया जाता है, तो इसका संचालन नियंत्रित होता है। यह एक क्षेत्र में पानी के जमाव, जो अक्सर बाढ़ का कारण बनता है, को रोकता है। वर्षा जल संचयन, इस प्राकृतिक आपदा के प्रभावों को कम करने का एक प्रभावी तरीका है।

7. भवन और निर्माणः घर बनाने की प्रक्रिया में बहुत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। एकत्रित वर्षा जल का उपयोग भवन और अन्य निर्माण के लिए किया जा सकता है।

8. जल प्रदूषण को रोकने में मददः जमीन की सतह पर बहने वाला वर्षा जल अपने साथ बहुत सारी अशुद्धियाँ और विषाक्त पदार्थ ले जा सकता है। जब यह जल निकायों में जाता है, तो यह इन अशुद्धियों के कारण उन्हें प्रदूषित करता है। इसलिए वर्षा जल का संचयन, जल निकायों के प्रदूषण को रोकता है।

9. सिंचाईः बारिश का पानी खेती के लिए अच्छा होता है क्योंकि एक बार संचयन के बाद इसका उपयोग खासकर गर्मियों के दौरान सिंचाई के लिए किया जा सकता है।

10. पीने योग्य पानी की बचतः धोने और शौचालय में अन्य प्रयोजनों के लिए स्वच्छ और उपचारित पानी का उपयोग करने के बजाय, वर्षा जल का उपयोग किया जा सकता है। इससे पीने योग्य पानी की बचत होती है।

वर्षा जल संचयन की सीमाएं

1. अतिरिक्त व्ययः मानव उपभोग के लिए इसे उपयुक्त बनाने के लिए वर्षा के पानी का उपचार करने में अतिरिक्त खर्च आता है।

2. विशाल प्रयास और संसाधन आवश्यकः बांध या भूमिगत टैंक का निर्माण करना कोई आसान कार्य नहीं है। बारिश के पानी का संचयन शुरू करने से पहले, काफी मात्रा में संसाधन खर्च करने पड़ते हैं। अन्य सस्ते साधन हैं, लेकिन फिर उचित मात्रा में पानी नहीं एकत्र हो पायेगा।

3. वर्षा पर निर्भरताः बारिश नहीं होने पर आप वर्षा जल का संचयन नहीं कर सकते। इसलिए यह प्रक्रिया पूरी तरह से बारिश की उपलब्धता पर निर्भर है जो कभी-कभी बहुत अविश्वसनीय हो सकती है।

4. सीमित भंडारणः यदि कभी अत्यधिक बारिश हो तो भी आप उस सभी पानी का संचयन नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वर्षा जल को रखने के लिए सीमित भंडारण हैं।

5. संदूषण का जोखिमः यदि देखभाल के साथ संरक्षित नहीं किया जाता है, तो वर्षा जल दूषित हो सकता है। यह कई स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकता है, खासकर जब पानी का उपयोग बिना उपचार के किया जाता है। जलजनित रोग बहुत सारे हैं और उनका इलाज करना बहुत महंगा है।

6. सफाई और रखरखावः भंडारण सुविधाओं को कभी-कभी साफ करना और उनका रखरखाव करना पड़ता है। भूमिगत पानी की टंकी की सफाई करना आसान नहीं है और बांध को बनाए रखना बहुत महंगा है।

7. दोहरी लागतः सामान्य पानी के बिलों का भुगतान करने और वर्षा जल संचयन प्रणाली को स्थापित करने और बनाए रखने के कारण दो बार खर्च करना पड़ता है।

8. छत के ऊपर उपस्थित रसायनः कुछ छतों में रसायन और अशुद्धियाँ होती हैं जो वर्षा के पानी के साथ मिल जाती हैं। जब इसका सेवन किया जाता है, तो यह पानी बीमारियों और अन्य स्थितियों के कारण मानव स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है।

9. अम्लीय वर्षाः प्रदूषण के कारण कभी-कभी होने वाली वर्षा अम्लीय होती है। निहित रसायनों के कारण इस प्रकार के वर्षा जल को प्रयोग करना खतरनाक है। सिंचाई के लिए अम्लीय वर्षा का उपयोग करना भी फसलों की मृत्यु का कारण बन सकता है क्योंकि यह मिट्टी की गुणवत्ता को नष्ट कर देता है और ऐसी स्थिति पैदा करता है जो पौधे के अंकुरण के लिए अनुकूल नहीं

हैं। जब मिट्टी में उच्च पीएच होता है, तो पौधे ठीक से विकसित नहीं होते हैं।

10. वन्यजीवों के लिए पानी की कमी: जंगली जानवरों को उनके पीने का पानी प्राकृतिक स्रोतों जैसे मौसमी नदियों से मिलता है। वे उन्हें गर्म मौसम में ठंडा करने के लिए भी उपयोग करते हैं। वर्षा के संचयन से इन धाराओं और नदियों में बहने वाले पानी की मात्रा कम हो जाती है। यह पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करता है।

सावधानियाँ

1. अशुद्धियों को दूर करने के लिए पूर्व निस्पंदन संचयित पानी को सुरक्षित बनाएगा।
2. संचयित हुए वर्षा के पानी को पीने से पहले किसी भी कीटाणु को मारने के लिए उबाला भी जा सकता है।
3. वर्षा के पानी को ऐसे कंटेनरों में एकत्र किया जाना चाहिए जो सूरज की रोशनी के संपर्क में आने पर विषाक्त पदार्थों को बाहर नहीं निकालते हैं।
4. बारिश शुरू होने से पहले संग्रह स्थानों को निश्चित करें क्योंकि बारिश में इधर-उधर भागने पर बीमार पड़ सकते हैं।

निष्कर्ष

वर्षा मौसम की एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। यह पानी का एक स्रोत है और फसलों और खेती के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। वर्षा जल का संचयन करना एक प्रयोग है जो कुछ समय से चल रहा है। बहुत से लोग वास्तव में यह महसूस किए बिना भी इसमें संलग्न हैं कि वे ऐसा कर रहे हैं। मौसम परिवर्तन के कारण, जल स्रोत सूख सकते हैं और इस प्रक्रिया में पशु, मानव और पौधे का जीवन नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। वर्षा जल संचयन ऐसे समय की तैयारी का एक *स्मार्ट* तरीका है क्योंकि जब पारंपरिक जल स्रोत सूख जाते हैं, तब भी हम कई उद्देश्यों के लिए संग्रहित पानी का उपयोग कर सकते हैं। सबसे अच्छी बात यह है कि इस प्रकार का पानी प्राकृतिक रूप से प्राप्त होता है। सावधानीपूर्वक कदम उठाकर कुछ असफलताओं से बचा जा सकता है। जब हम नवाचार और प्रौद्योगिकी को रोजगार देते हैं, तो हम वर्षा जल संचयन के बेहतर तरीकों के साथ आगे आ सकते हैं और भंडारण क्षमता को बढ़ा सकते हैं।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

कृषि में जल संरक्षण की विधियाँ

मीना निगम, विजय प्रकाश जायसवाल एवं आशा गौड़
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

प्रकृति के तत्वों जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी एवं आकाश में जल एक ऐसा तत्व है जिसकी लगभग समस्त जीवों को अपनी जीवन प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यकता होती है। पानी पृथ्वी का सबसे मूल्यवान संसाधन है और अपने पारिस्थितिकी तंत्र का आवश्यक घटक है। पृथ्वी को *'ब्लू प्लेनेट'* के नाम से जाना जाता है क्योंकि पृथ्वी की सतह का 71 प्रतिशत हिस्सा पानी से ढका है। पानी पृथ्वी की सतह के नीचे तथा वायुमंण्डल में भी पाया जाता है।

जल की उपलब्धता एवं उपयोगिता

यद्यपि पृथ्वी पर इतनी अधिक मात्रा में जल उपलब्ध है परन्तु इसकी कुछ मात्रा (लगभग 0.5 प्रतिशत) ही उपयोगी है। शेष 99.5 प्रतिशत समुद्र में, मृदा में, ग्लेशियर के रूप में तथा वायु मण्डल में विद्यमान है। जल पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जीव जन्तुओं और वनस्पतियों द्वारा उपयोग में लाया जाता है। इस उपयोगी जल से कृषि कार्य तथा अन्य उद्योग भी संचालित होते हैं।

जल की उपलब्धता के सूचकांक, *फाल्केन मार्क* सूचकांक के अनुसार घरेलू खपत, कृषिगत उद्योगों, उर्जा उत्पादन तथा अनुकूल पर्यावरण के लिए मीठे जल की आवश्यकता प्रति व्यक्ति लगभग 1,700 घनमीटर प्रतिवर्ष आंकी गई है। इससे कम जल उपलब्ध होने की स्थिति जलाभाव की स्थिति मानी जाती है। यह जलाभाव देश में खाद्यान्न संकट पैदा कर सकता है, पलायन, बेरोजगारी व आपसी संघर्ष को बढ़ा सकता है और उद्योगों पर भी संकट पैदा कर सकता है जिससे देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित हो सकती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है इसका आर्थिक विकास कृषि आधारित है। कृषि के लिए मुख्य घटक भूमि व जल हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या और परिणामस्वरूप खाद्य उत्पादन में वृद्धि, कृषि क्षेत्र और सिंचाई क्षेत्र में वृद्धि के कारण जल का अत्यधिक उपयोग हो रहा है। जल संसाधनों के अत्यधिक उपयोग होने के कारण देश के कई भागों में पानी की कमी हो रही है। भारत के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए जल संरक्षण बहुत महत्वपूर्ण है।

उद्भव और जीवन के तल पर। कृषि और विकास पटल पर।।
सुंदर सुखद भविष्य के हेतु। जल है एक सुदृढ सा सेतु।।

पृथ्वी पर उपलब्ध पानी की वर्तमान स्थिति एवं उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए पानी के कुशलतापूर्वक उपयोग द्वारा ही भावी पीढ़ियों के भविष्य को सुरक्षित रखा जा सकता है।

जल संरक्षण

पानी की कमी से सामाजिक व आर्थिक रूप से प्रभावित क्षेत्रों में उचित प्रबंधन द्वारा पानी की उपलब्धता, गुणवत्ता तथा प्रचुरता की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। वर्षा की कमी, तापमान में वृद्धि तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण जल की उपलब्धता घटी है। प्रकृति में पानी नियत मात्रा में उपलब्ध है एवं उसका दुरूपयोग इसे दुर्लभ बना रहा है। जल प्रबंधन एवं संरक्षण की शुरूआत कृषि क्षेत्र से करना चाहिए क्योंकि सर्वाधिक मात्रा में कृषि कार्यों में ही जल का उपयोग किया जाता है एवं सिंचाई में जल का दुरूपयोग एक गंभीर समस्या है। फसल के लिए भरपूर पानी का मतलब मात्र मिट्टी में पर्याप्त नमी ही होती है। परन्तु वर्तमान कृषि पद्धति में सिंचाई में जल का अंधाधुंध प्रयोग किया जा रहा है। जल संरक्षण की समुचित विधियों के कुशल उपयोग के माध्यम से ही हम अगली पीढ़ी को गौरव के साथ प्रचुर जल संसाधन उपलब्ध करा सकेंगे।

भारत में जल का प्राथमिक स्रोत मानसून है। वर्षा की अवधि और मात्रा हमारे देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग पायी जाती है। इसलिए सतह पर प्रवाह के संरक्षण की आवश्यकता है। जल संरक्षण विभिन्न विधियों द्वारा किया जा सकता है। भण्डारण द्वारा वर्षा जल का संरक्षण किया जा सकता है। जल संरक्षण में भूमिगत जल संरक्षण का भी विशेष महत्व है क्योंकि यह कम खर्चीला आर्थिक संसाधन है और ज्यादातर स्थानों पर उपलब्ध होने के साथ ही यह प्रदूषण के प्रति कम संवेदनशील है तथा यह जल रोगजनक जीवों से मुक्त है। कृत्रिम पुनर्भरण द्वारा भूमिगत जल का संरक्षण किया जा सकता है। जलग्रहण सुरक्षा योजना जिसे सामान्यतया जल संरक्षण योजना प्रबंधन कहा जाता है, द्वारा जल संरक्षण व जल की गुणवत्ता को संरक्षित किया जा सकता है।

कृषि में जल संरक्षण

किसी भी संसाधन का संरक्षण करने में सबसे महत्वपूर्ण बात है कि उस संसाधन का उपयोग बहुत ही मितव्ययता के साथ आवश्यकता के अनुसार ही किया जाए।

वर्तमान समय तक भी हमारी कृषि पद्धति जल संरक्षण के

उपायों को पूर्ण उपयोगी नहीं बना पायी है बल्कि इसमें प्रयोग किये गये जल की अधिकांश मात्रा व्यर्थ हो जाती है। कृषि क्षेत्र में अनेक उपायों द्वारा जल संरक्षण किया जा सकता है। परम्परागत सिंचाई विधियों के प्रयोग से प्रति इकाई क्षेत्र में ज्यादा पानी देना पड़ता है अतः सिंचाई की निम्नलिखित उन्नत विधियों का प्रयोग आवश्यक है:

फव्वारा सिंचाई पद्धतिः- इसे अपनाकर जल संरक्षण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि में सिंचाई, पाइपों और नोजल के माध्यम से वर्षा के रूप में की जाती है। यह विधि भू-संरक्षण में भी सहायक है क्योंकि इस विधि से जल बहकर बाहर नहीं जाता है। परम्परागत सिंचाई की तुलना में इस विधि द्वारा 30-40 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

बूंद-बूंद *(ड्रिप)* सिंचाई पद्धतिः- इस विधि से उपयोगी जल की दक्षता में वृद्धि होती है। इस विधि में पौधों की आवश्यकता के अनुसार मृदा के प्रकार, जलवायु, फसल की माँग, उम्र व प्रकृति के अनुसार पौधों की जड़ों के पास बूंद-बूंद कर जल उपलब्ध कराया जाता है। इस विधि में सिंचाई जल के गहराई में प्रवेश होने के कारण वाष्पीकरण तथा बहाव द्वारा होने वाली क्षति को कम किया जा सकता है।

फसलों को आवश्यकतानुसार पानी देनाः- किसी फसल के लिए जल की आवश्यकता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। इसमें भूमि व फसल की किस्म, जलवायु तथा बुआई का समय प्रमुख हैं। विभिन्न फसलों के लिए जल माँग की क्रांतिक अवस्थायें अलग-अलग होती हैं। अतः उचित प्रबंधन द्वारा सिंचाई कर जल को संरक्षित किया जा सकता है।

सिंचाई के अलावा, निम्नलिखित अन्य प्रकार के कृषि प्रबंधन के द्वारा भी जल का संरक्षण कर सकते हैं:

फसल योजना तैयार करना- पानी की उपलब्धता के अनुसार फसल चक्र का निर्धारण करना जिससे वर्षा की नमी का लाभ लेते हुए कम सिंचाई द्वारा फसलों से अधिक लाभ लिया जा सके।

फसलों एवं किस्मों का चुनाव- पानी की कमी वाले क्षेत्रों में सूखा सहने वाली, कम अवधि में पकने वाली फसलों एवं उनकी किस्मों के चयन से सिंचाई में होने वाले जल प्रयोग को सीमित किया जा सकता है।

मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्धि एवं प्रबंधन- रासायनिक उर्वरकों के अधिक मात्रा में उपयोग से मृदा की जलधारण क्षमता में कमी आती है जिससे मृदा में सिंचाई एवं वर्षाजल का उचित संचयन नहीं हो पाता है। भूमि में अधिक मात्रा में जैविक खादों के प्रयोग से भूमि की उर्वरता के साथ-साथ जल धारण क्षमता में भी वृद्धि होती है और लम्बे समय तक नमी संरक्षित रहती है।

कृषि वानिकी- वृक्ष भूमि को हवा व पानी से होने वाले कटाव से रोकते हैं। भूमि में पत्तियाँ मिलने से कार्बनिक पदार्थ बढ़ता है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति और पानी ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है। सधन वन वाले क्षेत्रों में वातावरण में नमी अधिक संरक्षित रहती है। वृक्षों के साथ फसल उगाने से फसलों को अधिक नमी व पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं साथ ही वृक्षों से चारा, लकड़ी व फल भी प्राप्त होते है।

कृषि उद्यानिकी- इस पद्धति द्वारा फलदार पौधों जैसे बेर, आँवला व बेल आदि की दो पंक्तियों के मध्य कम अवधि की फसलें उगाकर अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त करते हैं। इन वृक्षों के कारण मृदा कटाव में कमी तथा मृदा की जल धारण क्षमता में सुधार होता है।

मृदा सतह पर पलवार का प्रयोग- भूमि की नमी का वाष्पीकरण रोकने के लिए खेतों में मृदा की सतह पर फसलों के अवशेष, सूखी पत्तियाँ, सूखी घास व पॉलीथीन की चादर का उपयोग कर भी मृदा की नमी को संरक्षित किया जा सकता है।

वाष्पोत्सर्जन के कारण होने वाली हानि- गर्म एवं शुष्क वातावरण में पौधों में उपस्थित पानी की अधिकांश मात्रा पौधों की सतह एवं पत्तियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन के रूप में बाहर निकल जाती है। इस हानि को कम करने के लिए पौधे की पत्तियों एवं तने पर वाष्पोत्सर्जन विरोधी पदार्थों जैसे केओलिनाइट व चूना पानी का प्रयोग करके सतह से होने वाली पानी की हानि को रोका जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रण- प्रारंभिक अवस्था से ही खेत में खरपतवारों का नियंत्रण कर भूमि की नमी को संरक्षित किया जा सकता है। यह खरपतवार पोषक तत्व, नमी, स्थान व प्रकाश आदि के लिए प्रतियोगिता कर फसल को दिये जाने वाले जल का काफी मात्रा में उपयोग कर लेते हैं। अतः खरपतवार नियंत्रण की जल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका है। खरपतवार का जड़ तंत्र फसलों की अपेक्षा ज्यादा विकसित होने के कारण भूमि की गहराई से अधिक नमी अवशोषित करते हैं।

वर्तमान समय में किसानों और वैज्ञानिकों को जल संरक्षण की चुनौती स्वीकार करनी होगी और इसके लिए नयी कृषि पद्धतियों की खोज एवं विकास करना होगा जिससे इस सीमित संसाधन को लम्बे समय तक संरक्षित एवं उपयोगी बनाए रखा जा सके। पृथ्वी पर उपलब्ध पानी की वर्तमान स्थिति एवं उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए पानी के कुशलतापूर्वक एवं पूर्ण दक्षता के साथ उपयोग द्वारा जल संरक्षण कर ही भावी पीढ़ियों के भविष्य को सुरक्षित रखा जा सकता है।

जल संरक्षण है हितकारी।
हो जन-जन की भागीदारी।।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

कृषि में जल संरक्षण

ओम प्रकाश[1], ब्रह्म प्रकाश[1], अजय कुमार साह[1], पल्लवी यादव[2] एवं अश्विनी दत्त पाठक[1]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[2]चंद्र भानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बक्शी का तालाब, लखनऊ

'जल' प्रकृति द्वारा मानव समुदाय को प्रदत्त अनमोल धरोहर है। कृषि जल संरक्षण से तात्पर्य ऐसी कृषि तकनीक से है जिसमें उपलब्ध जल की मात्रा का कृषि में समुचित उपयोग हो, जिससे अधिक फसल उत्पादन मिले, जल का अपव्यय कम से कम हो, मृदा क्षरण रोकने, सीमित मात्रा में सिंचाई के जल का व्यवस्थित ढंग से एवं किफायती दर से खेती में उपयोग किया जाना ही कृषि जल संरक्षण या एकीकृत जल प्रबंधन कहा जाता है। आज हम सबकी जिम्मेदारी है कि कृषि जल संरक्षण के लिए ज्यादा से ज्यादा प्रयत्न किएं जाएं।

कृषि संपूर्ण रूप से प्रकृति पर आधारित है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ की कुल ग्रामीण जनसंख्या की 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। जल की उपलब्ध सम्पूर्ण मात्रा का 70 प्रतिशत अंश कृषि में सिंचाई के रूप में प्रयोग होता है। कृषि में विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए (खाद्यान्न सुरक्षा कायम रखने, कृषि उत्पादन बढ़ाने, उत्पादों की गुणवत्ता, पर्यावरण संरक्षण एवं कृषि आधारित उपक्रमों में उपयोग) हेतु जल का उपयोग किया जाता है। वर्तमान में कृषि जल के उपयोग का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि आज जल के उपयोग करने के तौर-तरीकों में अत्यंत परिवर्तन होने के कारण जल का संतुलन बिगड़ चुका है। जिसके चलते जल आपूर्ति भी प्रभावित होने के संकेत मिल रहे हैं, जो भविष्य में सभी के जीवन के लिए कष्टकारी सिद्ध होंगे। अतः जल संरक्षण सतत कृषि उत्पादन के लिए वर्तमान समय की महती आवश्यकता है।

कृषि में जल संरक्षण का तात्पर्य

कृषि कार्यों हेतु उपयोग में लाया जाने वाला जल 'सिंचाई जल' के नाम से जाना जाता है। कृषि में जल संरक्षण का अर्थ है कि पानी का संरक्षण एवं संचय करना जिससे आवश्यकतानुसार सिंचाई की जा सके। कृषि जल में उपलब्ध जल की मात्रा के समुचित उपयोग से अधिक फसल उत्पादन मिले, कृषि में आवश्यकता के अनुसार ही जल का उपयोग हो, जल के अपव्यय को रोकने, सीमित मात्रा में उपयोग करने, व्यवस्थित ढंग एवं किफायती दर से खेती में जल का उपयोग किया जाना ही कृषि जल संरक्षण या एकीकृत जल प्रबंधन कहलाता है। कृषि जल संरक्षण से संबंधित किसानोपयोगी नवीनतम तकनीकों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत प्रस्तुत है :

कृषि में जल संरक्षण की आवश्यकता क्यों?

- कृषि जल के अपव्यय को रोकने हेतु
- खाद्यान्न सुरक्षा कायम रखने हेतु
- फसलों की जल माँग एवं संतुलन बनाए रखने हेतु
- कृषि उत्पादन में सतत रूप से वृद्धि करने हेतु
- कृषि उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु
- पर्यावरण संरक्षण हेतु।

कृषि में जल संरक्षण के लाभ

कृषि में जल संरक्षण के परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में अनेकों फायदे हैं जिसमें से कुछ प्रमुख फायदों का उल्लेख निम्नलिखित है:

- पीने एवं सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता बनी रहती है।
- भू-क्षरण रूकता है।
- प्राकृतिक संसाधनों (पानी, श्रम एवं ऊर्जा) की भी बचत होती है।
- जलवायु परिवर्तन के हानिकारक प्रभावों से बचाने में सहायक है।
- मृदा नमी के होने पर फसल अवशेषों का विघटन आसानी से हो जाता है जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में सहायक होता है।
- मृदा नमी के संरक्षण से फसल द्वारा रसायनिक उर्वरकों की उपयोग क्षमता में वृद्धि होने से फसल उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है।
- सस्य क्रियाओं को करने में आसानी रहती है।
- भू-जल स्तर में बढ़ोत्तरी होती है।
- लाभदायक जीव-जंतुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

कृषि जल संरक्षण को प्रभावित करने वाले कारक

कृषि जल संरक्षण में कुछ प्रमुख कारक हैं जो कृषि जल के संरक्षण में बाधक होते है। उनमें से कुछ प्रमुख कारकों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत हैः

- मृदा संबंधी कारक
- प्रजाति के आनुवांशिकीय कारक
- वातावरणीय / जलवायु परिवर्तन संबंधी कारक
- सस्य घटक संबंधी कारक
- असंतुलित मात्रा में कृषि रसायनों के उपयोग संबंधी कारक

कृषि जल के स्रोत

- वर्षा जल को विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है जैसे भूमि की सतह पर बहता वर्षा जल (अपवाह), मकानों की छत से गिरता वर्षा जल तथा प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त व बहता पानी।
- भू-जल
- कृत्रिम रूप से बनाए गए तालाबों में संचित जल
- नहरों एवं जलाशयों से प्राप्त जल

ऐसे करें कृषि में जल संरक्षण

विभिन्न फसलोत्पादन में कृषि जल संरक्षण हेतु प्रमुख वैज्ञानिक संस्तुतियों एवं तकनीकियों का विवरण अग्रवर्णित है :

1. प्रमुख फसलों में कृषि जल प्रबंधन

प्रमुख फसलों में कृषि जल संरक्षण के तरीकों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है :

(अ) धान की फसल में कृषि जल प्रबंधन

- श्री *(सिस्टम आंफ राइस इंटेन्सिफिकेशन-एस.आर.आई.)* तकनीक अपनाकर धान की खेती करने से 30 से 50 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत के साथ कृषि जल संरक्षण भी होगा।
- धान की खेती श्री तकनीक द्वारा करने से जल उपयोग क्षमता, मृदा उत्पादकता बढ़ने के साथ उत्पादन लागत में भी कमी आती है।
- धान को एरोबिक विधि से उगाने पर अन्य प्राकृतिक संसाधनों (पानी, श्रम एवं ऊर्जा) की भी बचत होती है।

श्री पद्धति से धान की बुवाई से जल संरक्षण

एरोबिक धान की बुवाई से जल संरक्षण

- धान को *एरोबिक* विधि से उगाने पर बालियां निकलते समय 1.0 से 3.0 से.मी. तक पानी की सतह तक होने पर भी फसल में बालियां निकल आती हैं।
- फसल की सिंचाई गीला और सूखा *(वेट एंड ड्राई)* पद्धति के आधार पर करने से सिंचाई जल की बहुत बचत होती है।
- कम समय में फसल की परिपक्वता होने तथा जल की अधिक मात्रा के उपयोग के कारण साठी धान की खेती करने से बचना चाहिए।

(ब) गेहूँ की फसल में कृषि जल प्रबंधन

- प्रायः बौने गेहूँ से अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए हल्की भूमि में पहली सिंचाई बुवाई के 22 से 25 दिन बाद *क्राउन रूट* (ताजमूल अवस्था), दूसरी सिंचाई बुवाई के 40 से 45 दिन बार किल्ले निकलने की अवस्था एवंतीसरी सिंचाई बुवाई के 60 से 65 दिन पर दीर्घ संधि या गाँठे बनते समय; चौथी सिंचाई बुवाई के 80 से 85 दिन पर पुष्पावस्था में; पाँचवी सिंचाई बुवाई के 100 से 105 दिनों पर दुग्धावस्था में तथा छठी व अंतिम सिंचाई बुवाई के 115 से 120 दिनों पर बाली में दाना बनते समय करने से सिंचाई के जल की बचत के साथ-साथ भरपूर उपज भी प्राप्त होती है।
- गन्ने के साथ गेहूँ की फसल लेने हेतु *फर्ब* विधि से गेहूँ एवं गन्ने की बुवाई करनी चाहिए। इस विधि के अपनाने से जल की बचत के साथ-साथ दोनों फसलों की उत्पादकता भी अधिक प्राप्त होती है। *फर्ब* विधि से गेहूँ एवं गन्ने की बुवाई कृषि जल संरक्षण का किफायती एवं उपयोगी तरीका है। इस विधि में औसतन 20 से 30 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत की जा सकती है। फर्ब विधि से गेहूँ एवं गन्ने की गई बुवाई के कृषि में अनेकोनेक लाभ हैं।
- विशेष अवस्था में गेहूँ में यदि मात्र तीन सिंचाई ही कर पर रहे हैं तो यह सिंचाईयाँ ताजमूल अवस्था, बाली निकलने के पूर्व तथा दुग्धावस्था पर ही करने से गेहूँ की भरपूर उपज प्राप्त होती है।
- दो सिंचाइयाँ उपलब्ध होने पर ताजमूल व पुष्पावस्था पर सिंचाई करने ही लाभदायक होता है।
- इसी प्रकार मात्र एक सिंचाई उपलब्ध होने पर ताजमूल की क्रांतिक अवस्था पर ही सिंचाई करना चाहिए।

(स) गन्ना की फसल में कृषि जल प्रबंधन

- गोल गड्ढा बुवाई विधि अपनाकर सिंचाई जल की औसतन 30 से 40 प्रतिशत बचत की जा सकती है। जल बचत के अलावा जल उपयोग क्षमता में 30 से 40 प्रतिशत तथा

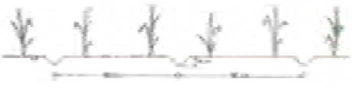

एकान्तर नाली सिंचाई विधि से जल संरक्षण

कूँड़ में सिंचाई करने से जल बचत

पोषक तत्व उपयोग क्षमता में 30 से 35 प्रतिशत तक वृद्धि होती है तथा गन्ने की उपज भी डेढ से दो गुना अधिक प्राप्त होती है।

- गन्ने में एकांतर नाली सिंचाई विधि अपनाने से औसतन 30 से 40 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है तथा जल उपयोग क्षमता में 60 से 65 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी हो जाती है।
- एकांतर नाली सिंचाई विधि अपनाने से फसल में खरपतवारनाशी रसायनों का उपयोग कम से कम होता है। इसलिए इनके छिड़काव हेतु घोल बनाने के लिए जल की भी जरूरत कम होने से जल की बचत होती है। साथ ही गन्ने की उपज भी अधिक प्राप्त होती है।
- गन्ने की कटाई के बाद गन्ने की सूखी पत्तियों को पेड़ी गन्ने की नालियों के बीच में 6 से 8 से.मी. मोटी परत में बिछाने से औसतन 40 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत की जा सकती है। इसके साथ ही साथ इससे मृदा नमी संरक्षण के साथ-साथ वाष्पोत्सर्जन भी कम होता है एवं मृदा उर्वरा शक्ति भी बढ़ती है।
- गन्ने की बुवाई नाली विधि से करने के बाद नालियों को पाटा लगाकर बंद करने से मृदा नमी संरक्षण में सहायक सिद्ध होती हैं।
- गन्ने की बढ़वार की चार अवस्थाओं के अनुसार सिंचाई (कुल 10) करने पर सिंचाई जल की औसतन 30 से 35 प्रतिशत बचत के साथ ही साथ जल उपयोग क्षमता 35 से 40 प्रतिशत बढ़ जाती है।
- सिंचाई जल की बचत के लिए गन्ने की सह-फसली खेती को वरीयता देना चाहिए। इस पद्धति से गन्ने की खेती में सिंचाई जल की काफी बचत की जा सकती है।

गन्ने की सूखी पत्तियों को पेड़ी गन्ने में बिछाकर सिंचाई जल का संरक्षण

- *फर्ब* विधि से गेहूँ एवं गन्ने की बुवाई कृषि जल संरक्षण का किफायती एवं उपयोगी तरीका है। इस विधि में औसतन 20 से 30 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत की जा सकती है।

नाली में सिंचाई से जल बचत गोल गड्ढे में सिंचाई से जल बचत फर्ब विधि से गेहूँ एवं गन्ने की बुवाई से जल बचत

2. फसल के सिंचाई नियोजन द्वारा कृषि जल संरक्षण

फसल का सिंचाई नियोजन उपलब्ध जल के अनुसार करना चाहिए। जल की कमी की अवस्था में केवल संवेदनशील स्थितियों में ही सिंचाई करना चाहिए। इससे 80 प्रतिशत तक उपज मिल सकती है। यदि पानी की कीमत 20 प्रतिशत फसल से अधिक है तो भी शेष सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं है। गेहूँ के मामले में अति संवेदनशील स्थितियाँ दो होती हैं: पहली- ताज मूल अवस्था *(सी.आर.आई.)* तथा- दूसरी गाँठ बनने की अवस्था। निचली भूमि एवं जहाँ पर अधिक वर्षा होती है वहाँ पर सभी फसलें बोई जा सकती हैं। किन्तु कम वर्षा वाले ऐसे क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हैं, तब वहाँ पर गेहूँ, ज्वार, मक्का, एवं बाजरा जैसी फसलें बोना चाहिए।

3. फसलों में सिंचाई का मध्यांतर की अवधि को फसलों में जल माँग के अनुसार

फसलों को पकने हेतु कृषि जल की आवश्यकता तथा उसमें सिंचाई के मध्यांतर की अवधि उस फसल पर निर्भर करती है। प्रमुख सब्जी फसलों की कृषि जल की आवश्यकता एवं सिंचाई के मध्यांतर की अवधि का विवरण सारणी-1 में दिया गया है।

सारणी 1. प्रमुख सब्जी फसलों की सिंचाई का मध्यांतर की अवधि को फसलों में जल माँग

सब्जी की फसल	फसल की पकने की अवधि (दिन)	सिंचाई मध्यांतर की अवधि (दिन)	सिंचाई जल की फसल की आवश्यकता (मि.मी.)
टमाटर	120	8–12	600–800
गोभी	80	8–10	380–500
फूलगोभी	90	8–10	400–500
बैंगन	90	10	600–700
लाल मिर्च	210	10	600–700

4. कम समय एवं कम पानी में पकने वाली फसलों की संस्तुति प्रजातियों की बुवाई द्वारा कृषि जल संरक्षण

वर्षा आधारित क्षेत्रों में कम पानी की जरूरत वाली और कम

अवधि की फसलें ही उगाना चाहिए। मोटे अनाज वाली फसलें, तिलहनी, दलहनी, सब्जी वाली फसलें, बागवानी फसलें, पुष्प व सुगंध वाले पौधे, कंद वाली फसलें एवं औषधीय फसलें उत्पादन कर सिंचाई जल की बचत की जा सकती है। कम समय एवं कम पानी में पकने वाली फसलों की संस्तुत प्रजातियों का विवरण सारणी 2 में वर्णित है :

सारणी 2-अल्प समय में पकने वाली फसलों की संस्तुति प्रजातियां

फसल	कम समय में पकने वाली फसलों की संस्तुति प्रजातियों
मक्का	पीईएचएम 3, पीईएचएम 5, पीईएचएम 2, प्रकाश, विवेक शंकर मक्का 4, विवेक शंकर मक्का 5 आदि
ज्वार	सीएसएच 9, सीएसएच 11, सीएसएच 13, सीएसएच 14, सीएसएच 16, सीएसएच 17,सीएसएच 18 एवं अन्य संकुल किस्में
बाजरा	संकर किस्में पूसा–23, पूसा–415, पूसा–605, पूसा–322, पूसा–1201, एचएचबी–50, एचएचबी–67, एचएचबी–68 आदि
अरहर	प्रभात, मानक, पूसा–16, पूसा– 33, पूसा–991, पूसा–992, उपास120, ए.एल.15

5. भू-जल रिचार्ज विधि अपनाकर जल संरक्षण

'जहाँ वर्षा जल की बूंदें गिरें उसे वहीं पर एकत्रित कर लें' की तर्ज पर निम्न नारा दिया गया :

खेत का पानी खेत में, नदी का पानी रेत में।
गाँव का पानी ताल में, आए काम अकाल में।।

इस नारे को साकार करने के लिए यह आवश्यक है कि वर्षा के जल का संरक्षण भू-जल रिचार्ज विधि अपनाकर किया जाय। वर्षा पर आधारित खेती को अधिक सफल बनाने के लिए वर्षा की एक-एक बूँद का उपयोग अत्यावश्यक है। चाहे वह नमी के रूप में भूमि में निहित रहे या वर्षा जल को किसी उचित स्थान पर संचित करके किया जाए जिसे आवश्यकतानुसार सिंचाई हेतु उपयोग में लाया जा सके।

6. प्रक्षेत्र (खेत) आधारित कृषि में जल संरक्षण

- मानसून से पहले खेत की लगभग 25 से.मी. गहरी जुताई और वर्षा के बाद कम गहरी (उथली) जुताई करने से खेत में ही जल का अधिकतम संरक्षण किया जा सकता है। माना जाता है कि इस तरह की जुताई से विशेषकर रेतीली दोमट मिट्टी में जल संरक्षण अधिक होता है।
- काली मिट्टी में दरारें बनने के कारण सिंचाई जल नीचे की परतों में चला जाता है। इन खेतों में छिद्रयुक्त पाइप के माध्यम से सिंचाई करना कृषि जल संरक्षण में सहायक सिद्ध होता है।

फसल अवशेषों की मल्चिंग छिद्रयुक्त पाइप के माध्यम से सिंचाई

- खाली खेत में फसल अवशेषों एवं खरपतवारों की पलवार दे देनी चाहिए। अगर खेत में एक से दो मीटर का ढाल हो तो *कंटूर* बनाने चाहिए।
- खाली खेत या फसल के साथ उगे हुए खरपतवारों को काटकर बाहर कर देना चाहिए, जिससे इनके द्वारा होने वाले जल की हानि को बचाया जा सके।
- ढलान वाले खेतों में ढ़लान का प्रतिशत 0.2 से 0.4 (दोमट मिट्टी) तक सुनिश्चित करने पर कृषि जल प्रबंधन आसानी से किया जा सकता है।
- हल्की, कंकरीली, पथरीली एवं रेतीली भूमि में पानी के संरक्षण के लिए *पॉली टैंक* बनाना चाहिए।

गहरी सतही नाली बनाकर वर्षा या सिंचाई जल

7. गहरी व सतही नाली बनाकर जल संरक्षण

दो खेतों के बीच में मेंड़ की जगह गहरी सतही नाली बनाने से वर्षा या सिंचाई जल की कुछ मात्रा को इन नालियों में संरक्षित किया जा सकता है। खेत में सतही व गहरी नालियाँ बनाकर किया गए संरक्षित जल की गुणवत्ता अच्छी होती है।

8. टपक सिंचाई विधि अपनाकर

- टपक सिंचाई विधि में औसतन 40 से 50 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत हो जाती है। फलों एवं सब्जियों की फसल में टपक सिंचाई विधि अपनाना काफी किफायती सिद्ध होता है। टपक सिंचाई विधि में जल उपयोग क्षमता 80 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।
- फलों एवं सब्जियों की फसल में टपक सिंचाई विधि से 20 से 25 प्रतिशत तक उपज में वृद्धि होती है।

9. कृषि घटकों एवं अन्य पद्धतियों को अपनाकर

- फसल को सिंचाई की जरूरत है कि नहीं, इसकी जानकारी

हेतु मृदा नमी के स्तर की जाँच करा ली जा सकती है।

- जल शक्ति अभियान के तहत शहरी क्षेत्रों के सीवर के पानी को प्रदूषण मुक्त कर उस जल को सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।
- भूमि को समतल करके हल्का ढाल देते हुए मिट्टी की किस्म के अनुसार क्यारी बनाकर सिंचाई करनी चाहिए। ऐसी सतही विधियाँ अपनाकर जल हानि काफी मात्रा में रोकी जा सकती है तथा 60 प्रतिशत तक जल का उपयोग पौधों के लिए किया जा सकता है।
- बाँस को झाड़ियों एवं घासों के साथ मेंडों पर कतार में रोपण करने से खेत के लिए कवच का काम करता है जो मृदा नमी के स्तर को बनाए रखने के साथ कृषि जल संरक्षण में सहायक होता है। इसलिए बांस को 'हरा सोना' कहा जाता है।
- फलों एवं सब्जियों की खेती की तरफ ज्यादा ध्यान देना चाहिए। इन फसलों के उगाने में लाभ की संभावनाएं अधिक होती हैं तथा जल की बचत भी होती है।

सिंचाई की आधुनिक पद्धति से कृषि जल की बचत नक्ट्या पद्धति सिंचाई से कृषि जल की बचत

- सिंचाई की पुरानी तकनीक की जगह, सिंचाई की आधुनिक पद्धतियों को अपनाना चाहिए जिससे जल उपयोग क्षमता एवं उत्पादकता बढ़ेगी।
- नलकूपों से सिंचाई के समय ''सिंचाई *सेंसर मॉडल*'' का उपयोग कर कृषि जल संरक्षण में मदद मिलती है।
- उच्च गुणवत्तायुक्त सिंचाई जल का फसलों में उपयोग करने से मृदा गुणों में सुधार होने के साथ-साथ फसल की उपज में वृद्धि तथा सिंचाई जल की बचत भी होती है।
- फसल की बुआई से पहले खेत में गोबर की सड़ी खाद की 200 से 250 क्विंटल/हे. उपयोग करना चाहिए। खादों के उपयोग से कृषि जल की बचत के साथ ही साथ मृदा उर्वरता भी बढ़ती है।

10. कृषि में जल संरक्षण हेतु किफायती उपाय एवं सुझाव

जल की बचत के लिए अन्य कृषि आधारित मितव्ययी, कारगर एवं आसान विधियों एवं उपायों का वर्णन निम्नवत है:

- किसान भाईयों को व्यक्तिगत रूप से जल संरक्षण अभियान चलाकर, सामाजिक जागरूकता के द्वारा एवं सामुदायिक स्तर पर भी जल संरक्षण उपाय करना चाहिए।
- कृषि मेला, कृषि गोष्ठियों एवं प्रचार माध्यमों से जन-जन तक यह संदेश पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए।
- कृषि जल संरक्षण विषय को प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक के पाठयक्रमों में सम्मिलित करने पर जोर देना चाहिए।
- पेयजल/कृषि जल संरक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी विभागों, स्वयं सहायता समूहों, निजी तौर पर एवं गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा समय-समय पर आयोजित/संचालित प्रशिक्षण एवं जागरूकता अभियान में शामिल होना चाहिए।
- पहले कहा जाता था कि ''घर-गाँवों की सभ्यता और संस्कृति की पहचान तालाबों से होती है''। अतः कृत्रिम रूप से बनाए गए तालाबों में वर्षा जल संचित कर जल सरंक्षण करना आज भी प्रासंगिक है। इस प्रकार से किए गए संचित जल को सिंचाई के लिए उपयोग में लाकर किसान भाई कृषि आय में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

कृषि में जल संरक्षण एवं प्रबंधन

हिमांशु राय
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत में जल संकट और इसका संरक्षण प्रमुख चिंताएं हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 'अपने मन की बात' कार्यक्रम के दौरान लोगों से देश के जल संकट के संरक्षण के लिए भी आग्रह किया है। आज, देश के कई हिस्से पानी के तीव्र संकट का सामना कर रहे हैं। इसलिए, भारत सरकार ने इष्टतम जल उपयोग के लिए वैकल्पिक फसलों के उत्पादन के माध्यम से पानी के संरक्षण के लिए एक कदम उठाया है।

भारत में कृषि के लिए पानी की आवश्यकता काफी अधिक है। हमारी कुल भूजल उपलब्धता में से, हम घरेलू उपयोग के लिए 6 प्रतिशत और औद्योगिक उद्देश्य के लिए 5 प्रतिशत का उपयोग करते हैं। शेष 89 प्रतिशत कृषि के लिए जाता है। हमारे शोध अध्ययन बताते हैं कि एक कि.ग्रा. धान उगाने के लिए, हम 5,600 लीटर पानी का उपभोग करते हैं जबकि चीन केवल 330-340 लीटर पानी के साथ धान का उत्पादन करता है।

भारत में जल संरक्षण की आवश्यकता क्यों?

- देश के 1787 लाख ग्रामीण परिवारों में से केवल 327 लाख या 18 प्रतिशत को ही नल कनेक्शनों से पीने का पानी प्राप्त होता है।
- आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, वर्ष 2050 तक, भारत जल असुरक्षा के लिए वैश्विक गर्म स्थान पर रहेगा।
- चीन और भारत क्रमशः दुनिया के दो सबसे बड़े चावल उत्पादक हैं। दोनों देश दुनिया के कुल चावल उत्पादन में लगभग आधा योगदान देते हैं।
- निकाले गए लगभग 89 प्रतिशत भूजल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता है और धान और गन्ना जैसी फसलें 60 प्रतिशत से अधिक सिंचाई के पानी का उपभोग करती हैं।
- आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, *फोकस* को भूमि उत्पादकता से सिंचाई जल उत्पादकता में स्थानांतरित करना चाहिए ताकि किसान जल संरक्षण पर काम कर सकें।

गन्ना उत्पादन में पानी की खपत कितनी ?

एक क्यूबिक मीटर पानी से भारत को लगभग 5.2 किलोग्राम गन्ना मिलता है। यह वैश्विक औसत 4.80 किग्रा/मीटर घन से बेहतर है। लेकिन दक्षिण अफ्रीका में पानी की मात्रा के साथ 7.8 किलोग्राम तक उत्पादन होता है जबकि थाईलैंड 5.8 और 6.5 किलोग्राम/मीटर घनपानी के बीच हो जाता है।

पानी का प्रबंधन कैसे करें?

एशियाई क्षेत्र में सिंचित चावल के लिए लगभग 1500 मि.मी. पानी की आवश्यकता होती है। चावल की फसल को कुल विश्व के सिंचाई के पानी का 34 प्रतिशत और 43 प्रतिशत या पूरे विश्व के विकसित मीठे पानी के संसाधनों का लगभग 24 प्रतिशत और 30 प्रतिशत की जरूरत होती है। चावल की खेती में कम पानी का उपयोग करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाया जा सकता है:

- व्यक्तिगत किसानों द्वारा पानी पर नियंत्रण में सुधार करने के लिए खेत में कुछ क्षेत्र पर चैनलों का निर्माण किया जा सकता है। इस तरह की चैनलों का निर्माण किसी भी प्रकार की सिंचाई प्रणाली में किया जा सकता है।
- अध्ययनों के अनुसार, भूमि भिगोने से पहले उथली जुताई का कार्य करना जल संरक्षण के लिए एक बड़ी मदद हो सकती है। यह दरारें भर देगा और भूमि की तैयारी में उपयोग किए जाने वाले पानी की मात्रा को काफी कम कर सकता है।
- किसान भाई समय-समय पर अपने खेतों को समतल करते हैं ताकि वे अधिक पानी बचा सकें। यह मात्रा फसल उगाने के लिए पानी की कुल आवश्यकता से लगभग 10 प्रतिशत अतिरिक्त है।
- इसके चारों ओर मेड़ों के निर्माण के साथ खेत को *कवर* किया जाना चाहिए। भारी वर्षा के दौरान बहने से बचने के लिए मेड़ों की औसत ऊँचाई कम से कम 20 से.मी. होनी चाहिए।

इजराइल में जल संरक्षण का उपयोग

जल संरक्षण के लिए इजराइल दुनिया के लिए एक आदर्श उदाहरण बन गया है क्योंकि यह अपने अपशिष्ट जल का लगभग 94 प्रतिशत उपयोग करता है और लगभग 85% पानी का पुनर्चक्रण करता है। इजरायल अगले पांच-सात वर्षों में इस स्तर को 90 प्रतिशत तक लाने की उम्मीद कर रहा है। भारत को सबसे

पहले *रेन वाटर कलेक्शन सिस्टम* लगाना होगा। साथ ही, भारत को यह सुनिश्चित करना होगा कि एकत्रित पानी दूषित न हो।

इजरायल एक ऐसा देश है जहाँ 50 प्रतिशत से अधिक पानी मानव निर्मित है। अर्थात वे अपशिष्ट जल से, या विलवणीकरण के माध्यम से जल बनाते हैं। इजरायल अपशिष्ट जल की हर बूंद को *रिसाइकिल* करता है और इसे उपयोग के लिए उपलब्ध कराता है। इजराइल में सूक्ष्म सिंचाई न केवल खेतों में बल्कि घास के लॉन, सार्वजनिक उद्यान और यहां तक कि घरों के अंदर उगने वाले पौधों में भी दिखाई देती है।

कृषि में जल संरक्षण और प्रबंधन

भारत एक विकासशील देश है, जिसका क्षेत्र विशाल है, जटिल स्थलाकृति है, परिवर्तनशील जलवायु है और एक बड़ी आबादी है। देश में अवक्षेपण तथा प्रवाह न केवल असमान रूप से वितरित है परन्तु वर्ष के दौरान भी पानी के वितरण के समय भी असमान हैं। जल्दी-जल्दी आने वाली बाढ़, सूखा तथा अस्थिर कृषि उत्पादन हमेशा से एक गंभीर समस्या रही है। भारतीय मौसम विभाग *(आई.एम.डी.)* के अनुसार भारत में वर्षा के केवल चालीस दिन होते हैं और फिर लंबी अवधि के लिये शुष्क मौसम होता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसका आर्थिक विकास कृषि से जुड़ा हुआ है। कृषि के लिये मुख्य सीमित कारण जल है। बढ़ती हुई जनसंख्या और परिणामस्वरूप खाद्य-उत्पादन में वृद्धि, कृषि क्षेत्र और सिंचाई क्षेत्र में वृद्धि के कारण जल का अधिक उपयोग हो रहा है। जल संसाधनों के अत्यधिक उपयोग के कारण, देश के कई भागों में पानी की कमी हो रही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिये कृषि में जल संरक्षण बहुत महत्त्वपूर्ण है।

जल संरक्षण तकनीक

भारत में जल का प्राथमिक स्रोत है दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पूर्वी मानसून। तथापि मानसून अनिश्चित होती है तथा वर्षा की अवधि और मात्रा हमारे देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग पायी जाती है। इसलिये सतह पर प्रवाह के संरक्षण की आवश्यकता है। सतही जल के संरक्षण की तकनीकें निम्नवत हैं:

भंडारण द्वारा सतह के पानी का संरक्षण

विभिन्न जलाशयों का निर्माण करके उनमें जल संग्रह करना जल संरक्षण का सबसे पुराना उपाय है। भंडारण की संभावना एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पानी की उपलब्धता और स्थलाकृतिक दशाओं पर निर्भर करती है। इस भंडारण के लिये वातावरण के अनुकूल नीति विकसित करने के लिये पर्यावरणीय प्रभाव के जाँच की आवश्यकता है।

वर्षा जल का संरक्षण

प्राचीन काल से हमारे देश के विभिन्न भागों में वर्षाजल संरक्षण करके कृषि के लिये प्रयोग में लाया जाता रहा है। यदि एक बड़े क्षेत्र में विरल वर्षा संग्रहित की जाएं तो उससे काफी मात्रा में जल प्राप्त हो सकता है। समोच्च खेती एक उदाहरण है ऐसी उपज- तकनीक का जिसमें बहुत साधारण स्तर पर पानी और नमी का नियंत्रण किया जा सकता है। प्रायः इसमें समोच्च के कटाव के साथ रखी चट्टानों की कतारें शामिल हैं। इन बाधाओं द्वारा रोका गया जल प्रवाह भी मिट्टी को रोकने में सहायता करता है जिससे कि कोमल ढलानों के लिये कटाव नियंत्रण का तरीका बन जाता है। जिन क्षेत्रों में बहुत अधिक तेजी से वर्षा होती है तथा जो बहुत बड़े क्षेत्रों में फैली होती हैं- जैसे हिमालय क्षेत्र, उत्तर पूर्वी राज्यों, अंडमान तथा निकोबार द्वीप-उनमें यह तकनीक विशेष रूप से उपयुक्त होती है।

भूमिगत जल की विशेषताएँ

1. सतह जल की तुलना में भूमिगत जल अधिक है।
2. भूमिगत जल कम खर्चीला आर्थिक संसाधन है एवं लगभग प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध हैं।
3. भूमिगत जल, पानी की आपूर्ति के लिये, अधिक टिकाऊ संपोषणीय तथा विश्वसनीय स्रोत है।
4. भूमिगत जल प्रदूषण के प्रति अपेक्षाकृत कम संवेदनशील है।
5. भूमिगत जल रोगजनक जीवों से मुक्त है।
6. भूमिगत जल का प्रयोग करने से पहले थोड़े से उपचार की आवश्यकता होती है।
7. भूमिगत जल को सूखे से कम खतरा है।
8. भूमिगत जल शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिये जीवन की कुंजी होता है।
9. भूमिगत जल सूखे मौसम में नदियों और धाराओं के प्रवाह का स्रोत है।

भारत में कुल 4,000 अरब घन मीटर प्रवाह के लगभग 45 लाख हेक्टेयर मीटर भूमिगत जल प्रवाह के रूप में रिस जाता है। सम्पूर्ण भूमिगत जल संसाधनों का दोहन संभव नहीं हो सकता। भूमिगत क्षमता केवल 490 अरब घन मीटर है। सीमित जल उपलब्ध होने के कारण यह अत्यंत आवश्यक है कि हम इसका प्रयोग बहुत मितव्यता तथा विवेकपूर्ण ढंग से करें और अधिकतम संरक्षण करें। भूमिगत जल प्रबंधन और जल संरक्षण की कुछ

तकनीकें निम्नवत वर्णित हैं :-

(i) कृत्रिम पुनर्भरण

जिन क्षेत्रों में पानी दुर्लभ है, वहाँ भूमिगत जल पर निर्भरता बढ़ रही है। कम और अनिश्चित वर्षा के कारण भूमिगत जल स्तर में जल्दी गिरावट आती है। कृत्रिम उपायों से भूमिगत जल को भरना ही एकमात्र विकल्प है। भूमिगत जल का कृत्रिम रूप से प्रबंधन और विकसित करने की कई तकनीकें हैं। इनमें से एक उपाय है जिसमें पानी फैले हुए क्षेत्र में और अधिक समय के लिए मिट्टी के संपर्क में रहता है जिससे पानी को भूमि में प्रवेश करने का अधिकतम अवसर मिल सके।

(ii) टपकन टैंक विधि

टपकन टैंक कृत्रिम पुनर्भरण के लिये जल कोर्स बनाये जाते हैं। महाराष्ट्र में किया गया अध्ययन दर्शाता है कि औसतन 1.2 कि.मी.^{2} की टपकन से प्रभावित क्षेत्र में औसतन भूमिगत जल वृद्धि 2.5 मीटर तथा भूमिगत के प्रत्येक टैंक से वार्षिक कृत्रिम पुनर्भरण 1.5 (हेक्टे. मी.) हो जाता है।

(iii) जल का अंतः बेसिन स्थानान्तरण

उत्तरी एवं पूर्वी क्षेत्रों में गंगा एवं ब्रह्मपुत्र द्वारा जल प्रवाह से इन क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में जल संसाधन उपलब्ध रहते हैं। इस प्रकार, पानी को इन क्षेत्रों से दूसरे जगह ले जाया जाता है। वहाँ से कम जल क्षेत्रों में ले जाने के लिये गंगा कावेरी लिंक के माध्यम से जल की बहुत बड़ी मात्रा गंगा बेसिन से भेजने का काम करते हैं जो अंत में पश्चिमी एवं दक्षिण-पश्चिमी भारत के समुद्र में गिरती हैं। गंगा जल की अधिक मात्रा का परिवहन नियमित रूप से पानी की कमी को दूर करने के लिये सोन, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा एवं कावेरी नदियों में भेज दिया जाता है।

(iv) छिड़काव सिंचाई

सतही सिंचाई पद्धतियाँ, जिनका प्रयोग परंपरागत रूप से हमारे देश में किया जाता है, वे कम पानी वाले क्षेत्रों के लिये सर्वदा अनुपयुक्त हैं क्योंकि जल की एक बड़ी भारी मात्रा वाष्पीकरण और रिसाव के कारण नष्ट हो जाती है। *ड्रिप* सिंचाई, सिंचाई का एक उपयुक्त तरीका है। संयंत्र के पास एक सीमित क्षेत्र में *ड्रिप* जल से सिंचाई होती है। यह किसी भी क्षेत्र के लिये उपयुक्त तरीका हो सकता है- विशेष रूप से पानी के लिये दुर्लभ क्षेत्रों में। यह पद्धति विशेष रूप से पंक्तिबद्ध फसल के लिये उपयोगी है। इसी प्रकार की छिड़काव पद्धति भी कम पानी वाले क्षेत्रों के लिये उपयोगी है। छिड़काव सिंचाई पद्धति 50 प्रतिशत से 70 प्रतिशत पानी की खपत कम कर सकती है।

फसल उगाने के तरीकों का प्रबंधन

जल की कमी वाले क्षेत्रों में, फसल का चयन पानी की उपयोग दक्षता पर आधारित होना चाहिए। कम जल-क्षेत्रों के लिए जो पौधे उपयुक्त हैं वे (i) विकास के लिये कम अवधि वाले पौधे (ii) बहुत उपज प्रदान करने वाले पौधे जिनको पानी की आपूर्ति में वृद्धि की कोई आवश्यकता नहीं। (iii) बहुत गहरी और अंदर तक फैली जड़ों वाले पौधे (iv) वे पौधे जो सतह सिंचाई नहीं सहन कर सकते हैं।

(i) फसल की किस्मों का चयन

फसल का प्रदर्शन तथा उपज जीनप्रारूप अभिव्यक्ति करके पर्यावरण के साथ लगातार पारस्परिक क्रिया करने का परिणाम होता है। प्रायः फसल की नयी किस्मों को पुरानी किस्मों से अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती हैं। यद्यपि इनको ठीक समय पर पानी की आपूर्ति की आवश्यकता है क्योंकि इनकी उत्पादकता अधिक होती है। उच्च पैदावार प्राप्त करने के लिये बड़े अंतराल पर भारी प्रवाहकीय सिंचाई की तुलना में निरंतर दी जाने वाली हल्की सिंचाई अधिक लाभदायक है।

(ii) प्रतिवाष्पोत्सर्जकों का प्रयोग

प्रतिवाष्पोत्सर्जकों का प्रयोग वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया को कम कर देता है जिससे कि ऊतक जल-क्षमता (स्थैतिकी) बनी रहती है। जब पौधे भूमि से कम पानी लेते हैं, प्रतिवाष्पोत्सर्जक भूमिगत जल की कमी को धीरे करके सिंचाई के अंतराल को लम्बा कर सकते हैं। कायोलीन (3 प्रतिशत) और *लाइम वाश* (2 प्रतिशत) पौधों का जल संतुलन बनाए रखता है। परिणामस्वरूप नमी से संबंधित तनाव की स्थिति के बावजूद भी चारे की सामान्य उपज हो जाती है। कुछ वृद्धि नियमकों द्वारा भी पौधों का जल तनाव के प्रति संवेदनशीलता कम हो जाती है। साइसोइयोल का प्रयोग जिबरेलिक अम्ल का उत्पादन कर देता है जो रंध्रों को बंद करता है। जल के वाष्पोत्सर्जन का नुकसान कम हो जाता है।

(iii) उद्वाष्पन-वाष्पोत्सर्जन कम करना

उद्वाष्पोत्सर्जन की कमी, पौधों की सतह से वाष्पोत्सर्जन एवं मिट्टी से उद्वाष्पन को कम से कम किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में, भूमि की सतह से उद्वाष्पन में काफी मात्रा में पानी उड़ जाता है। यह सब पानी को नमी अवरोध लगाकर अथवा धरती की सतह पर जलरोधी मल्च रखने से रोका जा सकता है। कागज, एस्फाल्ट, प्लास्टिक, या धातु जैसी अछिद्रित सामग्रियाँ भी वाष्पीकरण हानि को रोक सकती हैं। वाष्पोत्सर्जन घाटे को कम किया जा सकता है- फसलों के ऊपर हवा की गति को कम करने से, वायुरोधक लगाने से तथा ऐसी फसलों को उगाने से जो

मरूद्भि अनुकूलन के योग्य हैं।

विभिन्न जल निकायों से उद्वाष्पन को कम करना

हमारे देश के बहुत से क्षेत्रों में उद्वाष्पन के द्वारा जल की काफी बड़ी मात्रा की क्षति हो जाती है। ऐसा अनुमान हैं कि 10,000 हेक्टेयर भूमि से लगभग प्रतिवर्ष 160 मिली मीटर^3 जल की क्षति होती है। संग्रह टैंकों, जलाशयों, सिंचाई टैंकों, नदियों एवं नहरों से उद्वाष्पन द्वारा होने वाली जल की क्षति को कम करके उस पानी का उपयोग अन्य कामों में किया जा सकता है। ऐसी विधियाँ जिनसे जल निकायों से उद्वाष्पन कम किया जा सकता है- वायु रोधकों को लगाना, उद्वाष्पन के लिये उपलब्ध ऊर्जा को कम करके, कृत्रिम जलभश्तों का निर्माण करके, जलाशय नियंत्रक द्वारा सतह को कम उद्भाषित करके, क्षेत्र का जल निकायों का अनुपात कम करके, उच्च ढालों पर जलाशय का निर्माण करके।

पानी की कमी को कम करना

ऐसे कई उपाय हैं जिनसे उद्वाष्पन के कारण हुए जल के घाटे को कम कर सकते हैं तथा मिट्टी की नमी को सुधार सकते हैं। उनमें से कुछ नीचे सूचीबद्ध किये गये हैं:-

1. *मल्चिंग* अर्थात जैविक या अकार्बनिक पदार्थों के प्रयोग से पौधों के मलवे, खाद आदि, मिट्टी की नमी में सुधार लाना, वाष्पीकरण की हानियों को कम करना तथा मिट्टी की उर्वरता को बेहतर बनाना है।
2. फसलों से ढकी मिट्टी, धीमे जल प्रवाह, कम वाष्पीकरण से होने वाली हानियाँ- अतः खेतों को बहुत लंबे समय तक के लिए खाली नहीं छोड़ना चाहिये।
3. जुताई धरती को हिलाकर ढीला कर देती हैं। परिणामस्वरूप धरती ज्यादा पानी सोख लेती हैं जिससे कि वाष्पीकरण कम हो जाता है।
4. कृषि क्षेत्रों की बढ़त के साथ-साथ लगी हुई वृक्षों और झाड़ियों की *बेल्ट* हवा की गति को कम कर देती है तथा वाष्पीकरण और क्षरण कम कर देती है।
5. वृक्षों का रोपण, घास और झाड़ियाँ वर्षा की तेजी को रोकता है और वर्षा के जल को मिट्टी के अंदर प्रवेश करने में सहायता करते हैं।
6. कोहरा और जल ओस में पर्याप्त मात्रा में जल होता है जो अनुकूलित संयंत्र प्रजातियों द्वारा सीधे इस्तेमाल किया जाता है। कृत्रिम सतहों, जैसे कि सतह जाल या पॉलीथीन शीट-कोहरे और ओस के सामने उजागर किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप पानी का प्रयोग फसलों के लिये किया जा सकता है।

जल संरक्षण हेतु किए जा रहे मुख्य प्रयास

i. राष्ट्रीय जल नीति 2002 में पानी के संरक्षण पर जोर
ii. विभिन्न योजनाओं के माध्यम से जमीन पर वर्षा जल को बनाए रखने के प्रयास किये गये।
iii. विभिन्न नदी प्रणालियों पर बड़ी संख्या में बांधों के निर्माण
iv. नदियों को जोड़ने का प्रस्ताव
v. गाँवों के स्तर पर बांधों का संवर्धन
vi. वर्षाजल संचयन का संवर्धन
vii. बर्बाद जल के पुनः प्रयोग और पुनर्चक्रण का संवर्धन
viii. जल की गुणवत्ता को बचाने के लिए कदम उठाना।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

खेती के लिए जल सरंक्षण परमावश्यक

राम किशोर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कृषि विकास किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड है। सघन फसल उत्पादन में पानी एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसका कोई विकल्प नहीं है। वस्तुतः यह कटु सत्य है कि सम्पूर्ण विश्व में जल ही ऐसा संसाधन है जो निरंतर चिंता का विषय बना हुआ है। वर्तमान में जल संकट के कई कारण हैं, जैसे जनसंख्या वृद्धि, कम होती वर्षा का परिमाण, बढ़ता औद्योगिकीकरण, बढ़ता शहरीकरण, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, विलासिता, आधुनिकतावादी प्रवृत्ति एवं जल के प्रति संवेदनहीनता, भूजल पर बढ़ती निर्भरता एवं इसका अत्यधिक दोहन, परम्परागत जल संग्रहण तकनीकों की उपेक्षा, समाज की सरकार पर बढ़ती निर्भरता, कृषि में बढ़ता जल का उपभोग आदि। आकाशवाणी के माध्यम से मन की बात में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 22 मई 2016 को पानी बचाने, बारिश का पानी सहेजने और जल सिंचन में मितव्ययता पर देर तक बात की। उन्होंने देश के लोगों से अपने मन की बात करते हुए इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर अपने विचार रखे। प्रधानमंत्री भी देश में व्याप्त जल संकट से चिंतित नजर आए। उन्होंने देश में कई जगह पानी को लेकर किये जा रहे अच्छे कामों की सराहना करते हुए देशवासियों से आग्रह किया कि अभी अच्छी बारिश आने तक चार महीनों में हम सबको पानी के लिये काम करने का समय है। हमें बारिश की हर बूँद को सहेजना है।

जल संरक्षण

वर्षा का ज्यादातर पानी सतह की सामान्य ढालों से होता हुआ नदियों में जाता है तथा उसके बाद सागर में मिल जाता है। वर्षा के इस बहुमूल्य शुद्ध जल का भूमिगत जल के रूप में संरक्षण अति आवश्यक है। भूमिगत जल कुएँ, नलकूप आदि साधनों द्वारा खेती और जनसामान्य के पीने हेतु काम आता है। भूमिगत जल, मृदा (धरती की ऊपरी सतह) की अनेक सतहों के नीचे चट्टानों के छिद्रों या दरारों में पाया जाता है। उपयोगिता की दृष्टि से भूमिगत जल, सतह पर पीने योग्य उपलब्ध जल संसाधनों के मुकाबले अधिक महत्त्वपूर्ण है। भारत के लगभग अस्सी प्रतिशत गाँव, कृषि एवं पेयजल के लिये भूमिगत जल पर ही निर्भर हैं और दुश्चिंता यह है कि विश्व भूमिगत जल अपना अस्तित्व तेजी से समेट रहा है। अन्य विकासशील देशों में तो यह स्थिति भयावह है ही जहाँ जल स्तर लगभग तीन मीटर प्रति वर्ष की रफ्तार से कम हो रहा है, पर भारत में भी स्थिति कुछ बेहतर नहीं है। केन्द्रीय भूजल बोर्ड के अन्वेषणों के अनुसार भारत के भूमिगत जलस्तर में 20 सेंटीमीटर प्रतिवर्ष की औसत दर से कमी हो रही है, जो हमारी भीमकाय जनसंख्या की जरूरतों को देखते हुए गहन चिंता का विषय है।

वर्षा जल और सतही जल का आपसी संबंध भी जानना आवश्यक है। नदियों में बहने वाला जल केवल वर्षा जल अथवा ग्लेशियर से पिघलकर बहता हुआ पानी ही नहीं है। नदी अपने जल में भूमिगत जल से भी योगदान लेती है, साथ ही भूमिगत जल को योगदान देती भी है। ताल, झील और बाँधों के इर्द-गिर्द भूमिगत जल की सहज सुलभता का कारण यही है कि ये ठहरे हुए जलस्रोत आहिस्ता-आहिस्ता अपना पानी इन भूमिगत प्राकृतिक जल संग्रहालयों को प्रदान करते रहते हैं। इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर पाए जाने वाले जलस्रोत और भूमिगत जलस्रोत एक दूसरे की सहायता पर निर्भर होते हैं। वर्षा का जल यदि संग्रहित चट्टानों तक पहुँचाया जाये तो भूमिगत जलाशयों को भरा जा सकता है। प्रकृति अपने सामान्य क्रम में यह कार्य करती रहती है। किंतु आज जब यह समस्या विकराल रूप ले चुकी है, तो मनुष्य के लिये अभियान चलाकर यह कार्य करना आवश्यक हो गया है। इस अभियान का प्रमुख उद्देश्य जल को जीवन मान कर बचाया जाना और सरल वैज्ञानिक विधियों द्वारा इसे भूमि के भीतर पहुँचाया जाना है, जिसमें हम सभी को जुटना होगा।

भूमिगत जल के संचयन एवं संरक्षण हेतु प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्तर पर निम्न कार्य अवश्य ही करना चाहिएः

- वर्षाकाल में मकानों की छत पर गिरे जल को जमीन में पहुँचाने की व्यवस्था बना दी जाए।
- आँगन को कच्चा रखने की पुरानी परम्पराओं का पालन किया जाए।
- कम से कम एक वृक्ष अवश्य लगाया जाए।
- पानी की बर्बादी को रोका जाए, जैसे कि उपयोग के बाद नल को बंद कर दिया जाए।

सरकारी प्रयास और वैज्ञानिक शोधों से इस समस्या का आंशिक समाधान ही निकलेगा, आकाशीय पानी को भूगर्भ स्रोत

से जोड़ने के लिये जगह-जगह पर *रिचार्ज पिट* की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि अतिवृष्टि में भी पानी बह कर बर्बाद नहीं हो। वर्षा जल संरक्षण जरूरी भी है और हमारी जिम्मेदारी भी है।

कम पानी की सिंचाई पद्धतियां

वैज्ञानिकों ने निरंतर अनुसंधान द्वारा ऐसी सिंचाई विधियां विकसित की हैं जिनसे पानी व ऊर्जा की न केवल बचत होती है, वरन कृषि उपज भी अधिक प्राप्त होती है। ये पद्धतियां हैं- फव्वारा एवं बूँद-बूँद सिंचाई प्रणाली। इन पद्धतियों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि पानी का ह्रास नहीं होता, क्योंकि पानी पाइप द्वारा प्रवाहित होता है तथा फव्वारा या बूँद-बूँद रूप में दिया जाता है। इन पद्धतियों से 75 से 95 प्रतिशत तक पानी खेत में फसल को मिलता है, जबकि प्रचलित सतही विधियों में 40 से 60 प्रतिशत ही फसल को मिल पाता है। इतना ही नहीं, फव्वारा एवं बूँद-बूँद सिंचाई पद्धतियों की खरीद पर सरकार 50 से 75 प्रतिशत तक अनुदान भी देती है।

फव्वारा पद्धति

इस पद्धति में पानी पाइप व फव्वारों द्वारा वर्षा के रूप में दिया जाता है। यह विधि असमतल भूमि के लिये अति उपयुक्त है। यह विधि 2 से 10 कि.ग्रा./सें.मी.^{2} दाब पर काम करती है। नोजल का व्यास 1.5 मि.मी. से 40 मि.मी. तक होता है। इनसे 1.5 लीटर/सेकेंड से 50 लीटर/सेकेंड की दर से पानी फव्वारे के रूप में निकलता है। एक फव्वारे द्वारा 6 से 160 मीटर तक क्षेत्रफल सिंचित किया जा सकता है। हमारे देश में बहुधा 6 से 15 मीटर की दूरी तक पानी छिड़कने के सिंचाई फव्वारे उपलब्ध हैं। इन्हें चलाने के लिये 2.5 कि.ग्रा./सें.मी.^{2} दबाव की जरूरत होती है। यह विधि बाजरा, गेहूँ, सरसों व सब्जियों के लिये अति उपयुक्त पाई गई है। कम लवणीय जल होने पर भी यह विधि उपयोग में लाई जा सकती है, परंतु अधिक लवणीय जल होने पर यह अनुपयुक्त है। इस विधि द्वारा नाइट्रोजन उर्वरक, कीट एवं कवकनाशक दवाईयों का भी छिड़काव किया जा सकता है।

बूँद-बूँद सिंचाई

इस विधि से भी पानी पाइप एवं *ड्रिपर* इत्यादि से दिया जाता है। सामान्यता एक *ड्रिप* 2 से 10 लीटर प्रति घंटा पानी देता है। इस विधि में मुख्य पाइप 50 मि.मी. उप-मुख्य पाइप 35 मि. मी. तथा सिंचाई पाइप 12 से 16 मि.मी. व्यास के होते हैं। इस विधि में सिंचाई वाली पाइप भूमि सतह से 30 से 40 से.मी, गहरा रखकर भी सिंचाई की जा सकती है। *ड्रिप* बंद होने की समस्या को एक प्रतिशत गंधक के तेजाब अथवा नमक के तेजाब (*हाइड्रोक्लोरिक* अम्ल) का घोल बनाकर *ड्रिपर* को धोने से दूर की जा सकती है। इस विधि से मजदूरी, पानी, बिजली तथा रासायनिक उर्वरकों की बचत होती है यह विधि रेतीली मिट्टी के लिये बहुत ही उपयुक्त है।

- बूँद-बूँद सिंचाई द्वारा विभिन्न फसलों में 30 से 50 प्रतिशत तक पानी की बचत व डेढ़ से दो गुना अधिक पैदावार मिलती है। बूँद-बूँद सिंचाई थोड़ी महँगी है। अतः दो पंक्तियों के बीच एक *ड्रिप लाइन* 1.20 से 1.50 मीटर की दूरी पर डालने से 50 प्रतिशत खर्चा कम किया जा सकता है। इस विधि द्वारा लवणीय पानी भी सब्जियों में दिया जा सकता है।
- सिंचाई की कोई भी विधि क्यों न हो, वाष्पोत्सर्जन की अपेक्षा वाष्पीकरण की हानि कम होनी चाहिए। पानी इस तरह से देना चाहिए, जिससे अंतः भूमि सतह में कटाई के समय पानी न के बराबर रहे। इसी प्रकार सिंचाई जल की मात्रा इतनी भी ज्यादा न रहे कि भूमि की अंतः सतह में पानी चला जाए। उपयुक्त वर्णित सिंचाई प्रबंधन से हम प्रति इकाई पानी से अधिक पैदावार लेकर अपने जलस्रोतों को लम्बे समय तक प्रयोग में ले सकते हैं। इसके साथ ही भूमि की उर्वरा शक्ति को अक्षुण बनाए रख सकते हैं। हमारा दूसरी हरित क्रांति का सपना पानी का सदुपयोग करने से ही पूरा होगा।
- लवणीय जल से भी सिंचाई की जा सकती है। इसको उपयुक्त बनाने के निम्नलिखित सुझावों को अपनाकर किसान भाई उपज में लाभ प्राप्त कर सकते हैं:

1. लवण सहनशील फसलें, जैसे-गेहूँ, बाजरा, जौ, पालक सरसों आदि का अधिक उपयोग करें।
2. सिंचाई करते समय फव्वारा एवं बूँद-बूँद सिंचाई प्रणाली को अपनाएं।
3. जल निकास की समुचित व्यवस्था रखें एवं हरी खाद का अधिक प्रयोग करें ।
4. वर्षा के समय खेत में मेड़बंदी कर वर्षा के पानी को एकत्रित करें, जिससे लवण घुलकर बाहर आ जाएंगे।
5. सिंचाई की संख्या बढ़ाएं तथा प्रति सिंचाई कम मात्रा में जल का प्रयोग करें।
6. यदि पीने योग्य पानी की अच्छी सुविधा उपलब्ध है, तो लवणीय जल तथा मीठे जल दोनों को मिलाकर भी सिंचाई की जा सकती है।

अतः आशा की जाती है कि किसान भाई वर्षा जल का भूजल के रूप में संचयन करते हुए सिंचाई की उन्नत विधियों को अपनाकर कृषि में हो रहे जल अपव्यय को रोक सकते हैं।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

कृषि में जल संरक्षण कैसे करें ?

दिव्या साहनी, पल्लवी, वी.पी. जायसवाल, लालन शर्मा एवं आशा गौड़
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

जल प्रकृति का मानव के लिए अनमोल तोहफा है जो जीवन का आधार है। पृथ्वी का लगभग तीन चौथाई भाग जल से ढका है तथा मात्र एक चौथाई भाग पर धरातल है। सात महासागर पानी से भरे होने के बावजूद हमें पीने के पानी के भारी संकट से सामना करना पड़ रहा है। पृथ्वी का 1 प्रतिशत जल ही उपयोग हेतु उपलब्ध है जिसमें से 70 प्रतिशत से अधिक जल का सिंचित कृषि में प्रयोग हो रहा है। उद्योगों में 20 प्रतिशत और घरेलू उपयोग में केवल 8 प्रतिशत जल ही उपयोग में लाया जाता है जो बहुत कम है जबकि पृथ्वी का लगभग 97 प्रतिशत जल समुद्र में जाता है, जिसे शुद्ध करके उपयोग में लाना बहुत मँहगा है। विश्व की लगभग 16 प्रतिशत आबादी भारत में रहती है जबकि इसके पास विश्व की 2 प्रतिशत भूमि तथा 4 प्रतिशत पानी के स्रोत है। भारत में 83 प्रतिशत पानी का प्रयोग कृषि के लिए होता है। भारत में वर्ष में करीब 100 घंटे ही वर्षा होती है। जल संकट का समाधान भी इन्ही 100 घंटों में होने वाली वर्षा के पानी के संचयन, कुशल प्रयोग एवं सुप्रबंधन द्वारा ही संभव है। जल संकट को दूर करने का एक मात्र उपाय है कि इसका उपयोग घी की तरह करें और पेट्रोल की तरह इसकी उत्पादकता का आकलन करते रहें।

अतः यह सोचने का विषय है कि कहीं हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को उनके अधिकार से वंचित तो नहीं कर रहे? इस गंभीर समस्या से बचने के उपाय करें ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियां हम पर गर्व कर सकें।

उचित प्रबंध- किसी भी वस्तु का संरक्षण करने में सबसे महत्वपूर्ण बात है कि उस वस्तु विशेष का उपयोग आवश्यकता के अनुसार ही करें। उपलब्ध उपयोगी जल की 70 प्रतिशत मात्रा का प्रयोग कृषि कार्यों एवं खाद्यान्न उत्पादन में किया जाता है। वर्तमान समय तक भी हमारी कृषि पद्धति जल संरक्षण के सम्पूर्ण उपायों को उपयोगी नहीं बना पायी बल्कि प्रयोग किए गए जल की अधिकांश मात्रा व्यर्थ बहा दी जाती है। अधिकांश वर्षा जल भूमि की भौतिक दशा ठीक न होने के कारण भूमि में अवशोषित नहीं हो पाता है। वर्तमान समय में अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाने वाले उर्वरक के कारण भी फसलों की जल मांग में बढ़ोतरी हुई है। मृदा में जैसे-जैसे जैविक अंश की कमी आयी है वैसे-वैसे जल धारण क्षमता में कमी आ रही है। परम्परागत सिंचाई विधियों के उपयोग से प्रति इकाई क्षेत्र में ज्यादा पानी देना पड़ता है। अतः आवश्यक है कि सिंचाई की निम्नलिखित उन्नत विधियों का उपयोग करें :

फव्वारा सिंचाई पद्धति का प्रयोग- सिंचाई की विभिन्न पद्धतियों में फव्वारा सिंचाई को अपनाकर जल प्रबंधन को सुनिश्चित किया जा सकता है और जल संरक्षण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि से सिंचाई में जल का अपव्यय नहीं होता है। अतः क्यारी विधि की अपेक्षा फव्वारा सिंचाई पद्धति उन्नत एवं आधुनिक होने के साथ-साथ प्रत्येक दृष्टिकोण से अत्यंत किफायती भी है। इस विधि में सिंचाई क्यारियों में न करके पाइपों एवं नोजलों के माध्यम से वर्षा के रूप में की जाती है। इस पद्धति में प्लास्टिक अथवा एल्युमिनियम पाइपों का खेत में जाल बिछाकर ऊँचे-नीचे, रेतीले, पहाड़ी व पथरीली सभी प्रकार की जमीन में सहजता से सिंचाई की जा सकती है। यह विधि जल संरक्षण के साथ-साथ मृदा अपरदन रोकने तथा भू-संरक्षण में भी सहायक होती है, क्योंकि इस विधि से सिंचाई करते समय जल बहकर बाहर नहीं जाता है। इस विधि द्वारा सिंचाई करने से, क्यारियों में की गई सिंचाई की तुलना में 30-40 प्रतिशत पानी की बचत होती है। इस बचत का उपयोग सिंचित क्षेत्र बढ़ाने, भूमिगत जलस्तर सुदृढ़ करने, अधिक जल दोहन के कारणों से होने वाली हानि को रोकने में किया जा सकता है।

बूँद-बूँद *(ड्रिप)* सिंचाई पद्धति का प्रयोग- पानी की कमी देखते हुए इस अमूल्य संसाधन को आने वाली पीढ़ियों के लिये सुरक्षित रखने के लिये अति आवश्यक है कि उपलब्ध उपयोग जल की दक्षता को बढ़ाएं तथा बूँद-बूँद सिंचाई तकनीक को समय रहते अपनाएं। जल प्रबंधन एवं उपलब्ध संसाधनों का भरपूर उपयोग के लिये *ड्रिप* प्रणाली सिंचाई का एक अच्छा साधन है। यह सिंचाई की नवीन पद्धति है जिसके द्वारा पौधों को उसकी आवश्यकता के अनुसार मृदा के प्रकार, जलवायु, फसल की मांग उम्र एवं प्रकृति को ध्यान में रखते हुए बूँद-बूँद करके पौधों की जड़ों के पास जल उपलब्ध कराया जाता है। बूँद-बूँद विधि को अपनाने से लगभग 60-70 प्रतिशत पानी की बचत होती है। यह पद्धति रेतीली मिट्टी एवं ऊबड़-खाबड़ भूमि के लिए भी अत्यन्त

उपयोगी है। इसके साथ ही श्रम व आर्थिक बचत के साथ फसल की गुणवत्ता भी अच्छी प्राप्त होती है। इस विधि से पौधों में सिंचाई जल का धीमा किंतु सतत प्रयोग करते हुए, इसे पौधों की जड़ में *ड्रिपर* की मदद से सुगमतापूर्वक पहुँचाया जाता है। इस प्रकार मृदा में सिंचाई जल की गहराई में प्रवेश होने पर जल वाष्पीकरण तथा बहाव जैसे कारणों से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। इससे पानी की 60-70 प्रतिशत मात्रा की बचत होती है।

फसलों को आवश्यकतानुसार पानी दें- जिन क्षेत्रों में अभी पानी की थोड़ी बहुत उपलब्धता है, उन क्षेत्रों में आज भी कृषक भाई फसल की माँग से कई गुना पानी का प्रयोग कर देते हैं। जिससे फसल की उपज में भी कमी आ जाती है। फसल उत्पादन में सिंचाई के समय का जितना महत्त्व है उतना ही फसल की आवश्यकतानुसार जल की मात्रा का भी है। जल संरक्षण एवं उसके उचित प्रयोग के लिये आवश्यक है कि किसी फसल में कितनी सिंचाई और एक सिंचाई में कितने जल की मात्रा दी जाय। जल की आवश्यक मात्रा विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। इनमें फसल की किस्म, भूमि की किस्म, बुवाई का समय, जलवायु आदि प्रमुख हैं। विभिन्न फसलों के लिये सिंचाई की जल मांग एवं क्रांतिक अवस्थाएँ अलग-अलग होती हैं। अतः पानी की कम उपलब्धता वाले क्षेत्रों के लिये आवश्यक है कि सिंचाई क्रांतिक अवस्थाओं में ही करें तथा अतिरिक्त मात्रा में जल न देकर केवल जल मांग के अनुसार ही सिंचाई करें।

फसल योजना तैयार करना एवं किस्मों का चुनाव- पानी की उपलब्धता के अनुसार फसल योजना तैयार करनी चाहिए। पर्याप्त सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर मक्का-गेहूँ या बाजरा-गेहूँ फसल चक्र उपयुक्त होता है। एक ही सिंचाई उपलब्ध होने पर चना व *तारामिरा* तथा दो सिंचाई उपलब्ध होने पर सरसों व धनिया अधिक लाभप्रद रहता है। तीन या तीन से अधिक सिंचाई मिलने पर गेहूँ की खेती करनी चाहिए। खरीफ में वर्षा न होने या देरी से होने की स्थिति में खरीफ में बुवाई नहीं करनी चाहिए तथा नमी संचय कर चना, तोरिया या सरसों की बुवाई करनी चाहिए, जिससे वर्षा की नमी का लाभ लेते हुए एक सिंचाई से भी इन फसलों से अधिक लाभ लिया जा सकता है। पानी की कमी वाले क्षेत्रों में सूखा सहने वाली, कम अवधि में पकने वाली फसलों का चयन किया जाना चाहिए। जैसे ज्वार, बाजरा, अरंडी, मोठ, मूँग, तिल *तारमिरा* व कुसुम आदि। फसल विशेष के चयन के बाद उनकी ऐसी किस्मों का चुनाव करें जो कम समय में पककर तैयार हो जाती हों तथा अधिक उपज भी देती हों।

वर्षा जल का संग्रहण- कम समय में बरसा अधिक पानी न केवल अपधावन के रूप में व्यर्थ जाता है, बल्कि अपने साथ उपजाऊ मिट्टी भी बहा ले जाता है। यदि उचित जल प्रबंधन विधियों द्वारा वर्षा का जल संग्रहीत करके उससे वैज्ञानिक विधियों द्वारा खेती की जाए तो भूमि कटाव रोकने के अतिरिक्त, फसल उत्पादन में स्थायित्व प्राप्त किया जा सकता है। आज तेजी से गिरते हुए भूजल स्तर को काफी हद तक रोका जा सकता है। सोख्ता गड्ढे का उपयोग भूजल स्तर को स्थाई रखने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। इन गड्ढों के माध्यम से अपवाह के रूप में बहने वाले फालतू जल का मृदा में पुनर्भरण करके जलस्तर को स्थायित्व दिया जा सकता है। बरसाती पानी बहकर निकलने वाले मार्गों पर सोख्ता गड्ढा बनाना चाहिए। इस गड्ढे का आकार स्थानीय परिस्थिति के अनुरूप गोल, चौकोर या किसी भी आकार का हो सकता है। इस गड्ढे की लंबाई, चौड़ाई और गहराई वर्षा जल के वेग और उससे मिलने वाली संभावित मात्रा पर निर्भर करती है। साधारणतया तीन मीटर गहरे सोख्ता गड्ढे में 1.5 मीटर मोटी *बोल्डर* की परत चढ़ायें। इसके ऊपर बजरी की परत तथा मोटी रेत की लगभग 0.5 मीटर मोटी परत चढ़ायें। इसके बाद बारीक रेत से भरकर ऊपर जाली या खजूर की पत्तियाँ डाल दें। जिससे इसमें पानी गाद या कचरा प्रवेश न कर सके। इसे *हैंडपम्प* के बहने वाले पानी के स्थान पर भी बनाया जा सकता है।

जैविक खादों का प्रयोग- भूमि में लगातार अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने से मृदा की जल धारण करने की क्षमता में कमी आती है तथा सिंचाई एवं वर्षाजल की अधिकांश मात्रा खेत से फालतू बह जाती है। अतः भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने व अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि भूमि में अधिक मात्रा में जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए जिससे भूमि की उर्वरता के साथ-साथ अधिक नमी संग्रहण में महत्त्वपूर्ण योगदान मिलेगा। कार्बनिक खादों में गोबर की खाद, कंपोस्ट खाद, हरी खाद, नीम खली तथा वर्मीकंपोस्ट के प्रयोग से मृदा जल संग्रहण की क्षमता में बहुत वृद्धि होती है तथा लंबे समय तक नमी बनी रहती है।

कृषि वानिकी- शुष्क खेत में नमी व भूमि संरक्षण के लिये कृषि वानिकी बहुत महत्त्वपूर्ण है। वृक्ष भूमि को हवा व पानी द्वारा होने वाले कटाव से बचाते हैं। भूमि में पत्तियाँ मिलने से कार्बनिक पदार्थ बढ़ता है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति तथा पानी ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है। पेड़ अपधावन द्वारा बहने वाले पानी की गति में अवरोध उत्पन्न कर भूमि कटाव को कम करते हैं। जिन क्षेत्रों में सघन वन होते हैं, वहाँ वातावरण में नमी अधिक पाई जाती है जिससे ठंडक पैदा होती है और वर्षा का आवागमन भी बढ़ता है। इसके अतिरिक्त, वृक्षों से चारा, जलाऊ लकड़ी, गोंद,

फल व अन्य उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। वृक्षों के साथ फसल उगाने से फसलों को अधिक नमी व पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। कृषि वानिकी में खेजड़ी, देशी बबूल, रोहिडा के पौधे लगाने चाहिए। खेजड़ी के वृक्षों के साथ बाजरा, मूँग, मोंठ, ग्वार, गेहूँ, जौ, चना व सरसों फसलें सामान्य से अधिक पैदावार देती हैं।

कृषि उद्यानिकी- कृषि उद्यानिकी पद्धति में फलदार पौधों की दो पंक्तियों के मध्य शीघ्र पकने वाली फसलें उगायी जा सकती हैं। शुष्क क्षेत्र में सफलतापूर्वक उत्पादन देने वाले फल वृक्ष बेर, लसौड़ा, बेल, आंवला, फल उत्पादन के साथ-साथ जलस्तर को गिरने से रोकने में महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभाते हैं। इन वृक्षों के लगे रहने से मृदा कटाव में कमी तथा मृदा की जलधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है। इस पद्धति में फल की पैदावार के अतिरिक्त, फसल उत्पादन भी प्राप्त कर आमदनी बढ़ाई जा सकती है। इन सभी फल वृक्षों को पानी की अधिक आवश्यकता भी नहीं होती जिससे पानी की आवश्यकता में भी कमी आयेगी।

खरपतवार नियंत्रण- खरपतवार पोषक तत्व, नमी, स्थान तथा प्रकाश आदि के लिये प्रतियोगिता कर फसल की वृद्धि, उपज व गुणों में ह्रास करते रहते हैं। खरपतवार का जड़ तंत्र फसलों की अपेक्षा ज्यादा विकसित होने के कारण भूमि की गहराई से नमी का अवशोषण करते हैं। अतः मृदा में नमी को बचाए रखने के लिये आवश्यक है कि खरपतवार प्रारंभिक अवस्था से ही नियंत्रित होने चाहिए। खरपतवारों को भू-परिष्करण गुड़ाई और खरपतवारनाशी सभी के समन्वित प्रयोग द्वारा प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

जल नष्ट होने वाली एक अमूल्य निधि है जिसे प्रकृति ने हमें उपहार स्वरूप भेंट किया है। इस पर हमारा नैतिक दायित्व बनता है कि इस अमृत को आने वाली पीढ़ियों के लिये संजोकर रखें। इस सुंदरतम सृष्टि का अस्तित्व लंबे समय तक बनाये रखने के लिये हमें जल की प्रत्येक बूँद को मितव्ययता के साथ प्रयोग में लेकर, आने वाली पीढ़ी को भी जल की उपयोगिता समझानी होगी। कहीं ऐसा न हो कि यह अमृत समय से पहले ही नष्ट हो जाय।

आज आवश्यकता है एक जल क्रांति की जिसमें किसानों और वैज्ञानिकों को एक चुनौती स्वीकार करनी होगी और खोजने होंगे नये-नये तरीके जिससे इस विलीन होती अमृत तुल्य विरासत को हमेशा-हमेशा के लिये बनाए रखा जा सके। वर्षा के पानी का संग्रह अवश्य करें ताकि जल संकट का सामना किया जा सके। प्रकृति के इस अनमोल उपहार को व्यर्थ न होने दें। वर्षा का पानी पेयजल के एक बड़े हिस्से को पूरा करने में सक्षम है तथा सिंचाई के लिए सर्वोत्तम है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर कृषि में प्रयुक्त 70 प्रतिशत जल संपदा को संरक्षित रखते हुए खेती की जाए तो कृषि उत्पादन में टिकाऊपन लाया जा सकता है तथा आये दिन पड़ने वाले सूखे व अकाल से मुकाबला किया जा सकता है।

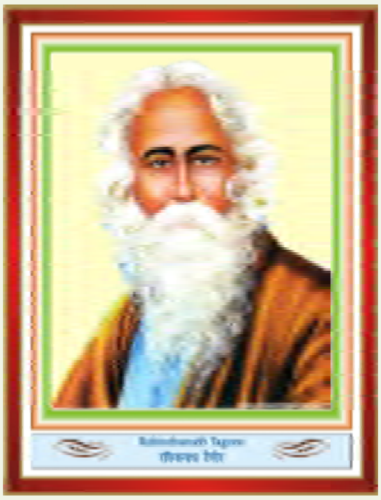

आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल कमल के सामान है, जिसका एक-एक दल प्रांतीय भाषा और उसकी साहित्य संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियां जिनमें सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने अपने घर में (प्रांत में) रानी बनकर रहें। प्रांत के जन-गण की भाषायें प्रकाश भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्य मणि हिन्दी, भारत-भारती होकर विराजती रहे।

- रवीन्द्र नाथ टैगोर

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

कृषि में जल संरक्षण

आकांक्षा विश्वकर्मा
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

जल प्रकृति की अनमोल धरोहर है। बिना पानी के जीवन संभव नहीं है। पीने के लिये शुद्ध जल हमारे लिये जरूरी है क्योंकि स्वच्छ एवं सुरक्षित जल अच्छे स्वास्थ्य की कुंजी है। धरती के दो तिहाई हिस्से पर पानी भरा हुआ है। फिर भी पीने योग्य शुद्ध जल पृथ्वी पर उपलब्ध जल की मात्रा का मात्र 1 प्रतिशत हिस्सा ही है। 97 प्रतिशत जल महासागर में खारे पानी के रूप में भरा हुआ है। शेष 2 प्रतिशत जल बर्फ के रूप में जमा है। आज समय की माँग है कि हम पानी की कीमत समझें। यदि जल व्यर्थ बहेगा तो आने वाले समय में पानी की कमी एक महासंकट बन जाएगी। कृषि प्रधान देश भारत, जहाँ पर सिंचाई भी एक गम्भीर समस्या बन कर उभर रही है, यह समस्या आने से एक प्रश्न उठना लाजिमी है कि जहाँ नदियों का इतना विस्तृत संगम है, वहाँ सिंचाई जैसी समस्या का होना यह दर्शाता है कि वहाँ के नागरिक अपने वातावरण के प्रति कितना स्नेहपूर्ण व्यवहार रखते हैं।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जब एक प्रतिष्ठित पत्रिका का पत्रकार कृषि की स्थिति का जायजा लेने के लिए गाँवों में किसानों के बीच जाता है तथा उनसे बतौर *सर्वे* एक प्रश्न पूछता है कि आप अपने बच्चों को भविष्य में क्या बनाना चाहते हैं? तब प्राप्त उत्तर बहुत चौकाने वाला होता हैं। ऐसे देश में जहाँ कृषि मात्र एक आर्थिक व्यवसाय व रोजगार का प्रश्न न होकर लोगों की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था तथा आस्था से जुड़ा मामला हैं, जहाँ कृषकों की फसलों के हिसाब से त्योंहारों का निर्धारण होता है तथा कवियों की कल्पना में इसके स्वर्णिम दौर के गीत विद्यमान हैं, वहाँ 40 प्रतिशत किसान अपने बच्चों को किसानी के धन्धे को नहीं अपनाने देना चाहते। उनके अनुसार विकल्प के रूप में वे बच्चे को कुछ भी सम्मानजनक कार्य करने की सहमति देंगे, लेकिन खेती-किसानी को नहीं। किसानों का यह उत्तर एक बार चौकाता जरूर है, लेकिन कोई भी प्रबुद्ध संवेदनशील व्यक्ति भारत में कृषि की स्थिति को देखेगा तो संभवतः यही उत्तर देगा। कृषकों में लगातार बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति भारत में कृषि के जीवन-निर्वाह के बेहतर साधन न रह जाने की तस्दीक ही करती है।

यह विडंबना इसलिए भी ज्यादा वीभत्स महसूस होती है क्योंकि भारत ही वह देश हैं जहाँ "भूमि" को "माँ" का दर्जा मिलता है, जहाँ हर जलवायु एवं हर प्रकार की फसल को समर्थन करने वाली मिट्टियाँ हैं, और पर्वत, पठार, तटीय मैदान, डेल्टा आदि भी यहाँ हैं जिनमें हर प्रकार की फसल का उत्पादन हो सकता है। एक ऐसा विशाल मानव श्रम भी यहीं है जो कृषि से संबंधित पारंपरिक ज्ञान भी रखता हैं तथा इसके साथ ही उत्पादन को खपाने के लिए विशाल बाजार की भी यहाँ उपलब्धता हैं। इसी वजह से "भारत" को "खेत" का पर्याय माना जाता हैं। लेकिन यह यथार्थ अब धूमिल होता होता नजर आ रहा हैं।

यहाँ पर जल प्रदूषण एक बड़ी समस्या है। नदियों के किनारे, नगर, महानगर, बड़े-बड़े शहर और फैक्ट्रियाँ हैं जो इस समस्या को बढ़ावा दिन दुगुने रात चौगुने के साथ कर रही हैं। जिसका परिणाम कृषकों को भुगतना पड़ रहा है, क्योंकि नदियों का सूखना, निर्धारित समय से वर्षा न होना और अचानक से बाढ़ आ जाना कृषकों के लिए समस्या का अम्बार लगा देते हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए मानव को प्राकृतिक संसाधनों का सीमित मात्रा में सदुपयोग करना चाहिए तथा जल संरक्षण को बढ़ावा देना चाहिए।

कृषि में जल संरक्षण के उपाय निम्नवत् हैं :-

(1) जन भागीदारी से जल संरक्षण - हमारे देश के पूर्वजों से हमें अनेक प्रकार के जलस्त्रोत विरासत में मिले हैं। यदि हमने इस विरासत को संभाल कर नहीं रखा तो आने वाली पीढ़ियाँ हमें माफ नहीं करेंगी। हमारे देश के गाँव-गाँव में परम्परागत कुएँ, बावड़ी व तालाब बने हुए हैं। पिछले वर्षों में लम्बे समय से हम इनकी अनदेखी करते आ रहे हैं।

सिंचाई के लिए ये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। इन्हें या तो तोड़फोड़ दिया गया है या प्राकृतिक रूप से नष्ट हो गए हैं। आगे से इन जलस्रोतों की चिन्ता हम सभी मिलकर करेंगे तभी जल संकट से निजात मिल सकेगी और कृषि कार्य में इनका उपयोग हो सकेगा।

"बिना पानी जीवन बदहाली, पानी से है हरियाली"

(2) जल भण्डारणः जल भण्डारण के लिए सरकार को उचित कानून बनाने चाहिए तथा जो व्यक्ति इन कानूनों का पालन न करें उनके लिए सजा का प्रावधान होना चाहिये। जिससे जल स्तर को बढ़ाया जा सके तथा बारिश का पानी व्यर्थ न हो। बारिश के पानी का भण्डारण करना चाहिए ताकि वह रिसकर जमीन के जलस्तर को बढ़ा सके और वर्षा जल जो बहकर समुद्र में मिल जाते हैं को

बचाया जा सकें और भविष्य में होने वाले पेयजल और खाद्य समस्याओं से बचा जा सके। यह कृषि के स्तर को उचित स्थान देने में आवश्यक होगा।

(3) *ड्रिप* सिंचाई विधि – इस विधि के अन्तर्गत स्त्रोत से नियंत्रित जल प्रवाह पाइप द्वारा प्रवाहित किया जाता है। इस पाइप में छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। जिनके द्वारा बूँद-बूँद कर पानी पौधे की जड़ की पास टपकता रहता है। इस विधि का प्रयोग साग-सब्जियों, फूलों, फलदार पेड़ों की सिंचाई के लिए अधिक उपयोगी होता है। महाराष्ट्र सहित कई जगहों पर गन्ने की फसल में भी सफलतापूर्वक यह विधि अपनाई जाती है। इस विधि से नियंत्रित मात्रा में पानी, उर्वरक एवं कीटनाशी रसायन प्रभावी ढंग से प्रयोग किये जा सकते हैं।

इस विधि से सिंचाई करने पर खरपतवार एवं रोगों को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। इससे जहाँ एक ओर श्रमिकों पर व्यय में भारी बचत होती है वहीं पर कम जल में अधिक सिंचाई की जा सकती है।

"पानी सबकी प्यास बुझाता, किसान इससे फसल उगाता"

पर्यावरण के प्रति जागरूकता जरूरी है क्योंकि पर्यावरण संतुलन का सकारात्मक प्रभाव जल संरक्षण पर पड़ता है। कटते वृक्षों के कारण भूमि की नमी लगातार कम हो रही है जिससे भूजल स्तर पर बुरा असर पड़ रहा है। अतः जरूरी है कि वृक्षारोपण कार्यक्रम हेतु जागरूकता लाई जाए।

(4) फव्वारा सिंचाई – फव्वारा द्वारा सिंचाई एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा पानी का हवा में छिड़काव किया जाता है और यह पानी भूमि की सतह पर कृत्रिम वर्षा के रूप में गिरता है। पानी का छिड़काव दबाव द्वारा छोटी *नोजल* या *ओरीफिस* में प्राप्त किया जाता है। पानी का दबाव पम्प द्वारा भी प्राप्त किया जाता है। कृत्रिम वर्षा चूंकि धीमें-धीमें की जाती है, इसलिए न तो कहीं पर पानी का जमाव होता है और न ही मिट्टी दबती है। इससे जमीन और हवा का सबसे सही अनुपात बना रहता है और बीजों में अंकुर भी जल्दी फूटते हैं।

फव्वारा सिंचाई योजना राजस्थान में धौलपुर *लिफ्ट* परियोजना में पहली बार अनिवार्य किया गया है। यह केवल राजस्थान ही नहीं, अपितु देश की भी पहली पाइपलाइन एवं फव्वारा आधारित सिंचाई परियोजना है।

(5) *रेनगन* सिंचाई- खेतों में सिंचाई के लिए 'बूंद-बूंद' और 'फौव्वारा तकनीक' के बाद अब *रेनगन* आ गयी है जो 20 से 60 मीटर की दूरी तक प्राकृतिक बरसात की तरह सिंचाई करती है। इसमें कम पानी से अधिक क्षेत्रफल को सींचा जा सकता है। सब्जी तथा दलहनी फसलों के लिए यह *माइक्रो स्प्रिंकलर सेट* बहुत उपयोगी है। इससे ढाई मीटर के व्यास में बरसात जैसी बूंदों से सिंचाई होती है।

(6) पेड़-पौधों की सुरक्षा – प्रदूषित धुएं की चिमनियाँ 50 मीटर ऊपर लगाने का प्रमाणन देने चाहिए, जिससे पेड़-पौधों को इनके धुएँ से नुकसान या पर्णहरित छिद्र को हानि न हो और वे लम्बे समय तक जीवित रहें एवं जलचक्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करें। बिना पेड़-पौधों के वर्षा होना सम्भव नहीं हैं जो कि कृषि के क्षेत्र में अपूर्णनीय क्षति होगी। इसी प्रकार बारिश के बिना कृषि करना सम्भव नहीं हैं।

यदि समय रहते कृषि की समस्याओं का ध्यान न दिया गया तो भारत जैसे देश में जो 2027 तक विश्व का सबसे बड़ा जनसंख्या वाला देश होगा और यहाँ पर खाद्यान्न समस्याओं का पिटारा खुल जायेगा। जो एक बार फिर चीन के भुखमरी इतिहास को दोहरा देगा।

धरती पर जीवन का सबसे जरूरी स्रोत जल है क्योंकि हमें जीवन के सभी कार्यों को निष्पादित करने के लिये जल की आवश्यकता है जैसे पानी पीने, भोजन बनाने, नहाने, कपड़ा धोने, फसल पैदा करने आदि के लिये। बिना इसको प्रदूषित किये भविष्य की पीढ़ी के लिये जल की उचित आपूर्ति के लिये हमें पानी को बचाने की जरूरत है। हमें पानी की बर्बादी को रोकना चाहिये, जल का उपयोग सही ढंग से करना चाहिए तथा पानी की गुणवत्ता को बनाए रखना चाहिये।

समस्या भूजल की कम अथवा उसके अतिदोहन की ही नहीं बल्कि उसकी गुणवत्ता की भी है। देश के अनेक हिस्सों एवं राजस्थान में अधिकांश शुष्क क्षेत्रों में किसानों को सिंचाई जल की कमी तथा उसके क्षारीय एवं लवणीय होने की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। अतः हमें जल के संरक्षण के साथ-साथ जल की गुणवत्ता को भी ध्यान में रखना होगा। हम यह कहते हैं कि भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ के अधिकांश लोग आज भी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। दूसरे शब्दों में हमारी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि ही है। इन परिस्थितियों में कृषक की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

जल संरक्षण आज के पूरे विश्व की मुख्य चिंता है। प्रकृति हमें निरंतर वायु, जल, प्रकाश आदि शाश्वत गति से दे रही है लेकिन हम विकास की आंधी में बराबर प्रकृति का नैसर्गिक संतुलन बिगाड़ते जा रहे हैं। जल संरक्षण हेतु समय रहते चेत जाने की जरूरत है क्योंकि-

"रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून,
पानी गये न ऊबरै, मोती, मानुष, चून।।"

हमारे कृषकों की दशा में निरंतर सुधार से देश की अर्थव्यवस्था पर विशेष प्रभाव पड़ेगा। तब अवश्य ही एक स्वावलंबी, आत्मनिर्भर एवं अग्रणी भारत की हमारी परिकल्पना साकार हो सकेगी।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

कृषि में जल संरक्षण के उपाय

राम लखन शाक्य, अनुज कुमार, अनिल कुमार मौर्य एवं उपेन्द्र यादव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

जल संकट आज भारत के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। जिस भारत में 70 प्रतिशत हिस्सा पानी से घिरा हो, वहाँ आज स्वच्छ जल उपलब्ध न होना पानी की विकट समस्या दर्शाता है। भारत में तीव्र नगरीकरण से तालाब और झीलों जैसे परम्परागत जल स्रोत सूख गए हैं। भारत में वर्तमान में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 2,000 घनमीटर है लेकिन यदि परिस्थितियाँ इसी प्रकार रहीं तो अगले 20-25 वर्षों में जल की यह उपलब्धता घटकर 1,500 घन मीटर रह जायेगी। जल की उपलब्धता का 1,680 घन मीटर से कम रह जाने का अर्थ है पीने के पानी से लेकर सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता न रहने पर खाद्य संकट भी उत्पन्न हो जायेगा। जल संकट के कुछ कारण निम्नलिखित है:

- जनसंख्या में वृद्धि
- औसत वर्षा में गिरावट आना
- प्रति व्यक्ति जल खपत में वृद्धि
- भू-जल स्तर में निरन्तर गिरावट आना
- जल का आवश्यकता से अधिक दोहन
- लोगों में जागरूकता का अभाव
- खारेपन की समस्या।

किसानों द्वारा जल का संरक्षण करने के उपाय

1. लेजर द्वारा भूमि का समतलीकरण: भूमि समतलीकरण किसी न किसी यन्त्र के द्वारा हर किसान द्वारा किया जाता रहा है। लेकिन आम यन्त्रों में समतलीकरण की क्षमता ट्रैक्टर चालक की निपुणता पर निर्भर होती है। इसके फलस्वरूप अधिकांशत: समतलीकरण प्रभावी नहीं हो पाता है। लेजर द्वारा समतलीकरण की तकनीक एक नई तकनीक है जिसमें ट्रैक्टर चालक की भूमिका लगभग नगण्य होती है। संस्थान द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है कि लेजर द्वारा समतलीकरण किए गए धान के खेतों में 10 प्रतिशत एवं गेहूँ के खेतों में 10-20 प्रतिशत पानी की बचत की जा सकती है। गेहूँ की फसल में पानी की बचत के साथ-साथ 10-15 प्रतिशत अधिक उपज भी मिलती है। इसीलिए यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि लेजर समतलीकरण द्वारा पानी की उत्पादकता में काफी वृद्धि की जा सकती है।

2. भू-जल रिचार्ज: 'जहाँ बूंद गिरे उसे वही समेट लो' की तर्ज पर "खेत का पानी खेत में और गाँव का पानी गाँव में"। इस नारे को साकार करने के लिए यह आवश्यक है कि वर्षा के पानी का समुचित उपयोग किया जाए। हरियाणा राज्य के लगभग आधे क्षेत्र में अधिक पम्पिंग के कारण भू-जल स्तर में लगातार गिरावट दर्ज की जा रही है। यह गिरावट दर 20-60 से.मी. प्रति वर्ष तक आंकी गई है। लेकिन कुरूक्षेत्र जिले के एक ब्लाक में तो यह दर प्रति वर्ष 100 से.मी. से भी अधिक मापी गई है। भू-जल स्तर में गिरावट को रोकने के लिए वर्षा ऋतु में पानी को बह कर नालों

में जाने की अपेक्षा भू-जल रिचार्ज के लिए प्रयोग करने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित तीन उपाय गाँव व किसान स्तर पर किए जा सकते हैं:

- पुराने तालाबों की खुदाई एवं नवीनीकरण द्वारा गाँव के व्यर्थ जाने वाले पानी को संचित किया जा सकता है। ऐसी प्रकिया भू-जल स्तर को ऊपर उठाने में भी सहायक सिद्ध हो सकती है।
- गिरते हुए भू-जल स्तर को स्थिर करने के लिए वर्षा अथवा नहर से मिलने वाले अधिक पानी को भूमि के अन्दर भेजा जा सकता है। इसके लिए एक सस्ती एवं कम रख-रखाव वाली *साफ्ट* प्रणाली लगाई जा सकती है।
- संस्थान के सहयोग से आगरा में चलाई जाने वाली ओ.आर.पी. में भी खुले कुओं द्वारा वर्षा जल के फालतू पानी को रिचार्ज करने के प्रयास किए गए हैं। संस्थान के वैज्ञानिकों ने इसी संदर्भ में एक सस्ती तथा उन्नत *साफ्ट* का

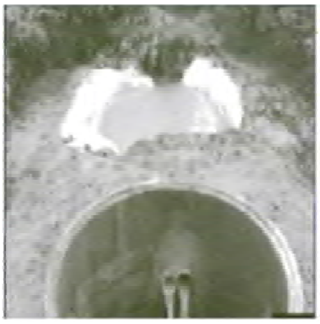

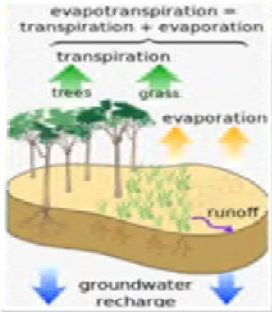

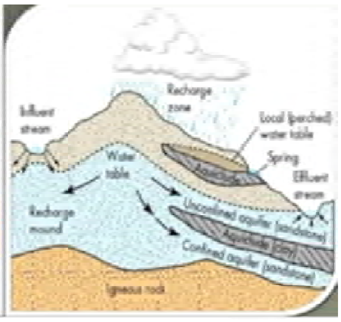

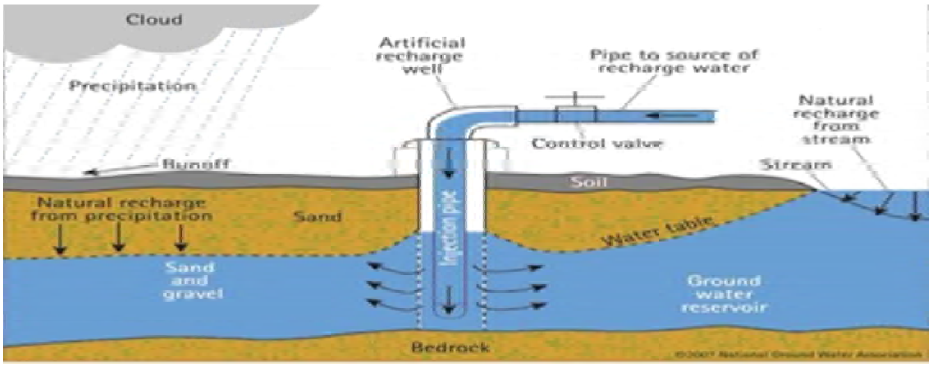

विकास किया है। इसके उपयोग से खुले कुओं में रिचार्ज के समय आने वाली समस्याओं का निदान करने की कोशिश की गई है।

3. फसल परिवर्तन तथा *ड्रिप* का प्रयोग: धान-गेहूँ फसल चक्र की लाभप्रदता दिनों-दिन कम होती जा रही है। अधिक आमदनी के लिए किसान भाईयों को अब इस फसल चक्र से निकलकर सब्जियों अथवा फलों की खेती की ओर मुड़ना चाहिए। इन फसलों के उगाने में कठिनाईयाँ जरूर हैं लेकिन लाभ की सम्भावनाएं भी उतनी ही अधिक हैं। सब्जियों तथा फलों की खेती के साथ-साथ यदि *ड्रिप* सिंचाई अथवा बूंद-बूंद सिंचाई का प्रावधान भी कर दिया जाए तो पानी की ज्यादा से ज्यादा बचत की जा सकती है। *ड्रिप* सिंचाई में *ड्रिपर* द्वारा पानी बूंद-बूंद के रूप में पौधों की जड़ों में दिया जाता है। यह पद्धति फलों एवं सब्जियों की फसलों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। पानी की मात्रा 2 से 20 लीटर प्रति घंटा तक मृदा के प्रकार के अनुसार निश्चित की जा सकती है। *ड्रिप* सिंचाई से जल की उपयोग दक्षता 80 प्रतिशत से अधिक होती है जो सतही अथवा फव्वारा पद्धति की तुलना में काफी अधिक है। पारंपरिक सतही सिंचाई की तुलना में जल की औसतन 40 से 50 प्रतिशत बचत की जा सकती है वहीं उत्पादन में 20 से 25 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है। आज जब किसान भाईयों की धान-गेहूँ फसल चक्र छोड़कर सब्जियों तथा फलों की ओर प्रेरित करने के प्रयास किए जा रहे हैं तब

बूँद-बूँद सिंचाई प्रणाली जल संरक्षण तथा जल उत्पादकता बढ़ाने के लिए अत्यन्त कारगर सिद्ध हो सकती है।

4. लवणीय-क्षारीय जल का प्रयोग: हरियाणा के लगभग आधे क्षेत्र में भूजल लवणीय अथवा क्षारीय है। इस जल के कृषि में उचित उपयोग द्वारा मीठे पानी की कमी को काफी हद तक दूर किया जा सकता है। इसके प्रयोग द्वारा जलाक्रान्ति अथवा मृदा लवणता की समस्याओं से भी निदान मिल सकता है। परीक्षणों द्वारा ज्ञात हुआ है कि यदि मीठे पानी की कमी हो तो उस पानी से कुछ सिंचाई करने के पश्चात् शेष सिंचाईयाँ लवणीय-क्षारीय जल से करने पर लवणीय-क्षारीय जल से सिंचाईयाँ न करने की अपेक्षा अधिक उपज ली जा सकती है। यदि अच्छा पानी न मिले तो लवणीय-क्षारीय पानी का प्रयोग करें तथा फसलानुसार पूरी सिंचाईयां करें। लेकिन अत्यधिक खारे जल को सीधे सिंचाई हेतु उपयोग में नहीं लाया जा सकता है। इसके लिए मीठे एवं लवणीय-क्षारीय जल के समुच्चय उपयोग की सिफारिशें की गई हैं।

• सतही एवं भूमिगत जल निकास के पानी का उपयोग: समय-समय पर किये गये परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि सतही जल निकास नालियों के पानी की गुणवता कृषि में प्रयोग के लिए उपयुक्त है। इसीलिए सतही नालियों के पानी को किसी भी फसल की सिंचाई के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। भूमिगत जलनिकास नालियों से निकलने वाला पानी कम अथवा अधिक लवणीय हो सकता है। लेकिन यह देखने में आया है कि भूमिगत जलनिकास लगाने के उपरान्त, इस तन्त्र से निकलने वाले जल की गुणवत्ता अच्छी होती जाती है। जहाँ कम लवणीय पानी का प्रयोग सीधे ही उपयोग में लाया जा सकता है वहीं अधिक लवणीय पानी को नहरी पानी के संयुक्त प्रयोग द्वारा फसलों की सिंचाई के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

वर्षा जल संरक्षण एवं प्रबंधन

रंजय कुमार सिंह
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, राजस्थान

पानी की समस्या हमारे देश के लिए ही नहीं, समूचे विश्व के लिए एक गंभीर समस्या है। किसी भी देश की कृषि की क्षमता निर्धारित करने में जल एक महती भूमिका का निर्वहन करता है। विश्व की आबादी में हमारी भागीदारी लगभग 17 प्रतिशत है, जबकि उपयोग में लाये जाने वाले पानी की दृष्टि से हमारे देश में केवल 4 प्रतिशत जल उपलब्ध है, जिसका 83 प्रतिशत उपयोग कृषि के लिए होता है। बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं अधिक कृषि उत्पादन प्राप्त करने हेतु भूमिगत जल का दोहन लगातार बढ़ता जा रहा है, जिसके कारण भूमिगत जलस्तर दिन-प्रतिदिन नीचे गिरता जा रहा है। एक वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार भूगर्भ जल का स्तर प्रतिवर्ष 20-60 से.मी. तक नीचे जा रहा है। पृथ्वी पर उपस्थित जल स्रोतों को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- सतही स्रोत एवं भूमिगत स्रोत।

जल के सबसे अधिक सुविधाजनक और धरातल की सतह के ऊपर पाये जाने वाले सतही स्रोतों में नदियाँ, तालाब, जल धाराओं, जलाशयों, नहरों, कुंडिकाओं आदि को सम्मिलित किया जाता है, जबकि वर्षा का जल अलग-अलग सतही स्रोतों के द्वारा भूमि में सोख लिए जाने के उपरांत जो भूग्रहण क्रियाप्रणाली से धरातल के आंतरिक भागों में पहुँच कर एकत्रित होता है, भूमिगत जल कहा जाता है। भारत वार्षिक रूप से 40 करोड़ हेक्टेयर मीटर के समतुल्य वर्षा जल प्राप्त करता है, जिसमें से जल उपलब्धता क्षमता 18.69 करोड़ हेक्टेयर मीटर है। इसका केवल 6.9 करोड़ हेक्टेयर मीटर सतही बहाव के रूप में उपलब्ध रहता है तथा 4.5 करोड़ हेक्टेयर मीटर भूमिगत जल संसाधन के रूप में। इसमें से 2.31 करोड़ हेक्टेयर मीटर का वार्षिक उपयोग हो रहा है। इसमें से सिंचाई के लिए 2.13 करोड़ हेक्टेयर मीटर तथा घरेलू उपयोग, उद्योगों तथा अन्य कार्यों में 0.18 करोड़ हेक्टेयर मीटर का प्रयोग हो रहा है। भारत में भूजल का जहाँ सिंचित कृषि में पचास प्रतिशत से भी अधिक का योगदान है, वहीं यह दूसरी ओर पेयजल और औद्योगिकी आवश्यकताओं के बड़े हिस्से को भी पूरा करता है।

देश में वर्षा वितरण क्षेत्रीय एवं सामयिक दोनों रूपों में अत्यधिक भिन्नता लिए हुए है। देश के पश्चिम भाग में अत्यंत कम 100 मि.मी. से भी कम वार्षिक वर्षा होती है जबकि पूर्वी भाग में सर्वाधिक लगभग 11,000 मि.मी. वर्षा होती है। भारत में, वार्षिक वर्षा मध्यमान भी अत्यधिक मौसमी विभिन्नतायुक्त होता है। सारा वर्षा जल वास्तविक वर्षा के 150 घंटों से भी कम समय में ग्रहण किया जाता है, जबकि इसका आधा 20 से 30 घंटे से भी कम समय में बड़े प्रपातों के रूप में नीचे गिरता है।

वर्षा जल संचय तकनीक अत्यधिक स्थान विशिष्टतायुक्त होती है, जो कि जलवायु, प्राकृतिक भूगोल एवं सामाजिक-आर्थिक संबंधी कारकों पर निर्भर करती है। सवाल यह है कि जिस देश में भूजल व सतही विभिन्न साधनों के माध्यम से पानी की उपलब्धता 23 अरब घन मीटर हो और जहाँ नदियों का जाल बिछा हो और सालाना औसत वर्षा 1100 मि.मी. से भी अधिक हो, वहाँ पानी का अकाल क्यों ? 'जहाँ बूंद गिरे उसे, वहीं समेट लो' की तर्ज पर एक नारा दिया गया कि 'खेत का पानी खेत में और गाँव का पानी गाँव में'। इस नारे को साकार करने के लिए यह आवश्यक है कि वर्षा के पानी का समुचित उपयोग किया जाए।

वर्षा जल संरक्षण

- वर्षा जल भंडारण के लिए नए तालाब सहित उपयुक्त ढांचों का निर्माण
- तालाबों से गाद निष्कासन कर इसका गहरीकरण करना
- वर्षा जल का उपयोग कर भूजल की वृद्धि करना
- मेड़ीकरण द्वारा खेत में ही वर्षा जल का संचयन करना
- सतही जल एवं भूजल का संयोजित एवं संतुलित उपयोग
- सिंचाई की नवीन पद्धतियों यथा *ड्रिप* एवं बौछारी का उपयोग
- सिंचाई में प्रयुक्त परम्परागत विधियों में सुधार कर जल का दुरूपयोग रोकना
- पहाड़ी क्षेत्रों में ढालनुमा खेती कर वर्षा जल का संचयन
- जल उपलब्धता के आधार पर फसलों का चुनाव करना।

कृषि योग्य भूमि के लिए वर्षा जल संरक्षण

समतलीकरण एवं मेड़बन्दी

ऊबड़-खाबड़ भूमि पर वर्षा जल का वितरण कहीं आवश्यकता से अधिक, तो कहीं पर आवश्यकता से बहुत कम होता है। खेत के समतलीकरण के द्वारा वर्षा जल वितरण की इस असमानता को

दूर किया जा सकता है। खेत को समतल कर चारों ओर न्यूनतम 0.3-0.6 मीटर ऊँची मेड़ बनाकर वर्षा जल एवं पोषक तत्व को बाहर जाने से रोका जा सकता है।

समोच्च खेती

इस विधि में खेत में ढाल के आड़े लगभग 50 मीटर के अंतराल पर मेड़ बनाकर उनके समानान्तर जुताई, बुवाई एवं गुड़ाई की जाती है। ढाल के आड़े जुताई द्वारा बने असंख्य कूँड़ों में वर्षा का पानी भर जाता है एवं उसके बहने की गति कम हो जाती है, जिससे भूमि में अधिक मात्रा में जल का संरक्षण होता है।

कंटूर वानस्पतिक अवरोध

उपयुक्त घास का *कंटूर* वानस्पतिक अवरोध मिट्टी और जल संरक्षण और भूमि की उत्पादकता में सुधार करने के लिए, सस्ता और पर्यावरण के अनुकूल उपाय है। समोच्च अवरोध 0.75 से 1 मीटर ऊँचे व 1 से 1.5 मीटर चौड़े आधार के बनाये जा सकते हैं। इन अवरोधों को अधिक मजबूती प्रदान करने के लिये इन पर स्थानीय वनस्पति को लगाया जा सकता है।

जल फैलाव

इस तकनीक के तहत बाढ़ के पानी को बड़े क्षेत्र से स्वतः ही या नाले के उद्गम स्थल से छोटे क्षेत्र में मोड़ दिया जाता है। इससे मृदा में नमी की वृद्धि होती है जो फसल की बढ़वार में काफी सहायक होती है।

उचित फसल चक्र

फसलों का क्रम इस प्रकार रखना चाहिए कि खरीफ में दलहनी फसलें अकेले या मिश्रित रूप में ली जाएं।

पट्टीदार खेती

इस विधि में ढाल वाले क्षेत्रों में भूमि पर फैलने वाली भूसंरक्षीय दलहनी फसलों व सीधी ऊपर बढ़ने वाली भूक्षरण में सहायक खाद्यान्न फसलों को ढाल के आड़े पट्टियों में उगाते हैं।

मिलवाँ खेती

इस विधि में दो या दो से अधिक फसलों को पट्टियों में न उगाकर पंक्तियों में ढाल के आड़े उगाया जाता है। फसल में गुड़ाई करने से खेत की मिट्टी पोली हो जाती है जिससे वर्षा जल का भूमि में अधिक मात्रा में अवशोषण होता है तथा भूक्षरण कम होता है।

इसके अलावा, जहाँ भूमि ढाल 5% से अधिक होता है, वहाँ जल संरक्षण के लिए यांत्रिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। इन विधियों को अपनाने से भूमि संरक्षण का कार्य भी हो जाता है। कृषि योग्य भूमि संरक्षण के लिए यांत्रिक विधियों में मेड़बंदी, सीढ़ीनुमा खेत, हरित जलमार्ग आदि प्रमुख हैं।

भूजल संवर्धन

पुनर्भरण गड्ढों द्वारा

1 से 3 मीटर चौड़े व 2 से 3 मीटर गहरे पुनर्भरण गड्ढों द्वारा भूजल रीचार्ज किया जा सकता है। स्थिति के अनुसार इसकी चौड़ाई घटाई-बढ़ाई जा सकती है।

कुएं द्वारा

बेकार एवं सूखे पड़े हुए कुओं का उपयोग भूजल संवर्धन में बड़े ही आराम से किया जा सकता है।

नलकूपों द्वारा

इस विधि में छत पर प्राप्त वर्षा जल को पाइप के द्वारा नलकूप के पास लाया जाता है एवं जल का *रीचार्ज* किया जाता है।

देश में कम बारिश होना जितनी बड़ी समस्या है उससे कहीं बड़ी समस्या है ज्यादा बारिश होना। इसके बावजूद पानी के प्रबंधन के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए। पानी के प्रबंधन के लिए सबसे जरूरी यह है कि बारिश के पानी की हर बूंद को सहेजा जाए। इसे टैंक, तालाब और यहाँ तक कि हर घर की छत पर सहेजा जाए। यह काम हर गाँव और हर शहर में किया जाए। इसके लिए हमें सुनिश्चित करना होगा कि हर बूंद का सही उपयोग हो। इसके इस्तेमाल से ज्यादा और अलग-अलग फसलें ली जाएं और औद्योगिक उत्पादकता बढ़ाई जाए। यह भी सच है कि इस चुनौती का सामना हर आम और खास आदमी के सहयोग से ही संभव होगा।

क्षेत्र तालाब/फार्म *पॉण्ड*

अर्धचंद्राकार *बेसिन*

सीढ़ीनुमा खेत

चेकडैम

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

प्रदूषण का पौधों और जंतुओं पर प्रभाव

दीपक कोहली
विपुलखंड, गोमती नगर, लखनऊ

सम्पूर्ण विश्व आज 'प्रदूषण' की समस्या से ग्रस्त है या हम कह सकते हैं कि संसार का कोई भी हिस्सा पूर्णतया प्रदूषण रहित नहीं है। सरल शब्दों में पर्यावरण प्रदूषण को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है- "मानव गतिविधियों के फलस्वरूप पर्यावरण में अवांछित पदार्थों का एकत्रित होना, प्रदूषण कहलाता है। जो पदार्थ पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं उन्हें 'प्रदूषक' कहते हैं।" प्रदूषण का प्रभाव सभी जीव-जन्तुओं एवं पर्यावरण पर पड़ता है। अगर पर्यावरण जीवन है तो प्रदूषण मृत्यु है। प्रदूषण को चार भागों में बांटा जा सकता है-वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण। इन सभी प्रकार के प्रदूषणों का प्रभाव मानव, पौधों और जन्तुओं पर पड़ता है।

वायु में जब जहरीली गैसें तथा अवांछनीय तत्व इतनी अधिक मात्रा में मिल जाते हैं कि मनुष्य, जीव-जंतु और वनस्पतियां विपरीत रूप से प्रभावित होने लगती हैं तो यह स्थिति वायु-प्रदूषण कहलाती है। वायु प्रदूषण के प्रमुख कारकों में प्रथम है, ईंधनों का जलना। जिनके दहन से कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाईऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड व अनेक हाइड्रोकार्बन जैसे बैंजीपाइरिन आदि उत्पन्न होते हैं। परिवहन माध्यमों द्वारा उत्सर्जित धुआँ, कार्बन कणों, सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड, लैड कणों आदि के कारण भी वायु निरन्तर प्रदूषित हो रही है। इस प्रकार का प्रदूषण महानगरों में अधिक देखने को मिलता है। जहाँ अनगिनत छोटे-बड़े कारखाने अपनी चिमनियों द्वारा वायुमंडल में धुएँ के बादल बनाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त, परमाणु ऊर्जा प्रक्रम एवं तापीय बिजली घरों द्वारा भी उत्सर्जित पदार्थ वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण बनते हैं। आज अत्यन्त प्रचलित शब्द यथा, '*ग्रीन हाउस* प्रभाव', 'अम्लीय वर्षा' एवं 'ओजोन परत छिद्र' वायु प्रदूषण के प्रभाव से ही जनित हैं। वायु प्रदूषक विषैली गैसों से साँस की बीमारियाँ-*ब्रॉंकाइटिस,* फेफड़ों का कैंसर हो सकता है। श्वांस रोगों के अतिरिक्त, हृदय रोग, सिर दर्द एवं आँखों के सामने अंधेरा छाना आदि रोग भी हो जाते हैं। सल्फर डाईऑक्साइड से *एम्फॉयसीमा* नामक रोग होता है, यह एक प्राणलेवा बीमारी है। वाहनों के धुएँ में उपस्थित सीसा कण शरीर में पहुँचकर यकृत, आहार नली, बच्चों में मस्तिष्क विकार, हड्डियों का गलना जैसे रोगों का कारण बनते हैं। बहु केन्द्रित हाइड्रोकार्बन भी कैंसर का कारण बनते हैं। इस संदर्भ में *'स्मॉग'* का उल्लेख आवश्यक है, जिसके कारण सैकड़ों व्यक्तियों का स्वास्थ्य प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। वर्तमान में जैसे-जैसे वायु प्रदूषण में वृद्धि हो रही है उससे फैलने वाली बीमारियों एवं मृत्यु संख्या में भी वृद्धि होती जा रही है।

वायु प्रदूषण से पौधे भी अछूते नहीं हैं। पेड़-पौधों पर भी वायु प्रदूषण का प्रभाव पड़ता है। वायु प्रदूषण के कारण पौधों को प्रकाश कम मिलता है जिससे उनकी प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जो पौधे घने कोहरे के क्षेत्र में पनपते हैं, उनका विकास कम हो जाता है। उनकी पत्तियां विकृत एवं सफेद होकर गिरने लगती हैं। इसी प्रकार सौंदर्यवर्द्धक फूल एवं लताएँ वायु प्रदूषण से प्रभावित होती हैं। जहरीली गैसों के कारण फूल बदरंग होकर मुरझा जाते हैं एवं लताएँ सूख जाती हैं। वायु प्रदूषण के कारण पत्तियों में विद्यमान *स्टोमेटा* को धूम्रकण अवरूद्ध कर देते हैं, फलतः पौधे की जीवन संबंधी प्रक्रियाएँ रूक जाती हैं और पौधे क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। कुछ पौधे इस प्रकार के होते हैं जिन्हें 'प्रदूषक सूचक' पौधे कहा जाता है। लाइकेन एवं मॉस प्रजाति के पादप प्रदूषण से अत्यंत संवेदनशील होते हैं। लाइकेन सल्फर डाईआक्साइड की मात्रा बढ़ने से प्रभावित होते हैं और इनकी वृद्धि कम हो जाती है। ये वायु प्रदूषण के अच्छे सूचक होते हैं। अत्यधिक वायु प्रदूषित क्षेत्रों में लाइकेन विलुप्त हो जाते हैं। लाइकेन के समान कुछ ब्रायोफाइट्स पौधे जैसे मॉस भी वायु प्रदूषण के अच्छे सूचक पौधे माने जाते हैं। यह पौधे प्रदूषण के कणों को अधिक जल्दी और ज्यादा मात्रा में अवशोषित कर लेते हैं। परिणामतः वह एक अच्छे जीव सूचक का कार्य करते हैं।

आज जल प्रदूषण खतरनाक स्तर तक पहुँच चुका है और व्यापक रूप से जीव-जंतुओं को प्रभावित कर रहा है। घरेलू तथा औद्योगिक दोनों ही कारणों से लगातार जल प्रदूषित होता जा रहा है। घरों में साबुन, सोडा, *ब्लीचिंग पाउडर* एवं *डिटर्जेंट* का अत्यधिक प्रयोग या उद्योगों में धात्विक, अम्ल, क्षार या लवण के प्रयोग से जल प्रदूषित हो रहा है। कृषि में प्रयुक्त कीटनाशकों एवं रासायनिक उर्वरकों ने भी जल प्रदूषण की समस्या को बढ़ाने में अपना योगदान दिया है। जल प्रदूषण के कारण मानव तो बुरी तरह प्रभावित होते ही हैं, जलीय पौधे एवं जलीय जंतु तथा

पशु-पक्षी भी प्रभावित होते हैं।

विश्व भर में 80 प्रतिशत से भी अधिक रोगों का कारण प्रदूषित जल ही है। प्रदूषित जल से हैजा, पेचिश, टायफायड, पीलिया, पेट में कीड़े और यहाँ तक कि मलेरिया, जो कि गंदे ठहरे पानी में पाये जाने वाले मच्छरों के कारण होता है। आजकल जल प्रदूषण के कारण भारत की अधिकांश नदियां अत्यधिक प्रदूषित हो चुकी हैं। नदियों में कारखानों द्वारा छोड़े गये प्रदूषित जल से पानी विषाक्त हो जाता है तथा बड़े पैमाने पर जलीय जीव-जंतु जैसे-मछलियां, कछुए आदि जंतु मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। महासागरों एवं समुद्रों में तैलीय पदार्थों एवं हाइड्रोकार्बन के सागरीय सतह पर फैल जाने की वजह से जलीय जीवों को ऑक्सीजन नहीं मिल पाती और वे मर जाते हैं। हालात इतने चिंताजनक हो चुके हैं कि कई जलीय जीवों की प्रजातियाँ समाप्ति के कगार पर हैं। प्रदूषित जल, जलीय जीवों की प्रजनन शक्ति पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। भारी धातुओं जैसे-पारा, सीसा, ताँबा, जस्ता, कैडमियम, क्रोमियम आदि द्वारा प्रभावित मछलियों को खाने से मनुष्य के मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र को क्षति पहुँचती है। घरेलू वाहित मल आदि से फास्फेट्स एवं नाइट्रेट्स की मात्रा जल में अधिक हो जाती है। जिसके कारण जल में नील हरित शैवालों की संख्या बढ़ जाती है व जल में ऑक्सीजन की मात्रा में कमी हो जाती है। इस कारण जलीय जीव-जंतु मर जाते हैं।

जीव-जंतुओं के अतिरिक्त, जलीय पौधे भी जल प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। प्रदूषित जल में काई की अधिकता से सूर्य का प्रकाश गहराई तक नहीं पहुँच पाता, जिससे जलीय पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया और उनकी वृद्धि प्रभावित होती है। जल प्रदूषण के कारण जल में फास्फेट एवं नाइट्रेट युक्त कार्बनिक यौगिकों के मिलने से जल में पोषक तत्वों की अप्रत्याशित वृद्धि होती है। इसे *'यूट्रोफिकेशन'* कहा जाता है। *यूट्रोफिकेशन* के चलते जलकुंभी या *आइकार्निया* पौधों से जल की सतह पट जाती है। जिससे धीरे-धीरे *स्वैम्प, मार्श* गैसों आदि का निर्माण होता है और अन्ततः जलस्रोत में उपस्थित पानी सड़ने लगता है। इसके अलावा औद्योगिक बहिस्रावों में पाये जाने वाले विषैले पदार्थों की उपस्थिति के कारण जल में पाये जाने वाले लाभदायक जीवाणु मर जाते हैं जो कि जल के जैव-शुद्धिकरण के काम आते हैं। जल में उपस्थित सूक्ष्म *फाइटोप्लेन्कटॉन्स* भी जलीय प्रदूषण के कारण प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं। ये *फाइटोप्लेन्कटॉन्स* सूक्ष्म जंतुओं एवं मछलियों का भोजन होते हैं। इनके प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने से पूरा जलीय पारिस्थितिक तंत्र प्रभावित होता है।

भूमि का प्राकृतिक संसाधनों में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न प्रकार के रासायनिक प्रदूषणों तथा अन्य अपशिष्ट पदार्थों का विलय प्रायः भूमि में होता रहता है। जिसके कारण भूमि प्रदूषित हो जाती है। भूमि प्रदूषण के कारकों में जीवनाशक रसायन, कृत्रिम उर्वरक, नगरीय अपशिष्ट पदार्थ, जहरीले अकार्बनिक पदार्थ व कार्बनिक पदार्थ प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। भूमि प्रदूषण का प्रभाव भी पौधों एवं जंतुओं पर पड़ता है।

भूमि प्रदूषण फसलों और पौधों की पैदावार को कम कर देता है। यह मिट्टी और प्राकृतिक पोषक तत्वों के नुकसान का कारण बनता है, जिससे फसल उत्पादन में कमी आती है। भूमि प्रदूषण से मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुण प्रभावित हो रहे हैं। आम तौर पर ठोस अपशिष्ट पदार्थों को मिट्टी के नीचे दबा दिया जाता है। इससे मिट्टी की उत्पादन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और पेड़-पौधों की वृद्धि रूक जाती है। कभी-कभी लोग गटर के पानी से खेतों की सिंचाई करते हैं। इससे दिन-प्रतिदिन मिट्टी में मौजूद छिद्रों की संख्या कम हो जाती है। बाद में एक स्थिति ऐसी आती है कि भूमि के प्राकृतिक मल-जल उपचार प्रणाली पूरी तरह से नष्ट हो जाती है। जब भूमि ऐसी स्थिति में पहुँचती है तो उसे बीमार भूमि कहा जाता है। ऐसी भूमि पर होने वाली कृषि पर विपरीत असर पड़ता है।

भूमि की एक ग्राम मिट्टी में लगभग 100 मिलियन जीवाणु, अनेक प्रकार के कवक, शैवाल, कीट व केंचुएँ इत्यादि होते हैं। भूमि प्रदूषकों जैसे रसायनों, कीटनाशकों के प्रयोग से मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों का जीवन-चक्र प्रभावित होता है। जिसका असर भूमि की उर्वरा क्षमता पर पड़ता है तथा साथ ही भूमि का *परितंत्र* भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है।

भूमि में कूड़ा करकट एवं गंदगी की अधिकता हो जाने से उनमें कीड़े-मकौड़े के पनपने की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। परिणामस्वरूप मच्छर, मक्खी, चूहों, बिच्छुओं की संख्या बढ़ती है, जो पेचिश, हैजा, आंत्रशेध, टाइफाइड, यकृत रोग, पीलिया आदि के कारण बनते हैं।

रूस, चीन और भारत दुनिया के ऐसे देशों में से हैं जहाँ जहरीली जमीन का प्रदूषण तेजी से फैल रहा है। यूक्रेन में चेरनोबिल को दुनिया की सबसे बड़ी परमाणु दुर्घटना के लिए याद किया जाता है। परमाणु ऊर्जा दुर्घटनाओं के बाद प्रदूषक भूमि में प्रवेश करते हैं जिससे लाखों एकड़ कृषि भूमि क्षतिग्रस्त होती है। दक्षिण अफ्रीकी देश जाम्बिया में कबाई की जमीन, 1987 में भारी धातुओं के प्रदूषण से बुरी तरह प्रभावित हुई थी। पेरू में ला ओराया स्थान पर सीसा, ताँबा और जस्ता के अत्यधिक खनन से मिट्टी विपरीत रूप से प्रभावित हुई थी। मिट्टी में

आर्सेनिक जैसे विषाक्त रसायनों के अत्यधिक होने, कोयला खनन और अन्य प्रदूषकों के कारण चीन की लिनफेन सिटी की भूमि अत्यधिक प्रदूषित हो गई। भारत में गुजरात के वापी शहर में पेट्रोकेमिकल्स, कीटनाशकों जैसे रसायनों के अत्यधिक उत्पादन के कारण वहाँ की जमीन विषाक्त हो गई है। भूमि प्रदूषण के कारणों में काँच, प्लास्टिक, *पॉलीथीन बैग्स,* टिन आदि भी आते हैं। एक ही स्थान पर एकत्रित होने के कारण सूक्ष्म जीवों द्वारा इनका पूर्ण विघटन संभव नहीं हो पाता है जिसके फलस्वरूप भूमि प्रदूषित होती है। पॉलीथिन बैग्स पर यद्यपि सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया है, फिर भी इनका इस्तेमाल हो रहा है। इन्हीं *पॉलीथिन बैग्स* के कारण कई जीवों जैसे गाय, भैंस, बकरी आदि की जान भी चली जाती है।

वायु, जल एवं भूमि प्रदूषण की तरह ध्वनि प्रदूषण भी मानव, जीव-जंतुओं एवं पादपों के लिए हानिकारक होता है। पर्यावरणीय स्वास्थ्य मानक के अनुसार ध्वनि प्रदूषण या शोर एक ऐसी अवांछनीय ध्वनि है, जो कि व्यक्ति, समाज के लोगों एवं जीव-जंतुओं के स्वास्थ्य और रहन-सहन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। ध्वनि की तीव्रता मापने के लिए *डेसीबिल* इकाई निर्धारित की गयी है। सामान्य वार्तालाप में ध्वनि का स्तर 55 से 60 *डेसीबिल* होता है। राकेट इंजन में ध्वनि का स्तर 180 से 195 *डेसीबिल* तक पहुँच जाता है।

विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि जब ध्वनि की तीव्रता 90 *डेसीबिल* से अधिक हो जाती है तो लोगों की श्रवण क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। उच्च शोर के कारण लोगों में उच्च रक्तचाप, उत्तेजना, हृदय रोग, आँख की पुतलियों में खिंचाव, मांसपेशियों में खिंचाव, पांचन तंत्र में अव्यवस्था आदि समस्याऐं हो जाती हैं। विस्फोटों तथा सोनिक *बूम* से अचानक आने वाली ध्वनि के कारण गर्भवती महिलाओं में गर्भपात भी हो सकता है। दीर्घ अवधि तक ध्वनि प्रदूषण के कारण लोगों में *न्यूरोटिक मेंटल डिसआर्डर* हो जाता है। स्नायुओं में उत्तेजना हो जाती है।

अन्य जीव-जंतुओं पर ध्वनि का असर मानव जाति से अधिक होता है। चूँकि इंसानों के पास अन्य विकसित इंद्रियाँ हैं, उसे केवल सुनने पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, परंतु जानवर अपने जीवन-यापन के लिए काफी हद तक अपनी सुनने की शक्ति पर ही निर्भर करते हैं। जानवरों पर ध्वनि का असर तो हम अपने घरों में पालतू जानवरों पर ही देख सकते हैं। ये जानवर तेज आवाज से काफी डर जाते हैं या भड़क जाते हैं। यह उनकी सेहत पर सीधा प्रभाव डालता है। जंगलों में रहने वाले जंतु भी ध्वनि प्रदूषण से अछूते नहीं हैं। इन जानवरों की सुनने की शक्ति में कमी के कारण ये आसानी से अपने शत्रुओं के शिकार बन जाते हैं। जो स्वाभाविक रूप से पूरे पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त जो वन्य जीव प्रजनन के आमंत्रण के लिए ध्वनि पर निर्भर करते हैं, उन्हें भी खासी दिक्कत आती है। क्योंकि मानव निर्मित ध्वनियों यानि शोर की वजह से उनकी ध्वनि दूसरा जीव सुन नहीं पाता। इस तरह ध्वनि प्रदूषण वन्य जीवों की जनसंख्या में गिरावट का कारण भी बनता है।

ध्वनि प्रदूषण वाले क्षेत्र जैसे सड़कों के किनारे, औद्योगिक क्षेत्रों और राजमार्गों के आस-पास क्षेत्रों में 4-6 पंक्तियों में वृक्षारोपण कर ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है। घने पेड़ ध्वनि को *फिल्टर* करते हैं और इसे लोगों तक पहुँचने से रोकते हैं। अशोक एवं नीम के पेड़ ध्वनि प्रदूषण को कम करने में सहायक होते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, अवैध खनन, विभिन्न स्वचालित वाहनों, कल-कारखानों, परमाणु परीक्षणों आदि के कारण आज पूरा पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। इसका इतना बुरा प्रभाव पड़ा है कि संपूर्ण विश्व बीमार है। पर्यावरण की सुरक्षा आज की बड़ी समस्या है। इसे सुलझाना हम सबकी जिम्मेदारी है। इसे हमें प्राथमिकता प्रदान करनी चाहिए तथा प्रदूषण पर्यावरण की सुरक्षा में योगदान देना चाहिए। स्वच्छ एवं प्रदूषण रहित पर्यावरण आज की आवश्यकता है। यदि पर्यावरण निरोग होगा तो हम मानव, जंतु और पौधे भी निरोग रहेंगे।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानी देव वयुनानि विद्वान्।

यूयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नाम उक्तिं विधेम।।

यजुर्वेद 5/36

अर्थात- हे अग्निदेव। आप हमें सुपथ पर ले चलें। आप सभी सन्मार्गों को जानने वाले हैं। आप हमें कुटिलता देने वाले पाप से मुक्त करें। आपके प्रति अधिक-से-अधिक समर्पित होकर इस पथ का पालन करें।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

चुकंदर के जैविक ऊर्जा एवं औद्योगिक उपयोगिता में *बायोइन्फॉर्मेटिक्स* से कितना फायदा?

राघवेन्द्र कुमार[1], संगीता श्रीवास्तव[1], मीर आसिफ इकबाल[2], सारिका जयसवाल[2] एवं दिनेश कुमार[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[2]कृषि जैव सूचना केन्द्र, भाकृअनुप–भारतीय कृषि साँख्यिकीय अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

चुकंदर प्रायः समशीतोष्ण जलवायु में उगाए जाने वाली द्विबीजपत्रीय फसल है, जो 6 माह की अवधि में तैयार हो जाती है। वनस्पति शास्त्र के अनुसार *बीटा वल्गेरिस* नामक इस फसल को *एमरेन्थेसीई* कुल तथा *बीटोआइडी* उपकुल में वर्गीकृत किया जाता है। इस पौधों का निकटतम पारिवारिक संबंध एक लोकप्रिय खर-पतवार, बथुआ से जुड़ा है। चुकंदर शर्करा उत्पादन के लिए गन्ना के बाद सबसे महत्वपूर्ण नकदी फसल है। इसके कन्द मूल को पतले टुकड़ों *(स्लाइस)* में विभक्त करके लुगदी *(पल्प)* से शर्करा का उत्पादन होता है। एक रिपोर्ट के अनुसार चुकंदर में लगभग 15 से 20 प्रतिशत तक सुक्रोज सामग्री पाई जाती है। अतः यह विश्व के वार्षिक शर्करा उत्पादन के लगभग 30 प्रतिशत हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है। इसके आर्थिक महत्व को ध्यान में रखते हुए देश के विभिन्न प्रांतों के किसानों को इसकी खेती के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

कृषि महत्व के अलावा औद्योगिक क्षेत्र में चुकंदर से डाई *हाइड्रोक्सीटोन* जो एक विशेष प्रकार का *सनलेस टैनर* (चर्म शोधक) है, उत्पादित किया जाता है। कई प्रकार की जीवन रक्षक औषधियाँ जो मानव स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है, जिनमें कैंसर नाशक, *एन्टीऑक्सीडेंट,* अवसादरोधी, कामोद्दीपक गुण विद्यमान होते हैं। *हर्बल थेरेपी* में इससे प्राप्त किए गए यौगिक विशेषकर *बीटेन, फिनोलिक्स* और *बीटासाइन्सिन* दवा उद्योग के लिए महत्वपूर्ण है।

लगातार बढ़ती जनसंख्या के सन् 2050 तक लगभग 10 बिलियन का आँकड़ा पार कर लेने की स्थिति में जीवाश्म ईंधन के अलावा वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के लिए एक स्थायी परिप्रेक्ष्य में सतत् अक्षय ऊर्जा स्रोत के लिए एक स्थायी जैविक समाधान की खोज एक महत्वपूर्ण अनुत्तरित प्रश्न बनता जा रहा है। जैविक ईंधन के संदर्भ में चुकंदर का बायो इथेनॉल तथा *बायोगैस* के उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है। यदि इसके जैवभार के *एनसाइलेज* तथा अवायवीय *(ऐनेरॉबिक)* पाचन दृष्टिकोण का उपयोग किया जाए तो मीठे चुकंदर में *बायोइथेनॉल* उत्पादन की तुलना में प्रति हेक्टेयर अधिक जैविक ऊर्जा प्राप्ति की अपार संभावनाएँ निहित होती हैं।

चुकंदर से चीनी तथा *बायोएनर्जी* उत्पादन के संदर्भ में फसल औद्योगिक उपयोग के अलावा इसमें अतिरिक्त बहु-संख्यक गुणक लाभ पाए जाते हैं। इस फसल में विभिन्न जलवायु और बंजर कृषि भूमि में भी उपज के प्रति सहिष्णुता पाई जाती है। संक्षेप में कहा जाए तो इसकी खेती से तीन तरह के फायदे किसानों को मिलते हैं: (1) नकदी फसल होने से त्वरित कमाई में बढ़ोत्तरी, (2) मृदा परिशोधन/मिट्टी की उर्वरता में सुधार, तथा (3) सूखे एवं गर्मी के दिनों के दौरान पशु चारा तथा उनके खनिज पूरक के लिए लाभकारी खासकर जब हरे चारे का अभाव हो।

प्लास्टिक के विकल्प के तौर पर इन दिनों चुकंदर के अवशेष से बने जैविक *पॉलीएथिलीन* अत्यंत लोकप्रिय हो रहे हैं। इटली के कई व्यवसायी इसके *मोलासेस* को जैव सूचना तकनीक से विकसित जीवाणुओं की मदद से किण्वनीकरण करके इसमें विद्यमान शर्करा को *लैक्टिक* अम्ल में बदलने के उपरान्त कई जटिल प्रसंस्करण विधि द्वारा जैविक *पॉलीमर* प्राप्त करने की औद्योगिक महारत विकसित की है। सामान्यतः चुकंदर के जैविक

पॉलीएथिलीन को *पीएचपी (पॉलीहाईड्रॉक्सीएल्कोनेट) प्लास्टिक* कहा जाता है। यह पर्यावरण में आसानी से स्वतः अपघटित होकर मिट्टी की उर्वरा शक्ति के विकास में सहायक होता है। *'सिंगल-यूज्ड प्लास्टिक'* के दुरूपयोग से छुटकारा दिलाने में यह एक स्वागत योग्य पहल हो सकती है। अन्य शर्करा फसल जैसे गन्ना, मीठी ज्वार, इत्यादि से भी जैविक *पॉलीएथिलीन* का उत्पादन होता है, किन्तु आर्थिक दृष्टिकोण से चुकंदर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

चुकंदर से प्राप्त *बेटेन* का उपयोग *पीसीआर* सहायक उद्योग में व्यापकतापूर्वक किया जाता है क्योंकि इससे जीसी सम्पन्न डीएनए अनुक्रमों के प्रवर्धन में सुधार होता है। गन्ना फसल (10 से 18 माह अवधि) की तुलना में मीठे चुकंदर की फसल मात्र 6 महीने में पककर तैयार हो जाती है। इसलिए *वाटर फुट प्रिंटिंग* के मामले में चुकंदर सबसे कुशल फसल है जबकि इथेनॉल के *कार्बन फुट प्रिंटिंग* को कम स्तर तक बनाए रखने में महत्वपूर्ण है।

उच्च शर्करा सामग्री के लिए आनुवंशिक लाभ की दर में बढ़ोत्तरी लाने, चुकंदर के जैविक कारक (60 प्रकार के रोग पैदा करने वाले जीवाणु, कवक, सूत्रकृमि, विषाणु, *फाइटोप्लाज्मा, स्पारोप्लाज्मा* इत्यादि) तथा अजैविक कारक (जैसे उच्च तापमान और खारा/क्षारीय स्थिति) के प्रति प्रतिरोधक आण्विक मार्करों की नितांत आवश्यकता होती है। एक शोध रिपोर्ट के अनुसार लगभग 50 प्रकार के पैदावार जैविक तनाव की वजह से आर्थिक रूप से क्षतिग्रस्त होते हैं। आण्विक मार्कर की सहायता से चुकंदर की फसल को उच्च कंद मूल की उपज बढ़ाने में भरपूर फायदा मिलता है। इस संदर्भ में गलन रोग तथा अन्य नाशीकीट के प्रति सहनशील प्रजाति के चुनाव में आनुवंशिक विविधता एवं *'क्वालीटेटिव ट्रेट लोसाई'* की खोज में डीएनए मार्कर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उपयोगी डीएनए मार्करों में *शॉट टेन्डम रिपिट्स* (STRs) की चर्चा उल्लेखनीय है, क्योंकि इनका उपयोग फसल सुधार हेतु *'मार्कर असिस्टेड सैलेक्शन'* में सर्वाधिक किया जाता है। नोबेल पुरस्कार विजेता वाल्टर गिल्बर्ट ने सच ही कहा था कि 21वीं सदी में जीव विज्ञान की अधिकतर खोज कम्प्यूटर से/में *(इन-सिलिको)* होंगे। आर्थिक दृष्टिकोण से आज के दौर में वही राष्ट्र सबसे सम्पन्न और समृद्ध माना जाता है जिनके पास आँकड़ों का असीमित सुरक्षित भण्डार होता है।

संदर्भ के आइने से

चुकंदर के व्यवसायिक महत्व के फलस्वरूप इसकी खेती का निरंतर विस्तार होता चला जा रहा है। विश्व के सबसे बड़े चुकंदर उत्पादक क्षेत्रों में यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की हिस्सेदारी लगभग 75 प्रतिशत है, जबकि फ्रांस, जर्मनी, रूस, तुर्की तथा यूक्रेन में भी इसकी खेती व्यापकतापूर्वक की जाती है। भारत में सन् 1971 में मीठे चुकंदर की पंजाब, राजस्थान तथा कर्नाटक प्रान्तों के प्रक्षेत्र में उगाए जाने की शुरूआत हुई थी, जिसे विशेषकर चीनी तथा शराब उत्पादन के उद्देश्य से शुरू किया गया था किन्तु इसकी वृहद कृषि क्षमता का भरपूर लाभ नहीं मिल पाया है। इसके पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण है गर्म जलवायु में उगाए जाने योग्य बीज प्रजाति का अभाव।

सम्मुन्नत चयन हेतु मुक्तेश्वर, लखनऊ, पूना तथा अन्य कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अधीन अखिल भारतीय समन्वित चुकंदर अनुसंधान परियोजना के परीक्षण किए गए। इस पुनीत शोध कार्य में भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ की अहम भूमिका निहित थी। देश में पहली बार गन्ना-सह- चुकंदर आधरित चीनी मिल की स्थापना राजस्थान के श्रीगंगानगर में हुई थी। बाद में उपोष्ण तथा उष्ण दोनों ही प्रकार की जलवायु में उगाए जाने वाले बीज प्रजाति का विकास संभव हो पाया। पूना स्थित *वसंतदादा शुगर इन्स्टीट्यूट (वीएसआई)* के माध्यम से मीठे चुकंदर के अनेक संकर *(हाइब्रिड)* बीज विकसित किए गए। इसकी प्रमुख प्रजातियाँ हैं: *आईआईएसआर कम्पोजिट-1, एलएस-6, एचआई-0064 (समुद्रा), डोरोटी (काबेरी), पोडसा (इन्डस)*। बाद में कई निजी क्षेत्र की बीज कम्पनियों के द्वारा अधिक पैदावार देने वाले *हाइब्रिड* बीज का विकास किया है जिनमें प्रमुख लोकप्रिय प्रजाति हैं: एसवाईटी-06-13 (सिजेन्टा), *फेलिसिटा* (जेके सीड्स) तथा अन्य। ऐसी प्रजातियाँ प्रायः प्रोह तथा कन्द को क्षति पहुँचाने वाले गलन रोग तथा नाशीकीट के प्रकोप से सुरक्षित रखती हैं।

कृषि जैविक सूचना विज्ञान के महत्व

जैव सूचना विज्ञान *(बायोइन्फार्मेटिक्स)* के अंतर्गत जैविक सूचना का अर्जन, भंडारण, संसाधन, विश्लेषण, वितरण, व्याख्या इत्यादि से संबन्धित शोध कार्य जीव विज्ञान, सूचना तकनीक तथा गणित के माध्यम से सम्पन्न होता हैं। इस कार्य के लिए कम्प्यूटर

जैव सूचना तकनीक के आयाम

और अन्य *हार्डवेयर, इंटरनेट कनैक्शन, वर्ल्ड-वाइड-वेब, डाटाबेस,* उपयुक्त सॉफ्टवेयर के साधन नितांत आवश्यक होते हैं। सामान्यतः *डाटाबेस माइनिंग* (खोज) के लिए *न्यूक्लिक अम्ल (डीऑक्सीरीबो न्यूक्लिक एसिड/डीएनए, राइबो न्यूक्लिक एसिड/आरएनए, प्रोटीन/एमीनो एसिड* तथा जैविक अणुओं के अनुक्रम *(सिक्वेंस)* वांछित *टूल्स* (उपकरण) की सहायता से की जाती हैं। इसके उपरांत *जीनोम* की संरचना *(डिज़ाइनिंग)* प्राप्त होती हैं और इनके उपयोग से विभिन्न क्षेत्र में शोध कार्य संचालित होते हैं।

जैविक ऊर्जा तथा औद्योगिक अनुपयोग में सम्मुन्नत बीज उत्पादन में सुधार के लिए आनुवंशिक विविधताओं के विकास तथा विभिन्न प्रकार के जैविक तथा अजैविक कारकों के प्रति सहनशील जीन (आनुवंशिक अणु) से युक्त जीवप्रारूप की खोज की जाती है। जीवप्रारूप पौधों में आनुवंशिक गुणों की तलाश में जैविक अणु, *डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल (डीएनए)* में गहन आण्विक अध्ययन किया जाता है। डीएनए में विभिन्न प्रकार के जीन अनुक्रम की पहचान के लिए आण्विक मार्कर का उपयोग किया जाता है। *जीनोमिक्स* अध्ययन में *'वेटलैब'* से जुड़े प्रयोग में सर्वप्रथम चुकंदर के *जीनोटाइप 'केडब्लूएस 2320'* में अनुक्रमित *जीनोम डाटा* का उपयोग किया गया था।

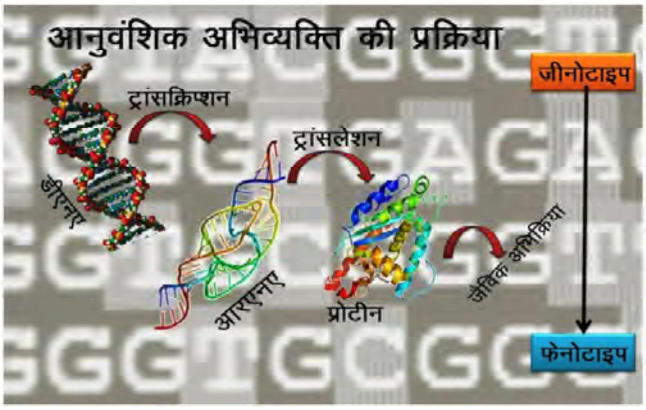

आण्विक जीवविज्ञान की केन्द्रीय मताग्रह (डोग्मा) की महत्व

वर्तमान समय में *जीनोमिक्स* के *'वेट लैब'* से जुड़े प्रयोग में सर्वप्रथम पौधों के *डीएनए* अम्ल निष्कासित किए जाते हैं। आम बोलचाल की भाषा में कहा जाए तो डीएनए में *पॉली न्यूक्लियोटाइड* शृंखला एक अक्ष पर *स्प्रिंग* की भाँति द्विकुण्डलिनी *(डबल हेलिक्स)* संरचना बनाती है और मूलतः 4 प्रकार के आधार नत्रजनीय समाक्षार एडिनीन थायमीन के साथ तथा *ग्वानिन साइट्रोसीन* के साथ एक-दूसरे से गुंथे रहते हैं। प्रत्येक शृंखला में फॉस्फोरस बंध खास न्यूक्लियोटाइड के अनुक्रम शर्करा के अणु से जुड़े होते हैं। इनको एक साथ हाइड्रोजन बंध एक-दूसरे से विशेष परिस्थितियों में जोड़े रखता है। जैव रासायनिक अभिक्रिया के संयोग द्वारा द्विकुण्डलिनी टूटकर एकल कुण्डलिनी *(सिंगल हेलिक्स)* संरचना आरएनए में परिवर्तित होकर *थाइमिन* के स्थान पर *यूरेसिल* से जुड़कर आवश्यक जैव सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान अर्थात् केन्द्रक से कोशिका द्रव्य तक संचारित करता है। इस जैविक घटना को *ट्रांसक्रिप्शन* कहा जाता है।

वस्तुतः ऐसे *ट्रांसक्रिप्टोम्स* अणु विशिष्ट प्रकार के जैविक सूचनाओं को अरबों तथा खरबों की संख्या से अधिक आँकड़ों में संचारित करते हैं। आगे चलकर ऐसे तमाम जैव अणु विशिष्ट प्रकार की प्रोटीन के *ट्रांसलेशन* प्रक्रिया में हिस्सा लेती हैं। प्रोटीन के जैव अणु मूलरूप से किसी भी जैविक गुणों को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं और अनुकूल एमीनो अम्ल का निर्माण होने लगता है। इस क्रम में प्रोटीन से प्रोटीन तथा प्रोटीन से डीएनए के समागमन होने लगता है। समागमन से प्रोटीन की *मॉड्यूलिंग* को कम्प्यूटर के विभिन्न *टूल्स* (उपकरण) की सहायता से चित्रित किया जाता है। इन दिनों वैज्ञानिकों ने लगभग 20 प्रकार के अति विशिष्ट गुणधर्म वाले अमीनो अम्ल की पहचान करने में सफलता हासिल की है। कुल मिलाकर कहा जाए तो *जेनेटिक* गुण एक खास जैविक संयोग, जिसमें प्रोटीन की सहभागिता अत्यंत प्रमुख है, के फलस्वरूप *फिनोटिपिक* गुणों को संप्रेषित करता है।

जैविक सूचना के गणितीय प्रस्तुतीकरण के आधार पर *सिक्वेंस डाटाबेस* का विशेष उपयोग जैव अभियांत्रिक के माध्यम से होता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत *डाटा एक्सप्लोरिंग, प्रोसेसिंग, मॉड्यूलिंग* तथा *एनालिसिस* के लिए खास प्रकार के कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर उपयोग में लाए जाते हैं। इस तरह के कार्य को *'ड्राई लैब'* में *डाटा माइनिंग* (आँकड़ा खनन) के नाम से जाना जाता है।

डाटा माइनिंग के लिए मार्कर से गुणसूत्र में विद्यमान विभिन्न प्रकार के गुणों तथा लक्षणों की पहचान आसानी से की जाती है। आण्विक मार्कर के द्वारा जैविक अणु, डीएनए के खास समूह *(फ्रेग्मेंट्स)* होते हैं जो किसी खास *जीनोम* की विशिष्ट जगह पर अज्ञात डीएनए के अनुक्रम को उजागर करने में सहायता प्रदान करते हैं। इनका समस्याग्रस्त जीन को उजागर करने में बहुमूल्य योगदान है।

चुकंदर के एसबीएमडीबी (SBMDb) के *मार्कर*

'ड्राई लैब' शोध कार्य हेतु जैविक सूचना विज्ञान के विभिन्न *टूल्स* (उपकरण) कम्प्यूटरी विश्लेषण द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। वस्तुतः यह *जीनोटाइप* 567 एमबी अगुणित *(हेप्लोएड) जीनोम* के 85 प्रतिशत अनुक्रम *डाटाबेस* विकसित किया गया था। चुकंदर के 9 गुणसूत्रों (2n=18) के 63 प्रतिशत जीन सघनता समूह

(एसेम्बली) के अध्ययन के द्वारा प्रतिपादित किया गया। इनसे प्राप्त डेटा संग्रहण से आगे की खोज *(डेटा माइनिंग)* में भरपूर मदद मिलती है। *डीनोवो एसेम्बली* के कम्प्यूटरीकृत विश्लेषण से लगभग 27,000 संख्या में प्रयोजन युक्त सार्थक जीन की सटीक पहचान की भविष्यवाणी की जाती है। इसके मिलान के लिए *'फास्टा' (FASTA)* टूल के मदद जो *नैशनल सेंटर फॉर बायोटेक्नोलॉजिकल इन्फॉर्मेशन (एनसीबीआइ)* के *वेबसाइट* से *डाउनलोड* करके संपादित किया जाता है। चुकंदर में कार्यात्मक *'सिम्पल सिक्वेंस रिपीट्स माइक्रोसेटेलाइट' मार्कर* को जैव सूचना विज्ञान *(बायोइन्फॉर्मेटिक्स)* के शब्दावली में *'सिम्पल सिक्वेंस रिपिट्स-फंक्शनल डोमेन मार्कर'* (एसएसआर-एफडीएमएस) कहा जाता है। इस आणविक मार्कर का सीधा संबंध जैविक ऊर्जा *(बायोएनर्जी)* तथा *बायोमास* से होता है तथा वांछित जीन अनुक्रम ज्ञात *(माइनिंग)* करने में विशेष महत्व है। *सिम्पल सिक्वेंस रिपिट्स-फंक्शनल डोमेन मार्कर* तथा सहयोगी *एक्सप्रेस्ड सिक्वेंस टैग* (ESTs) के अनुक्रम ज्ञात करने के लिए कम्प्यूटर नेटवर्क के माध्यम से *एनसीबीआइ* की *वेबसाइट* से *डाउनलोड* किया जाता है।

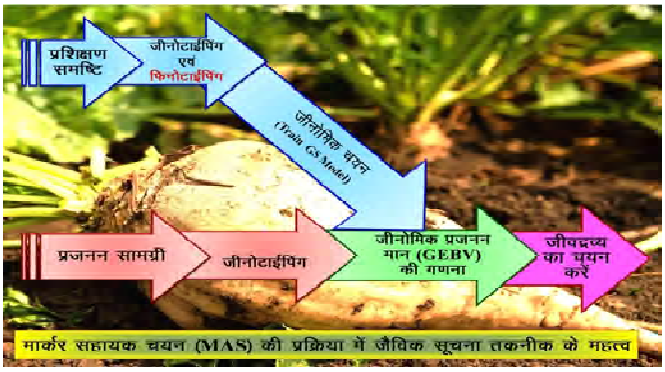

मार्कर सहायक चयन (MAS) की प्रक्रिया में जैविक सूचना तकनीक के महत्व

साथ ही चुकंदर के *'प्यूटेटिव यूनिट ट्रांसक्रिप्ट्स' (PUT)* के लिए *'प्लांटजीडीबी'* टूल के 187 विमोचित संस्करण के वेबसाइट नेटवर्क से *डाउनलोड* किया जाता है। सभी *एक्सप्रेड सिक्वेन्स टैग* तथा *प्यूटेटिव यूनिक ट्रांसक्रिप्ट्स* को सर्वप्रथम *होमोपॉलीमर्स* त्रुटियों के उपस्थिति के फलस्वरूप निदान हेतु *स्कैन* किया जाना नितांत आवश्यक है। *डाटाबेस* में उपलब्ध *एक्सप्रेड सिक्वेंस टैग-ट्रिमर* की सहायता से अनुक्रमों में व्याप्त अस्पष्टता को हटाने के उद्देश्य से *वेबसाइट नेटवर्क* निचली *सेटिंग* पर अनुक्रम श्रृंखला (-amb=2, 50–tr5=T, 5, 50–tr3+A, 5, 50) सुनिश्चित की जाती है। इसके लिए *एमआइएसए (MISA)* की मदद ली जाती है। कार्यात्मक डोमेन की पहचान के लिए *प्यूटेटिव यूनिक ट्रांसक्रिप्ट्स (PUTs)* की सभी कोडिंग फ्रेमों में अनुवाद किया जाता है, जो *इंटरप्रो* के प्रति विरोधात्मक भाव प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार कार्यात्मक डोमेन वाले *'प्यूटेटिव यूनिक ट्रांसक्रिप्ट्स'* के साथ समर्पित सिम्पल सिक्वेंस रिपीट्स तथा *'इन्टरप्रो'* के गहन विश्लेषण से *'सिम्पल सिक्वेंस रिपीट्स-फंक्शनल डोमेन' मार्कर* (31-33, 37) को वर्गीकृत किया जाता है।

'एसएसआर-एफडीएम' मार्कर के *जीनोटाइपिंग* की सहायता से विशेष प्रकार के प्राइमरों को *जीनोमिक डीएनए सिक्वेंस* पर कम्प्यूटर के माध्यम से *डिजाइन* तैयार किया जाता है ताकि *सिक्वेंस* के आण्विक विश्लेषण में आसानी से व्याख्या की जा सके। सम्पूर्ण जीनोम आधारित मार्करों को *मोटिफ* आकार, *मोटिफ* प्रकार, उनके लम्बाई तथा आकार के साथ समायोजित करके दोहराने की संख्या, दोहराए जाने के प्रकार, व्याप्त जीसी सामग्री और समाप्ति की स्थिति पर वर्णनात्मक जैव सूचनाओं के साथ ऑन लाईन प्रस्तुतीकरण दर्शाया जाता है।

'क्वालिटेटिव ट्रेट लोसी' (QTL) अथवा जीन के मान चित्रण से वांछित अंतराल पर प्रत्येक गुणसूत्र पर मार्कर लगाने के लिए विशेष प्रावधान विकसित किए जाते हैं। साथ ही *मार्कर* को *मोटिफ* प्रकार, *रिपीट्स* के प्रकार, जीसी सामग्री, *बेस पेयर* की संख्या और *रिपीट यूनिट* की संख्या के आधार पर चयन की प्रक्रिया सम्पन्न होती है, क्योंकि आठ से अधिक *रिपिट्स* वाले *मार्कर* अक्सर डीएनए प्रतिकृति में *स्लिपेज* घटना के फलस्वरूप बहुरूपता *(पॉलीमार्फिज्म)* प्रदर्शित करते है।

प्राइमर पीढ़ी का एक अतिरिक्त *'प्लग-इन'* ऐसे विशेष मार्करों के लिए लागू किया गया था। *प्राइमर 3 कोर* को अमल में लाते हुए *500 बीपी अपस्ट्रीम* तथा *डाउनस्ट्रीम सीक्वेंस* को *'पर्ल' (PERL) टूल* की मदद से लगभग 1000 बीपी के विशिष्ट *प्राइमर डिजाइनिंग* के लिए *टेम्पलेट* का लक्ष्य सुनिश्चित किया जाता है।

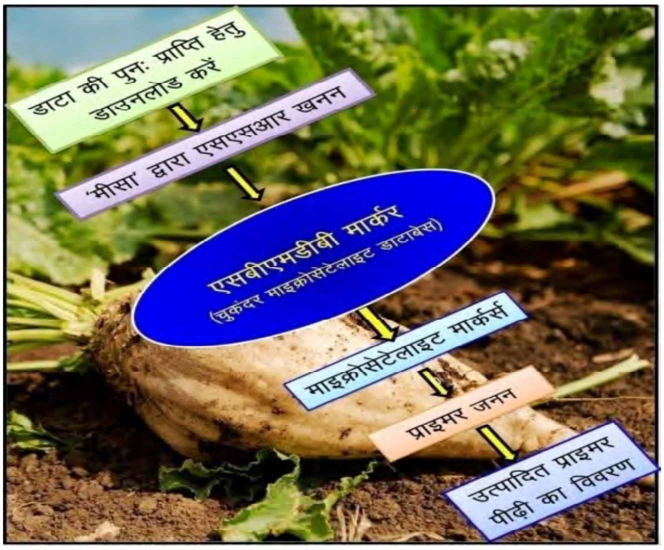

चुकंदर के *डाटाबेस* अन्वेषण का प्रवाह

चित्र में *फंक्शनल डोमेन मार्कर* की विशिष्ट श्रृंखला में चुकंदर के *'एसबीएमडीबी'* (SBMDb) मार्कर के लिए विकसित विश्लेषणात्मक पाइपलाइन के प्रभाव को जैव सूचना विज्ञान के अंतर्गत तर्क संगत तरीके से प्रदर्शित करता है। पहचान किए गए मार्करों के लिए वेब आधरित एप्लीकेशन विंडो, डब्लूएएमपी सर्वर के साथ *'अपाचे' (Apache), 'पीएचपी' (PHP) और 'माईसॉल' (MySOL)* डेटाबेस महत्वपूर्ण है। चुकंदर के आनुवंशिक लिंकेज मान चित्रण को समकालीन आण्विक मार्कर की सहायता से लगभग 9 समूहों में बाँटा गया है और इससे अभी तक लगभग 700 मार्करों की सटीक जानकारी उपलब्ध है।

शोधकर्ता	चुकंदर के मार्कर की संख्या / डाटाबेस
डोहम एवं अन्य साथी (2012)	983
डोहम एवं अन्य (2012)	307
होल्टेग्रेव एवं अन्य (2014)	8361, EST–डेराइव्ड प्रोब्स
फ्युगेट एवं अन्य (2014)	7680, प्यूटेटिव SSR

ज्ञातव्य है कि *'शॉर्ट टैंडम रिपीट्स'* (STR) *मार्कर* के विकास के पूर्व के शोध उतने सक्षम नहीं थे और इस कार्य में अधिक समय व्यर्थ होता था। आधुनिक सम्पूर्ण *जीनोमिक* अथवा *ट्रांसक्रिप्टॉमिक डेटा* का उपयोग करके *शॉर्ट टैंडम रिपीट्स मार्कर* के विकास करके फसल सुधार के क्षेत्र में अपार संभावनाओं के द्वार खुल गए हैं। पूरे *जीनोम* की मदद से बड़ी मात्रा में *मार्कर* की खोज में क्रांतिकारी बदलाव आए है।

इन दिनों *'सिम्पल सिक्वेंस रिपीट्स-फंक्शनल डोमेन'* जैसे *माइक्रोसेटेलाइट मार्कर* का व्यापक उपयोग मीठे चुकन्दर में जैविक ऊर्जा संरक्षण तथा बायोमास के विकास में किया जाता है। चुकन्दर के प्रचलित जीवद्रव्य 'केडब्लूएस 2320 (KWS2320)' में आण्विक प्रजनन कार्यक्रम के अंतर्गत बड़ी मात्रा में मार्करों की खोज 'इन सिलिको' (कम्प्यूटर द्वारा) किया जाता है। इन मार्करों में *पॉलीमार्फिज्म* की पहचान सुनिश्चित करने के लिए चार अतिरिक्त *जीनोटाइप केडब्लूएस 230-डीएच 1440, एसटीआर 6ए6001, सायनोमोनो (SynoMono)* तथा *सायनो टिल्लींग (SynoTilling)* का तुलनात्मक विश्लेषण का व्यापक उपयोग किया जाता है। इनसे प्राप्त सभी मार्कर उपयोग करने लिए तैयार तथा वैश्विक समुदाय के जैव सूचना वैज्ञानिकों के लिए आसानी से सुलभ *डाटाबेस* के लिए उपलब्ध होते हैं।

डाटाबेस का विकास

डब्लूएएमपी सर्वर के अधीन *पीएचपी* तथा *माईएकक्यूएल डाटाबेस* के प्रयोग से चुकंदर के *माइक्रोसेटेलाइट डाटाबेस* का विकास होता है। इसके सापेक्षिक डाटाबेस मुख्यतः तीन *टीयर आर्किटेक्चर* जिसे *क्लाईंट टीयर, मीडिल टीयर* तथा *डाटाबेस टीयर* शामिल होते हैं। *माईएसक्यूएल डाटाबेस* के पश्य शिरा पर एसटीआर *एन-सिलिको* में संग्रहित होते हैं। *पीएचपी* लिपि को उपयोगकर्त्ता द्वारा डाटाबेस संबंधित पूछताछ तथा कार्य निष्पादन के लिए जाना जाता है।

प्राइमर 3 के अंतर्गत में चयनित *एसटीआर* की गणना करने के लिए समन्वित किया जाता है। विशिष्ट *लोकस (लोशी)* के लिए *प्राइमर कॉल* अर्थात् *प्राइमर डिजाइनिंग* का उत्पादन तथा उनके सापेक्षिक पिघलने का तापक्रम, गुआनिन साइटोसिन सामग्री, शुरूआती स्थिति और अनुमानित पीसीआर उत्पाद के आकार के साथ पाँच प्राइमरों की सूची डेटाबेस में उपलब्ध रहती है।

फंक्शनल डोमेन को *सिंपल सीक्वेंस रिपीट पैटर्न* के साथ जोड़े जाने पर, *सिम्पल सीक्वेंस* को दोहराने के लिए *ऐड-ऑन यूटिलिटी* के रूप में फंक्शनल डोमेन मार्कर का सृजन होता है। कार्यात्मक डोमेन की पहचान करने के लिए सभी अनुक्रमों को सभी 6 रीडिंग फ्रेमों में अनुवाद किया जाता है। इसके *डिफॉल्ट सेंटिंग्स* (31-33) का उपयोग करके प्रोटीन डोमेन का विश्लेषण तथा भविष्यवाणी करने के लिए *'इण्टरप्रोस्कैन'* टूल का प्रयोग किया जाता है। कार्यात्मक डोमेन को प्राप्त करने वाले अनुक्रम और प्राइमर जोड़े के साथ मिलकर सरल अनुक्रम दोहराए जाते हैं जिन्हें कार्यात्मक *मार्कर* के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

इस *डाटाबेस* को पादप जीव वैज्ञानिक तथा पादप प्रजनकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए *डिजाइन* किया जाता है। *मोटिफ* (रूपांकन) टाइप के विकल्प जैसे *मोनो, डाई, टेट्रा, पेन्टा* और *हैक्सा रिपीट टाइप* तथा *रिपीट काइन्ड* चुकंदर के सभी नौ गुणसूत्रों पर प्रजनन करने के लिए उपयोगी होता है। इस प्रकार *क्यूटीएल* के स्थापन हेतु वांछित *एसटीआर मार्करों* की सहायता से चयन करने में सुविधा मिलती है। चूँकि *एसएसआर* द्वारा *पॉलीमॉर्फिक* का प्रदर्शन आठ से अधिक *रिपीट यूनिट* से अधिक अथवा इसके बराबर होने के फलस्वरूप *पॉलीमॉर्फिक मार्करों की* खोज के उद्देश्य से *मोनो-न्यूक्लियोटाइड रिपीट्स* को छोड़कर सभी *सिम्पल रिपीट्स* का चयन सुविधानुसार किया जाता है। सामान्यतः इसके लिए *'पर्ल'* लिपि का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा चयनित प्राइमरों को पाँच जीनोटाइप के बीच *ई-पीसीआर* में रखा जाता है, ताकि पीसीआर उत्पाद में होने वाले अंतर से *लोकस* को बहुरूपी माना जा सके।

भारत में कृषि जैव सूचना केन्द्र, भाकृअनुप-भारतीय कृषि साँख्यिकीय अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने मीठे चुकंदर के सम्पूर्ण *जीनोम* आधारित *एसटीआर* खनन के तमाम

माइक्रोसेटेलाइट मार्कर डाटाबेस का विकास सफलतापूर्वक किया है। प्रत्येक गुणसूत्र से सटीक चयन के साथ *प्राइमर डिजाइनिंग* तथा बहुरूपता मूल्यॉंकन संबंधित *बायोइंफार्मेटिक्स* शोध *शुगर बीट माइक्रोसेटेलाइट वेबसाइट* http://webapp.cabgrid.res.in/sbmdb/ पर जैव सूचना विज्ञान शोध कार्य हेतु आसानी से उपलब्ध है तथा संबंधित मूल शोध पत्र, *'डाटाबेस'* शोध पत्रिका में पहली बार सन् 2015 में प्रकाशित हुआ है। इस दिशा में संस्थान के अधीन कार्यरत सुपर कम्प्यूटर, 'अशोका' *(एडवांस्ड सुपरकम्प्यूटरिंग हब ऑफ ओमिक्स नॉलेज इन एग्रीकल्चर)* कृषि जैव सूचना विज्ञान में शोध हेतु महत्वपूर्ण है।

कृषि जैव सूचना विज्ञान में 'अशोका' *(एडवांस्ड सुपरकम्प्यूटरिंग हब ऑफ ओमिक्स नॉलेज इन एग्रीकल्चर)* के योगदान

नई संभावनाएँ

पूर्व के मार्कर संबंधित शोध कार्य में चुकंदर के दो प्रमुख स्पेसिज, *बीटा वल्गेरिस* तथा *बीटा वेबेनिया* के रूपान्तरण *मार्कर* के आधार पर जैव सूचना विज्ञान प्रस्तुत किया गया था, जो *आइसो एन्जाइम* की मदद से सम्पन्न हुई है। पहली बार *एसटीआर* तथा *एसएनपी मार्कर* से सीमित मात्रा में चुकंदर की प्रजाति संबंधित आणविक जैव सूचना उजागर हुए है। 677 *एसएनपी मार्कर* से लगभग 924 लाइन *डाटाबेस* का विश्लेषण हो पाया है और इनके व्यापक उपयोग से प्रजातियाँ से *जेनेटिक मैपिंग* (आनुवांशिक चित्रण) के आधार पर *डस* परीक्षण किया जाता है। इसके अलावा गन्ना, धान, जौ, शिमला मिर्च इत्यादि के जैविक सूचनाओं से मार्कर सहायक चयन में फायदा मिलता है। इससे प्रजातियों के बीच छिपे अनेक गुण *(ट्रेट)* को *इन-सीलिको* द्वारा अलग करके वांछित ट्रेट को परिभाषित किया जाता है।

एसटीआर मार्कर का जीन अभिव्यक्ति *(एक्सप्रेशन)* तथा विनियामक अथवा नियंत्रण *(रेगूलेशन)* में व्यापक उपयोग होता है। उदाहरण के लिए *सिस-रेगूलेट्री* क्षेत्र में *माइक्रो सेटेलाइट* की लम्बाई परिवर्तन से पीढ़ी के बीच जीन अभिव्यक्ति को बदलने में क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है। इससे अभिनव सृजन की दिशा में भरपूर सहयोग मिलता है। उदाहरण के लिए मानव *जीनोम* के संबंध में विनियामक क्षेत्रों में 16000 से अधिक *एसटीआर जीन* अभिव्यक्ति के लिए एक *'ट्यूनिंग नॉब्स'* की तरह काम करता है। इस *नॉब्स* की सहायता से किसी खास फिनोटिपिक बदलाव के मकसद से *जेनेटिक* बदलाव कर पाना संभव हुआ है। सामान्यतः इनका प्रयोग रोगों से निदान में वांछित जीन के बदलाव के लिए होता है। इन परीक्षण से फसल से विभिन्न प्रजाजियों के *मॉर्फोलॉजिकल* गुणों का अध्ययन किया जाता है जो प्रजनन संबंधित शोध कार्य में महत्वपूर्ण है।

चुकंदर में अधिक बायो इथेनॉल तथा *बायोमास* के उत्पादन में *एसटीआर मार्कर* का उपयोग किया जा सकता है। इससे विभिन्न पादप जीन नियमन में प्रयोज्य *(ट्रांसपॉसिबल)* तत्व का विकास चुकंदर में भी संभव है। *रिपिट्स सिक्वेंस* के खनन से *जीन एक्सप्रेशन* के अध्ययन में फायदा मिलता है। *एसटीआर* के उपयोग से *जेनेटिक मॉडीफायड* चुकंदर, आनुवांशिक विविधता और कंद मूल के ट्रेट में विकास की अपार संभावना निहित है। जो भविष्य की अक्षय ऊर्जा संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है। इस दिशा में अब तक 2027 *पॉलीमार्फिक मार्करों* की खोज *इन-सिलिको डाटाबेस* में सुरक्षित है। इससे कृषि जगत में निःसंदेह बदलाव आएगें।

आनुवांशिक विविधिता अध्ययन के अलावा प्रजातियों के *फाइलो जेनेटिक* अध्ययन से विभिन्न प्रकार के जैविक सूचनाओं के उपयोगिता के आधार पर अन्य जीव में हस्तानांतरित करने में मदद मिलती है। ऐसे शोध कार्य प्रायः कम्प्यूटर की मदद से होने से अनुसंधान तथा विकास के मद में व्यय भारी धनराशि स्वतः बच जाएगी। यर्थात् में कृषि जैविक सूचना विज्ञान का एकमात्र उद्देश यही होता है कि कृषि अनुसंधान में व्यय हो रहे लागत खर्च को कम से कम किया जा सके।

चुकंदर के विभिन्न प्रकार के उत्पाद जैसे चीनी, जैविक ईंधन, स्वास्थ्य संबंधित औषधी, रंग-रंजक, और पीएचपी *(पॉलीहाईड्रॉक्सीएल्कोनेट)* प्लास्टिक इत्यादि के उत्पाद में जैविक सूचनाओं का विशेष रूप से महत्व है। इस कड़ी में *शुगर बीट माइक्रो सेटेलाइट डेटाबेस* विश्व की अनुपम खोज है। जिसके अंतर्गत इसके सभी गुणसूत्र (9 *हैप्लॉइड*) के तमाम व्यवसायिक महत्व के जीन की खोज *इन-सीलिको* किया जाता है। भविष्य में इसके डेटाबेस के उपयोग से नित्य नए, अनूठे, तथा मानव उपयोगी उत्पादों के सृजन किया जा सकता है। आने वाले समय में आँकड़ों की बाजीगरी ही हमें हर तरफ जीत दिलाएगी?

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

गन्ने में समेकित खरपतवार प्रबंधन

आदित्य प्रकाश द्विवेदी, वेद प्रकाश सिंह, मनोज कुमार त्रिपाठी, के.के. सिंह एवं अभिषेक कुमार सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

समेकित खरपतवार प्रबंधन खरपतवार प्रबंधन की ऐसी विधा है, जिसमें दो या दो से अधिक खरपतवार नियंत्रण विधियों का प्रयोग करना होता है, जिससे लागत इकाई कम हो व खरपतवारों व फसलों के बीच कम से कम प्रतियोगिता रखते हुए, खरपतवार के अर्थिक स्तर के निम्न स्तर पर बनाये रखते हैं। गन्ने में बुआई के बाद 2-3 दिन में एट्राजीन की 2.0 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करते हैं तत्पश्चात् बुआई के 60 दिन बाद 2,4-डी का 1.00 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व की मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से खड़ी फसल में करनी होती है। इसके अतिरिक्त, मेट्रीब्यूजीन की 1.4 किग्रा मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से किल्ले निकलने से पूर्व के रूप में प्रयोग करते हुए 45 दिन बाद या एट्राजीन की 2 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से किल्ले निकलने से पूर्व व 2, 4-डी की 1.00 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 45-50 दिन बाद प्रयोग करना चाहिए। उक्त विधि के प्रयोग से पंजाब, असम, हरियाणा व उत्तर प्रदेश में 62 प्रतिशत अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार हरियाणा के प्रयोग में देखा गया है कि एक होइंग के बाद एट्राजीन की 2 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 40 दिन बाद प्रयोग करने से प्रभावी खरपतवार नियंत्रण हो जाता है। सूखी पत्ती बिछावन के बाद ग्लाइफोसेट का 1.00 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से पेड़ी फसल में 25 दिन बाद प्रयोग करना व 60 दिन बाद एक *होइंग* करने से आर्थिक रूप से अधिक लाभ प्राप्त होता है व खरपतवारों का प्रभावी प्रबंधन हो जाता है।

गन्ने की बावक व पेड़ी फसलों में अंतःफसली के अंतर्गत शाकनाशी रसायनों की संस्तुति उपयुक्त नहीं है। आक्सीफ्लूरोफेन की 0.23 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से बुवाई के बाद प्रयोग या पेंडीमेथिलिन का 0.75-1.0 कि.ग्रा./हे. की बुवाई के बाद प्रयोग, अन्तःफसली के रूप में लहसुन, पत्ता गोभी, मटर, मूँग, उर्द आधारित फसल प्रणाली में आर्थिक रूप से उपयुक्त पाया गया है। उक्तानुसार *प्रीईमरजेंस* या *अर्लीपोस्ट इमरजेंस* के रूप में (बुआई के 25 दिन बाद) मेट्रीब्यूजिन की 0.75-1.25 कि.ग्रा. प्रति हे. की मात्रा, गन्ना आधारित अंतःफसल (जैसे-आलू के साथ गन्ना) एक प्रभावी प्रबंधन विधि है। गन्ना+गेहूँ अंतःफसल प्रणाली के अंतर्गत मेटसल्फ्यूरान का 4-6 ग्रा. प्रति हे. की दर से फसल के किल्ले निकल आने के पश्चात के रूप में प्रयोग प्रभावी पायी गयी है।

समस्याग्रस्त खरपतवार का प्रबंधन

गन्ना एक दीर्घकालिक व अधिक दूरी पर लगायी जाने वाली एक फसल है, जो देश के विभिन्न सस्य-जलवायुवीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रबंधन के अंतर्गत विभिन्न अवस्थाओं में उगायी जाती है। इनमें मुख्य रूप से जंगली ज्वार, दूब, मोथा, अगिया, लपेटने वाले लपेटनी खरपतवार इत्यादि, मुख्य खरपतवार एक समस्या रहती है। इन खरपतवारों का प्रबंधन निम्नलिखित पद्धति से किया जा सकता हैः

जंगली ज्वार

विश्व का सबसे अधिक समस्याग्रस्त यह खरपतवार मुख्य रूप से बरसात (खरीफ) में गन्ने में उगने वाला प्रमुख खरपतवार है जो गन्ना उत्पादन में 40-70 प्रतिशत तक कमी करता है।

इस खरपतवार को हाथ से ही निकाल सकते हैं जबकि *होइंग* के द्वारा फसल की शुरूआती वृद्धि अवस्था में 2-3 सप्ताह में भी इसका प्रबंधन हो सकता है। बार-बार *होइंग* करने से बीज का बनना, *राइजोम* का विकास भी रोका जा सकता है जिससे इनकी वृद्धि रूक जाती है। गर्मी की गहरी जुताई भी एक कारगर तरीका है। इससे अधिक सघनता वाले खरपतवार के पौधों का *राईजोम* सहित प्रबंधन किया जा सकता है। इससे 90 प्रतिशत तक जंगली ज्वार के पौधे नष्ट हो जाते हैं।

फसल के किल्ले निकलने से पूर्व प्रयोग होने वाले शाकनाशी (जैसे-मेट्रीब्यूजीन, एमीट्रीन एवं एट्राजीन) व किल्ले निकलने के पश्चात प्रयुक्त होने वाले (ट्राईफ्लोक्सल्यूरान, एसूलाम एवं ग्लाइफोसेट) शाकनाशी का प्रयोग कर सकते हैं, जो बाजार में आसानी से उपलब्ध हैं। एसूलाम की 500-920 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग की संस्तुति की गयी है। अधिक प्रकोप होने पर एसूलाम की अधिक मात्रा, 2,000-3,500 ग्राम प्रति हे. एवं ट्रायफ्लोक्सल्फ्यूरान की 16 ग्राम प्रति हे. की मात्रा का प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न खरपतवार नियंत्रण की विधिओं के एकीकृत प्रयोग (जैसे- मृदा में प्रयोग एवं खड़ी फसल में प्रयोग), गहरी जुताई इत्यादि जंगली ज्वार के जमाव को रोकने के साथ-साथ, जड़ *(राइजोम)* को भी नष्ट किया जा सकता है।

मोथा का नियंत्रण

मोथा कुल के बैगनी रंग के *राइजोम* एवं *नटसेज* आर्थिक रूप से गन्ने की फसल को क्षति पहुँचाते हैं, जो सभी तरह की

सस्य जलवायु (उष्ण एवं उपोष्ण) में समस्या करते हैं। यह खरपतवार लगभग 20-90 प्रतिशत उपज में कमी करने का कारक है। 35-40 सें.मी. गहरी जुताई करने से मोथा की जड़ें नष्ट हो जाती हैं। यह क्रिया, 70-100 प्रतिशत तक मोथा जड़ों को नष्ट कर सकती हैं।

चयनित व अचयनित शाकनाशी का किल्ले निकलने से पूर्व एवं पश्चात प्रयोग किया जा सकता है। किल्ले निकलने के पश्चात प्रयोग होने वाले शाकनाशी जैसे- हेलोक्सीफाप आर-मिथईल, हेलोसल्फ्यूरान एवं बुआई के पहले या खड़ी फसल में फसल को बचाकर व कवर करके ग्लाइफोसेट का प्रयोग मोथा के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न रासायनिक *मालिक्यूलर* में से इथेक्सीसल्फूरान का 60 ग्राम मात्रा प्रति हे. की दर से प्रयोग करने से मोथा के नियंत्रण में वांछित सफलता मिली है। हेलोसल्फ्यूरान-मिथइल का (2-3 खरपतवार कई पत्तियों के समय) 90-120 ग्राम सक्रिय तत्व का प्रति हेक्टेयर की दर 45 दिन की अवस्था पर प्रयोग करना भी काफी प्रभावी होता है। इसके प्रयोग के बाद अगली फसल के रूप में उर्द, मक्का व खीरा आसानी से लिया जा सकता है। साथ ही 150 ग्रा./हे. की दर से सल्फेन्ट्राजान का 1,200 ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हे. की दर से किल्ले निकलने से पूर्व प्रयोग किया जा सकता है। फ्लेक्सा सल्फ्यूरान (जो एक सल्फयूनिल यूरिया शाकनाशी है व एक चयनित एवं *सिस्टेमिक* शाकनाशी है, का प्रयोग भी बड़े स्तर पर किया जा सकता है। इनका किल्ले निकलने से पूर्व तथा पश्चात दोनों ही तरह से प्रयोग पूरी फसल बढ़वारकाल में किया जा सकता है।

दूब

दलहनी फसलें एवं अन्य *कवर क्राप* इस खरपतवार के विकास को प्रभावित करती हैं, क्योंकि दूब पर छाया का विपरीत प्रभाव पड़ता है। घना व ओजपूर्ण फसल खरपतवार व गन्ना के बीच में प्रतियोगिता को कम करती है। गन्ना के साथ अंतःफसल भी फसल की वृद्धि व विकास को रोकती है। ग्लाइफोसेट के प्रयोग (बुआई के 30 दिन पहले) करने से भी इनका नियंत्रण होता है। गर्मी में तीन बार गहरी जुताई 3-4 सप्ताह के अंतराल पर करने से दूब के जड़ व तना *(रनर)* नष्ट होते हैं। ग्लाइफोसेट के 2.24 से 3.36 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से किल्लों के निकलने के बाद प्रयोग होने वाले के रूप में *स्पेशल हुड एप्लीकेटर* से अगस्त के अंतिम सप्ताह में प्रयोग करने से दूब का अच्छादन 20 प्रतिशत तक कम होता है।

अगिया

यह पिछले एक शताब्दी से सम्पूर्ण विश्व के साथ-साथ भारत के लिए एक परजीवी खरपतवार के रूप में समस्या पैदा कर रहा है। यह एक आत्मघाती के रूप में समस्याग्रस्त खरपतवार है जो फसल की वृद्धि एवं विकास को बुरी तरह प्रभावित करता है। एक नवीन *''स्ट्राइगो लेक्टेड सिम्ब्यूएटीटक एस्वेस्कुलर माइकाराईजा* फफूँद *(ए.एफ.एम.)* है, जो होस्ट पौधा द्वारा उत्सर्जित होता है। ये अन्तः फसलें हैं सोयाबीन, मूँगफली एवं लोबिया।

हाथ से गुड़ाई-निराई आमतौर पर खरपतवार प्रबंधन की पुरानी पद्धति है परन्तु अधिक श्रमिकों व समय के प्रयोग के कारण यह संभव नहीं हो पाती। कुछ रसायन जैसे- ईथाईलिन, इथेफान, स्ट्राइगोल इत्यादि भी उक्त फफूँद को उत्सर्जित करते हैं।

कम्पोस्ट जैसे कार्बनिक पदार्थ/खाद एवं अकार्बनिक उर्वरक भी फसल को इस खरपतवारों से प्रतियोगिता करने में सहायक सिद्ध होते हैं। *स्ट्राईगा*/अगिया से आच्छादित प्रक्षेत्र में नत्रजनधारी उर्वरक एवं सिंचाई के लगातार प्रयोग करते रहने से भी लाभ होता है। *स्ट्राईगा* से आच्छादित गन्ने के प्रक्षेत्र में समेकित तत्व प्रबंधन के अंतर्गत कार्बनिक खाद एवं रासायनिक उर्वरक के प्रयोग से भी इस खरपतवार को प्रबंधन करने में आसानी होती है।

विभिन्न खरपतवारनाशी रसायनों के प्रयोगों में 2.4-डी एक प्रमुख चयनित शाकनाशी है, जो आर्थिक रूप से भी काफी अच्छा है। पूरे विश्व स्तर पर विभिन्न खरपतवारनाशियों के एक साथ प्रयोग करने में, 2.4-डी या मेट्रीब्यूजीन, एट्राजीन या मेट्रीब्यूजीन + 2,4-डी का 75 प्रतिशत या 100 प्रतिशत संस्तुत मात्रा गन्ने की फसल के 100 दिन की अवस्था पर (जब से *स्ट्राईगा* का अंकुरण हुआ है) के साथ-साथ दो से तीन बार 40 दिनों के अंतराल पर प्रयोग की संस्तुति दी जाती है।

आइपोमिया

यह एक लपेटने वाला पौधा है जो गन्ने को आपस में बांधते हुए ऊपर की तरफ चढ़ता है। इस खरपतवार का जमाव तब होता है, जब गन्ने का पौधा पूरी तरह विकसित होने लगता है। इनकी लताओं को रसायन से मारना आसान है परन्तु गन्ने की खड़ी फसल में इनका प्रबंधन कठिन होता है। *आइपोमिया* का अंकुरण लंबी अवधि तक जमाव करता रहता है और इसका पौधा शुरू में कम ही पत्तियों सहित होता है। इसका पौधा इसलिए भी कठिनाई से प्रबन्धित होता है। इनका अंकुरण बरसात आने से पहले ही शुरू होता है व कई बार अंकुरित होता रहता है। यह पोषक तत्वों व पानी के लिए प्रतियोगिता तो करता ही है वरन लपेटने की प्रवृत्ति के कारण गन्ने के पूरे पौधे को ही उलझा लेता है व उनकी पत्तियों को विकसित नहीं होने देता। इसके प्रकोप के कारण लगभग गन्ने की उपज 25 प्रतिशत कम होती है साथ ही गन्ने की कटाई में भी कठिनाई होती है।

गन्ने की शुरूआती बढ़वार में इसे हाथ से निकाला जा सकता है परंतु गन्ने के बढ़ने के बाद इसे हाथ से निकालना कठिन हो जाता है। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के शुरूआती प्रयोग के परिणामों से इंगित है कि मेट्रीब्यूजीन + 2,4-डी के मिश्रित टैंक के गन्ने के 1.5 फिट की ऊँचाई होने पर छिड़काव करने से इसका नियंत्रण हो सकता है।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

गन्ने के प्रमुख खरपतवार एवं उनकी रोकथाम

हिमांशु वर्मा
सस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर

हमारे देश में उगाई जाने वाली नकदी फसलों में गन्ने का प्रमुख स्थान है। यह एक बहुवर्षीय फसल है जो शरद (अक्टूबर), बसंत (फरवरी-मार्च) तथा अधसाली (जुलाई) में बोई जाती है। अधसाली गन्ने की बुवाई मुख्यतः महाराष्ट्र में की जाती है, जबकि भारत में ज्यादातर गन्ने की बुवाई बसंत ऋतु (फरवरी-मार्च) में की जाती है। इसकी बुवाई 75-90 से.मी. की दूरी पर कतारों में की जाती है। गन्ना बुवाई के लगभग 3-4 सप्ताह बाद उगता है परन्तु प्रारम्भिक अवस्था में इसकी बढ़वार अत्यंत धीमी होती है। पंक्तियों के बीच पर्याप्त दूरी एवं धीमी प्रारम्भिक बढ़वार खरपतवारों को बढ़ने तथा फैलने में अत्यधिक सहायक होती है। इसलिए इन खरपतवारों का यदि समय पर नियंत्रण न किया गया तो गन्ने की पैदावार एवं गुणवत्ता में कमी आती है।

प्रमुख खरपतवार तथा उनसे होने वाली हानियाँ

गन्ना पूरे वर्ष भर की फसल है इसलिए इसमें रबी, खरीफ तथा जायद मौसमों के खरपतवार उगते हैं। सितम्बर-अक्टूबर में बोये गए गन्ने की प्रारम्भिक अवस्था में चौड़ी पत्ती के खरपतवार ज्यादा उगते हैं तथा बाद में फरवरी-मार्च में बोये गए गन्ने में खरीफ मौसम के खरपतवार उगने लगते हैं। गन्ने की फसल खेत में 12 से 18 महीने तक रहती है। इसके साथ ही इसे अत्याधिक खाद एवं पानी की आवश्यकता होती है। ये परिस्थितियाँ खरपतवारों की वृद्धि एवं विकास में सहायक होती हैं। गन्ने की फसल में खरपतवार फसल की तुलना में 5.8 गुना नाइट्रोजन, 7.8 गुना फास्फोरस एवं तीन गुना पोटाश उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त, खरपतवार नमी का एक बड़ा हिस्सा शोषित कर लेते हैं तथा फसल को आवश्यक प्रकाश एवं स्थान से भी वंचित रखते हैं। इसके अतिरिक्त, खरपतवार फसलों में लगने वाले कीटों एवं रोगों

शरदकालीन गन्ने में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

बथुआ *(चिनोपोडियम एल्बम)*

मटरी *(लेथाइरस अफाका)*

अंकरी *(विसिया सेटाइवा-हिरसुटा)*

कृष्णनील *(एनागेलिस आरवेन्सिस)*

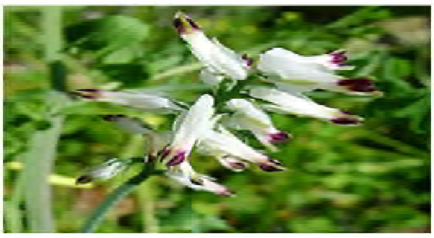
सोया *(यूमेरिया पारवीलोरा)*

हिरनखुरी *(कानवावुलस आरवेन्सिस)*

सेंजी *(मेलिलोटस प्रजाति)*

मोथा *(साइप्रस रोटन्ड्स)*

(साइप्रस इरिया) आदि

बसंतकालीन गन्ने में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

पत्थरचटा *(ट्राइन्थमा मोनोगाइना)*

अगेव *(स्ट्रइगा प्रजाति)*

मकोय *(सोलेनम नाइग्रम)*

हजारदाना *(फाइलेन्थस निरुरी)*

जंगली चौलाई *(अमरेन्थसद विरिडिस)*

महकुआ *(ऐजेरेटम प्रजाति)*

दुद्दी *(यूफोरबिया प्रजाति)*

कालादाना *(आइपोमिया हेडेरिसिया)*

संवा *(इकानोक्लोआ प्रजाति)*

मकरा *(डेक्टीलोक्टेनियम इजिपटियम)*

दूबघास *(साइनोडान डैक्टीलान)*

मोथा *(साइप्रस रोटन्ड्स)*

के जीवाणुओं को भी आश्रय देते हैं। खरपतवारों की संख्या एवं प्रजाति के अनुसार गन्ने की पैदावार में 14 से 75 प्रतिशत तक की कमी आंकी गई है तथा साथ ही साथ चीनी की मात्रा एवं गुणवत्ता में भी कमी आती है।

खरपतवारों की रोकथाम का समय

गन्ने में खरपतवारों की मुख्य समस्या बोने से लेकर मानसून शुरू होने तक रहती है। इस समय गन्ने के पौधे छोटे होते हैं तथा खरपतवारों से मुकाबला नहीं कर पाते हैं। अतः गन्ने की फसल को शुरू से खरपतवार रहित रखना आवश्यक होता है। चूँकि फसल को शुरू से खरपतवार रहित रखना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं होता इसलिए खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्था में इनकी रोकथाम जरूरी होती है। गन्ने में यह अवस्था बुवाई के बाद 40-70 दिन के बीच होती है।

नियंत्रण के उपाय

गन्ने की फसल में खरपतवार नियंत्रण की विधियां निम्न हैं :

यांत्रिक विधि- जहाँ पर कृषि कार्य करने वाले श्रमिक सरलता एवं कम लागत में मिलते हैं वहाँ पर गन्ने की फसल में उगने वाले खरपतवारों को खुरपी, *हो* अथवा कुदाली से नष्ट किया जा सकता है। फसल बोने से पूर्व की जुताई भी खरपतवारों की संख्या में कमी लाती है, चूँकि गन्ने की फसल का जमाव बुवाई के 25-30 दिन बाद होता है तब तक खरपतवार काफी संख्या में उग आते हैं, इसलिए फसल बोने के एक-दो सप्ताह बाद गुड़ाई करने से खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। इसे अंधी गुड़ाई कहते हैं। इसके अलावा बैलों द्वारा चलाए जाने वाले *कल्टीवेटर* से गन्ने की पंक्तियों के बीच के खरपतवार पर प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

ट्रैश मल्चिंग - गन्ने की पंक्तियों के बीच खाली स्थान में गन्ने की सूखी पत्तियों या पुवाल की 7-12 सें.मी. मोटी तह इस प्रकार से बिछा दी जाए कि गन्ने का अंकुर न ढकने पाए तथा केवल खाली स्थान ढका रहे। ऐसा करने पर खरपतवार ढक जाते हैं तथा प्रकाश न मिलने के कारण पीली पड़कर सूख जाते हैं। इससे खेत में नमी भी सुरक्षित रहती है।

अन्तर्वर्ती फसलों की बुवाई - चूँकि गन्ने की कतारों के बीच खाली जगह ज्यादा होती है तथा इसी खाली स्थान में खरपतवार अधिक उगते हैं, इसलिए इस खाली स्थान में कम अवधि वाली तथा तेज बढ़ने वाली फसलें उगाने से न केवल खरपतवारों पर काफी हद तक काबू पाया जाता है बल्कि प्रति हेक्टेयर पैदावार व आमदनी में भी बढ़ोत्तरी की जा सकती है। शरदकालीन गन्ने के साथ आलू, गेहूँ, लाही (तोरिया) एवं मसूर आदि को बोया जा सकता है तथा बसंतकालीन गन्ने के साथ मूँग एवं उर्द की फसल ली जा सकती है। इसमें ध्यान देने वाली बात यह है कि इन फसलों की कम अवधि वाली तथा तेज बढ़ने वाली प्रजातियों का ही चुनाव करें। गन्ने के अच्छे बीज का चुनाव, बीजोपचार, भूमि में कीटनाशक दवाओं का प्रयोग एवं खाद एवं उर्वरक तथा सिंचाई की उचित मात्रा के प्रयोग से जहाँ एक ओर फसल का अंकुरण एवं वृद्धि अच्छी होती है तथा फसल की बढ़वार अधिक होती है वही दूसरी ओर स्वस्थ पौधे खरपतवारों से प्रतियोगिता करने की क्षमता रखते हैं।

शाकनाशी के प्रयोग द्वारा - यांत्रिक विधि से गन्ने की फसल में खरपतवार नियंत्रण में कुछ कठिनाईयाँ आती हैं जैसे - 1. यांत्रिक विधि से निराई-गुड़ाई वर्षा ऋतु से पहले ही संभव है क्योंकि वर्षा ऋतु में खेत में हमेशा नमी रहने से निकाई-गुड़ाई यंत्रों का चलाना संभव नहीं होता। 2. यांत्रिक विधि से निकाई-गुड़ाई काफी खर्चीली पड़ती है एवं इसमें समय बहुत लगता है। इसलिए खरपतवारों को क्रांतिक अवस्था में नियंत्रित करने में कठिनाई आती है। 3. कतारों के बीच में उगे खरपतवारों का नियंत्रण नहीं हो पाता है।

उपरोक्त कठिनाईयों को देखते हुए गन्ने की फसल में शाकनाशियों का प्रयोग जहाँ एक तरफ कम खर्चीला है वहीं दूसरी तरफ इससे खरपतवारों का समय से नियंत्रण हो जाता है तथा समय की बचत भी होती है। गन्ने की फसल में खरपतवारों को नष्ट करने के लिए बहुत से शाकनाशी उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग अंकुरण के पूर्व व बाद में किया जा सकता है इनमें कुछ प्रमुख शाकनाशी निम्नवत हैं:

एट्राजिन - गन्ने में एक वर्षीय चौड़ी पत्ती वाले, घास कुल के खरपतवारों तथा मोथा को नष्ट करने के लिए यह एक प्रभावी शाकनाशी है। इनका प्रयोग गन्ने की बुवाई के बाद परन्तु उगने के पहले किया जाता है। भारी भूमियों में 2.0-2.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हेक्टेयर तथा हल्की भूमियों में 1.0-1.5 कि.ग्रा./हेक्टेयर मात्रा पर्याप्त होती है।

मेट्रीब्यूजिन - यह एक अत्यंत प्रभावशाली शाकनाशी है। इसका प्रयोग बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व किया जाता है। इसका प्रयोग 5-10 प्रतिशत गन्ना उगने पर भी किया जा सकता है। इस शाकनाशी की 1.0-1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व मात्रा प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होती है। इसके प्रयोग से प्रमुख खरपतवार जैसे मोथा, कोदों, डिजिट्रैरिया, पत्थरचटा आदि का प्रभावी नियंत्रण हो जाता है।

2 4-डी - चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों तथा मोथा के नियंत्रण के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी 1.5-2.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हेक्टेयर मात्रा बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण के पूर्व करने से संतोषजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। गन्ने की फसल में अंकुरण के बाद इस रसायन की 1.0 कि.ग्रा./हेक्टेयर मात्रा प्रयोग करने से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे पथरचटा, नूनिया, छोटा गोखरु आदि का प्रभावी नियंत्रण हो जाता है।

डाइयूरान - इस खरपतवारनाशी की 2.5-3.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व मात्रा प्रति हेक्टेयर बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण के पूर्व प्रयोग करने से खरपतवारों का अच्छी तरह से नियंत्रण हो जाता है तथा गन्ने की फसल पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।

पैराक्वाट - इस खरपतवारनाशी रसायन की 0.5-1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व मात्रा को 5-10 प्रतिशत गन्ना उगने पर प्रयोग करने से सभी प्रकार के खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण हो जाता है। छिड़काव करते समय *हुड* का प्रयोग करें।

एलाक्लोर - घास कुल के खरपतवारों तथा मोथा को नष्ट करने के लिए इस शाकनाशी रसायन की 2-3 कि.ग्रा. मात्रा को प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के तुरंत बाद व अंकुरण से पूर्व प्रयोग करना चाहिए। खरपतवारनाशी रसायनों की आवश्यक मात्रा को 600 लीटर पानी में प्रति हेक्टेयर के हिसाब से घोल बनाकर समान रूप से करना चाहिए।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

गन्ने की कतारों के बीच अधिक दूरी होने के कारण यांत्रिक विधि, *मल्चिंग* एवं रासायनिक विधि, आदि तरीकों का प्रयोग साथ-साथ किया जा सकता है। ऐसा करने से जहाँ केवल एक विधि से खरपतवार नियंत्रण पर निर्भरता कम होती है बल्कि खरपतवारों का प्रभावी ढंग से नियंत्रण भी होता है। उदाहरण के तौर पर गन्ने में बुवाई के बाद सूखी पत्तियों की *मल्चिंग* करने तथा उसके बाद फसल उगने पर किसी भी शाकनाशी का प्रयोग करने से खरपतवारों का नियंत्रण ज्यादा कारगर होता है तथा गन्ने की पैदावार भी बढ़ जाती है। एट्राजीन 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हेक्टेयर की दर से बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व प्रयोग करने तथा उसके बाद हाथ से एक बार निराई करन पर गन्ने की पैदावार में अधिक वृद्धि होती है। इसी प्रकार एट्राजिन 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हेक्टेयर की दर से लाइनों के बीच *(डायरेक्टेड स्प्रे)* करने से गन्ने की फसल को खरपतवारों से सम्पूर्ण छुटकारा मिल जाता है तथा पैदावार में भी बढ़ोत्तरी होती है।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

लवण प्रभावित समस्याग्रस्त मृदा को कैसे बनाएँ उपजाऊ ?

प्रशान्त देव सिंह, आनन्द सिंह, अभिलाषा पाठक एवं उदय प्रताप शाही

सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

भारत में लवण प्रभावित मृदाएं विस्तृत रूप से वितरित हैं। यें मृदाएं प्रायः शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में पायी जाती हैं। समुद्र तट के निकट की तटवर्ती भूमि में नमी होने के बावजूद मृदाओं में लवणता होती है। भारत में 70 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में लवण प्रभावित मृदाएं पायी जाती हैं। जो मुख्यतः उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र में फैली हुई हैं। उत्तर प्रदेश में मुख्यतः मैनपुरी, आजमगढ़, इटावा, रायबरेली, हरदोई, सुल्तानपुर, उन्नाव, अलीगढ़ एवं लखनऊ में लवणीय मृदाऐं पायी जाती हैं।

क्षारीय और लवणीय भूमि उस प्रकार की भूमि को कहते हैं जिसमें क्षार व लवण विशेष मात्रा में पाए जाते हैं। शुष्क जलवायु वाले स्थानों में ये लवण सफेद या भूरे-सफेद रंग के रूप में जमा हो जाते हैं। यह भूमि पूर्णतया अनुपजाऊ एवं ऊसर होती हैं।

वर्गीकरण- ऊसर भूमियों को निम्न तीनों वर्गों में बाँटा गया है-

(अ) लवणीय मृदाएं

(ब) लवणीय-क्षारीय मृदाएं

(स) अलवणीय-क्षारीय मृदाएं

(अ) लवणीय मृदाएं- इन मृदाओं में विलेय लवणों की अधिकता होती हैं। ये लवण अधिकांशतः सोडियम, मैग्नीशियम और कैल्शियम के क्लोराइड्स और सल्फेट्स होते हैं। मृदा के ऊपरी पृष्ठ पर एकत्र विलेय लवण सफेद पपड़ी के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हें सफेद ऊसर भी कहते हैं।

इस मृदा का पीएच 8.5 से कम होता हैं। विनिमय सोडियम 15 प्रतिशत से कम पाया जाता है। 25^0 सेल्सियस पर मृदा के संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत चालकता 4 मिलीमोज प्रति सेन्टीमीटर से अधिक होती है।

(ब) लवणीय-क्षारीय मृदाएं- इन मृदाओं में विलेय लवणों और विनिमय सोडियम दोनों की अधिकता होती हैं। मृदा पीएच 8.5 से अधिक, विनिमय सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक तथा मृदा के संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत चालकता 25^0 सेल्सियस पर 4 मिलीमोज प्रति सेन्टीमीटर से अधिक होती हैं। इन मृदाओं का पीएच परिवर्तनशील होता है।

(स) अलवणीय-क्षारीय मृदाएं- इन मृदाओं को काला ऊसर भी कहते हैं क्योंकि विनिमय सोडियम की अधिकता से मृदा जीवांश पदार्थ विक्षेपित होकर भूमि की ऊपरी पृष्ठ पर जमा हो जाता हैं जिससे भूमि काले रंग की दिखाई देती हैं।

इस मृदा में विनिमय सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक पाया जाता है, मृदा पीएच 8.5-10 तक होता है। मृदा के संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत चालकता 25^0 सेल्सियस 4 मिलीमोज प्रति सेन्टीमीटर से कम होती हैं। लवणों में सोडियम कार्बोनेट की प्रधानता होती हैं। भूमि के नीचे कंकड़ की परत का होना इस मृदा का प्रमुख लक्षण है।

लवणीय-क्षारीय मृदा बनने के कारण

1. शुष्क जलवायु- शुष्क क्षेत्रों में वर्षा कम होने के कारण लवणों का निक्षालन अधिक गहराई पर नहीं हो पाता हैं। तीव्र वाष्पीकरण द्वारा ये लवण पुनः मृदा सतह पर आते हैं। वाष्पीकरण द्वारा मृदा सतह पर लवणों के संचयन में सदैव वृद्धि होती रहती है।

2. क्षतिपूर्ण जल निकास- भूमि में जलस्तर ऊँचा होने के कारण या भूमि में किसी कठोर तह की उपस्थिति के कारण वर्षा का पानी, जिसमें लवण घुले होते हैं, शोषित होकर नीचे गहराई में नहीं जा पाता है। इस प्रकार लवणों का निक्षालन नहीं हो पाता है।

3. लवणयुक्त जल द्वारा सिंचाई - लवणीय पानी से अधिक समय तक सिंचाई करने से भूमि लवणीय या क्षारीय हो जाती है। पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश में नहर के पानी से सिंचाई करने कारण भूमि लवणीय होती जा रही है क्योंकि इस पानी में लवणों की मात्रा अधिक होती है।

4. अधिक सिंचाई

5. उच्च भौम जलस्तर

6. क्षारीय उर्वरकों का भारी मात्रा में प्रयोग

मृदा क्षारीयता एवं लवणता का पौधों पर प्रभाव

इन मृदाओं में जो लवण उपस्थित होते हैं, वे स्वयं तो पौधों के पोषक के रूप में प्रयोग नहीं होते, परन्तु पौधों की जड़ों और तनों के सम्पर्क में आकर उन्हें हानि पहुँचाते हैं। विलेय लवणों का

हानिकारक प्रभाव पौधों की वृद्धि पर निम्न प्रकार से होता है-

- लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में विलेय लवणों या विनिमय सोडियम की अधिकता के कारण अधिकांश पौधों की वृद्धि ठीक प्रकार नहीं होती है। मृदा विलयन में विलेय लवणों की अधिक सान्द्रता के कारण विलयन का रसाकर्षण दाब पौधों की कोशिकाओं में मिलने वाले विलयन के रसाकर्षण दाब की अपेक्षा अधिक होता है। परिणामस्वरूप पौधों की कोशिकाओं से पानी निकलकर अधिक सान्द्र विलयन में प्रवेश करने लगते हैं जिससे पौधे मुरझाकर नष्ट हो जाते हैं।

- विलेय लवणों की मृदा विलयन में अधिकता होने के कारण विलयन गाढ़ा रहता है। इसलिए पौधों को पानी की कमी रहती है। पौधों में विलेय लवण अधिक मात्रा में पहुँच जाते हैं जो हानिकारक होते हैं।

- क्षारीय भूमि में विनिमय सोडियम की अधिकता के कारण मृदा संरचना खराब हो जाती है। पौधों में कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।

- वायु संचलन, पारगम्यता, सूक्ष्म जीव इत्यादि की क्रियाशीलता मंद हो जाती हैं। इन मृदाओं में फास्फोरस, लौह तत्व, ताँबा, जस्ता, मैग्नीज आदि तत्वों की प्राप्यता कम हो जाती है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का सुधार

इन मृदाओं को सुधारने की विधियों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जाता हैः

1. भौतिक एवं जल-तकनीक विधि
2. रसायनिक सुधार
3. जैविक सुधार

1. भौतिक एवं जल-तकनीक विधि- यांत्रिक विधियाँ इन मृदाओं के भौतिक गुणों को सुधारने के लिए प्रयोग की जाती हैं। ये विधियाँ (i) गहरी जुताई (ii) अवमृदा गहरी जुताई (iii) बालू भरावन है। यह विधियाँ अन्तः स्पन्दन को सुधारती हैं।

प्रायः जल तकनीक सुधार विधि सभी सुधार विधियों का एक प्रमुख भाग है।

- **मृदा को सतह से खुरचकर या मृदा सतह को खुरचना-** मृदा की ऊपरी सतह पर सफेद परत के रूप में उपस्थित लवणों को खुरचकर हटाया जा सकता है। 15 से 30 सेन्टीमीटर गहराई तक लवण खुरचते हैं।

- **निक्षालन-** इस क्रिया द्वारा लवणों को जल में विलेय करके पादप जड़ क्षेत्र से नीचे लाया जाता हैं ताकि लवणों का पौधों पर बुरा प्रभाव न पड़े। निक्षालन हेतु इतना जल देना चाहिए जोकि फसलों की जरूरत के साथ-साथ निक्षालन माँग को पूरा कर सके।

- **खाई खोदकर-** इस विधि में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खाईयाँ खोदते हैं। खाई की चौड़ाई और गहराई निश्चित नहीं होती हैं। खेत के किसी एक किनारे पर खाई खोदकर उसकी मिट्टी को डोल के ऊपर डाल देते हैं और इसके ठीक बगल में कुछ स्थान छोड़कर दूसरी खाई खोदते हैं। इस मिट्टी को प्रथम खाई में इस प्रकार भरते हैं कि ऊपरी लवण तथा क्षार युक्त मिट्टी नीचे तथा नीचे वाली मिट्टी ऊपर आ जाए।

- **विलेय लवणों को मृदा सतह से बहाना-** खेत में पर्याप्त मात्रा में पानी भर दिया जाता है जिससे ऊपरी सतह के लवण पानी में घुल जाते हैं। इसके बाद पानी को खेत से बहा देने पर लवणों की अधिकांश मात्रा पानी के साथ बहकर बाहर निकल जाती है और मृदा की ऊपरी सतह पर लवणों की मात्रा कम हो जाती है।

- **रसायनिक सुधार-** रसायनिक विधियों का मुख्य उद्‌देश्य सोडियम युक्त मृदाओं को रसायनिक सुधारकों का प्रयोग करके साधारण कैल्शियम मृदा में परिवर्तित करना है। इस विधि में निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिएः

- मृदा का ठीक-ठीक विश्लेषण करके रासायनिक पदार्थ की आवश्यक मात्रा निकाल लेनी चाहिए क्योंकि उचित मात्रा से कम डालने पर सुधार प्रभाव कम होगा।

- कोई भी एक प्रकार का रासायनिक पदार्थ हर प्रकार की ऊसर मृदा में प्रयोग नहीं किया जा सकता।

- **जिप्सम का प्रयोग-** ऐसी भूमियाँ जिसमें विनिमय सोडियम की अधिकता हो, साधारण विधियों द्वारा नहीं सुधारी जा सकती हैं। ऐसी भूमियों को सुधारने के लिए जिप्सम का प्रयोग आवश्यक हैं। रासायनिक रूप से जिप्सम कैल्शियम सल्फेट है जिसमें 23.20 प्रतिशत कैल्शियम, 18.65 प्रतिशत गंधक तथा 20.9 प्रतिशत भारानुसार जल होता है। एक हेक्टेयर भूमि को सुधारने के लिए 10-15 टन प्रति हेक्टेयर जिप्सम की आवश्यकता होती है। जिप्सम को खूब बारीक पीस कर भूमि में 10-15 सेन्टीमीटर तक गहराई पर मिलाना चाहिए। जिप्सम ऊसर भूमि में पाये जाने वाले सोडियम कार्बोनेट से क्रिया करके सोडियम सल्फेट में बदल देता हैं जोकि पानी में घुलनशील है अतः मृदा की निचली सतह में चला जाता है।

वर्षा ऋतु से पहले खेत की जुताई करके जिप्सम को फैलाना चाहिए। जुताई द्वारा इसको मृदा में मिला देना चाहिए। जल की काफी अधिक मात्रा का खेत में लगभग 10-15 दिनों तक लगे रहने की आवश्यकता होती हैं।

जिप्सम की संस्तुत मात्रा (टन प्रति हेक्टेयर)

ऊसर भूमि का पीएच मान	रेतीली भूमि	बलुई दोमट भूमि	भारी मटियार भूमि
9.00 से कम	जिप्सम नहीं डालें	जिप्सम नहीं डालें	जिप्सम नहीं डालें
9.20	1.7	2.5	3.4
9.40	3.4	5.0	6.8
9.60	5.0	7.5	10.0
9.80	6.8	10.0	14.6
10.0	8.5	12.5	15.0
10.0 से अधिक	10.0	15.0	15.0

● **फास्फोजिप्सम-** खानों के अतिरिक्त जिप्सम कई कारखानों से भी (जिप्सम उप उत्पाद के रूप में) प्राप्त होता है। फास्फोरिक अम्ल निर्मित करने वाले कारखानों से भी जिप्सम उप उत्पाद के रूप में मिलता है जिसे फास्फोजिप्सम के नाम से जाना जाता है। फास्फोजिप्सम में लगभग 90 प्रतिशत जिप्सम तथा 1-2 प्रतिशत फ्लोरीन होती है। इसका प्रयोग क्षारीय मृदाओं को सुधारने के लिए सफलतापूर्वक किया जाता है।

● **पाइराइट-** इसका प्रयोग भी क्षारीय भूमि को सुधारने के लिए किया जाता हैं। इस खनिज के अन्दर गंधक व लोहा पाया जाता हैं। कृषि ग्रेड के पाइराइट में 22 प्रतिशत गंधक, 20 प्रतिशत लोहा, 0.02 प्रतिशत जस्ता, 0.05 प्रतिशत ताँबा व 0.01 प्रतिशत मैगनीज पायी जाती है। क्षारीय भूमि में इसका प्रयोग जिप्सम से भी उत्तम पाया गया हैं क्योंकि इसमें पौधे के लिए अन्य आवश्यक सूक्ष्म तत्व भी पाये जाते हैं। आमतौर पर लगभग 10-12 टन पाइराइट प्रति हेक्टेयर प्रयोग किया जाता हैं।

● **जैविक सुधार -** कार्बनिक पदार्थ सड़ने पर कार्बन डाईऑक्साइड तथा कार्बनिक अम्ल पैदा करते हैं। ये अम्ल अविलेय कैल्शियम लवणों को विलेय करके मृदा क्षारीयता को कम करते हैं। मुख्य रूप से प्रयोग किए जाने वाले कार्बनिक सुधारक निम्नवत हैं:

कार्बनिक सुधारक	मात्रा (टन/हेक्टेयर)
गोबर की खाद	10-12
प्रैसमड	100-120
हरी खादें	125-150
फसलों के अवशेष (धान की पुआल)	120-200

निम्नलिखित सावधानियों पर विशेष ध्यान दें:-

● लवणों के प्रति सहनशील धान की किस्में ही बोयें। क्षारीय भूमियों में रोपाई हेतु धान की निम्न किस्में उपयुक्त हैं:

जल्दी पकने वाली किस्में- पी.आर. 1-21 (120-130 दिन में पककर तैयार)

मध्यम अवधि में पकने वाली किस्में:- आई.आर. 8, जया, पी.आर. 106, बासमती 370 (140 से 150 दिन में पककर तैयार)

● धान की प्रजाति सी.एस.आर. 13, उत्तर प्रदेश की सभी ऊसर भूमियों के लिये उपयुक्त है। सामान्य भूमियों में सी.एस.आर. 13 की पैदावार 5.5 से 6.5 टन/हेक्टेयर एवं ऊसर भूमियों में पैदावार 3.5 से 4.5 टन/हेक्टेयर होती हैं।

● केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा) के कृषि वैज्ञानिकों द्वारा लवणीय व क्षारीय भूमियों के लिए विकसित उन्नतशील प्रजातियाँ:

गेंहू :- के.आर.एल. 1-4 एवं के.आर.एल. 19

धान:- सी.एस. आर. 10, 13, 23, 27, 30 एवं 36

सरसों:- सी.एस. 52 एवं सी.एस. 54

ढैंचा:- सी.एस.डी. 123 एवं 137

चना:- करनाल चना- 1

● धान-गेहूँ फसल चक्र में सामान्य भूमि की तुलना में नाइट्रोजन की मात्रा 25 प्रतिशत अधिक उपयोग करें। लेकिन जिप्सम दोबारा न डालें। धान के बाद खेत में गेहूँ, जौ, चुकन्दर, बरसीम आदि फसलें सफलतापूर्वक उगायी जा सकती हैं।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

चुकन्दर के प्रमुख रोग एवं उनका नियन्त्रण

राम जी लाल, वरूचा मिश्रा, आशुतोष कुमार मल्ल, मुकेश कुमार एवं अश्विनी दत्त पाठक
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ने के अतिरिक्त चुकन्दर चीनी उत्पादन हेतु एक प्रमुख फसल है। संसार में लगभग 40 प्रतिशत चीनी चुकन्दर से उत्पादित की जाती है। चुकन्दर गर्म क्षेत्र की फसल है, परन्तु यह कटिबन्धीय एवं उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों जैसे भारत, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, मिस्त्र एवं पाकिस्तान आदि देशों में भी उगायी जाती है। इसके अतिरिक्त यह फसल अम्लीय एवं क्षारीय मृदा तथा जाड़ा, गर्मी एवं शुष्क वातावरण में भी सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है।

चुकन्दर की स्वस्थ फसल

फसल के अनुकूल वातावरण, मूल एवं पत्तियों का रसीला होना एवं मृदा में जड़/मूल का लगातार सम्पर्क होने के कारण इस पर कई प्रकार के रोगकारक प्रकोप करते हैं। चुकन्दर में बीज बोने से लेकर उसकी कटाई तक अनेक प्रकार के रोग लगते हैं जो कि फसल को हानि पहुचाते हैं। रोगों के प्रकोप के कारण फसल की पैदावार एवं चीनी की मात्रा में 10-15 प्रतिशत ह्रास होता है। हमारे देश में चुकन्दर पर लगभग 25 प्रकार के रोग लगते हैं उनमें से 15 प्रकार के रोग फसल को अत्याधिक हानि पहुँचाते हैं। चुकन्दर पर लगने वाले रोगों को सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है (सारिणी 1-4)।

(i) बीजांकुर रोग
(ii) जड़/मूल विगलन रोग
(iii) पर्णवृन्त रोग
(iv) मूल जड़ ग्रन्थि सूत्रकृमि रोग, एवं
(v) पोषक तत्वों की न्यूनता से उत्पन्न रोग

(1) बीजांकुर रोग

(अ) पीथियम बीज विगलन एवं आर्द्रपतन रोग

हमारे देश में चुकन्दर मुख्यतयाः अक्टूबर के महीने में बोया जाता है। अतः उपरोक्त समय का वातावरण इस रोग के किये काफी अनुकूल होता है। बीज विगलन, आर्द्रपतन एवं अंगमारी रोग मुख्यतयाः *पीथियम* नामक फफूँदी द्वारा होते हैं। पीथियम द्वारा संक्रमण सदैव मूल के अग्रभाग, मूलिका और मूल रोग पर होता है। संक्रमण जड़ से प्रारम्भ होकर ऊपर की ओर बढ़ता है। विक्षत स्थल पर कवक तन्तुओं का कोमल एवं सफेद रंग का कवक जाल दिखायी पड़ता है। यह रोग *पीथियम* वंश की मुख्तयाः तीन प्रजातियों *पीथियम ऐफेनीडरमेटम, पीथियम डिबेरियेनम* एवं *पीथियम अल्टीमम* एवं राईजेक्टोनिया सोलेनाई, राईजेक्टोनिया *बटाटीकोला* द्वारा होता है। यह दोनों ही प्रकार की फफूँदी लगभग एक ही प्रकार के रोग लक्षण उत्पन्न करते हैं। पीथियम द्वारा संक्रमण सदैव मूल के अग्रभाग, मूलिका और मूल रोम पर होता है। संक्रमण जड़ से प्रारम्भ होकर ऊपर की ओर बढ़ता है। विक्षत स्थल पर कवक तन्तुओं का कोमल एवं सफेद रंग का कवक जाल दिखाई पड़ता है।

चुकन्दर के बीज जमने के उपरान्त जब तक अंकुरित पौधे मृदा की सतह पर स्थापित नहीं हो जाते तब तक वह अत्यन्त रोग ग्राही होते हैं। यदि फफूँदी का संक्रमण बीज के अंकुरण के पूर्व होता है तो बीज विगलित/सड़ जाते हैं। इसे बीज विगलन रोग कहते हैं। यदि पौधे अंकुरण के पश्चात् मृदा से निकलने के पूर्व नष्ट हो जाते हैं तो उसे पूर्व उद्भेध आर्द्रपतन और यदि पौधे मृदा से निकलने के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं तो उसे पश्च उद्भेध आर्द्रपतन कहते हैं। बीज विगलन एवं आर्द्रपतन रोगों द्वारा बहुत अधिक हानि होती है। कभी-कभी अंकुरित पौधों के तनों एवं पत्तियों पर गहरे-भूरे रंग के उन्तकक्षय धब्बे परिलक्षित होते हैं जिसके कारण पौधे सूख जाते हैं। इसे पौध अंगमारी रोग कहते हैं। कभी-कभी पौधे पूर्णतयाः नष्ट नहीं होते हैं और जीवित बने रहते हैं, ऐसे पौधों की वृद्धि रूक जाती है और उनकी उपज स्वस्थ पौधों की अपेक्षाकृत कम हो जाती है। *पीथियम* की प्रजातियाँ विकल्प मृत जीवी एवं मृदोढ़ होती है। रोगजनक परिपोषी की कोशिकाओं में अन्तः कोशिकी होता है और यह दोनों

अलैगिक एवं लैंगिक संरचनायें बनाता है। यह कवक की लैंगिक अवस्था से बने निशिक्तांड (ऊस्पोर) के माध्यम से उत्तरजीवी रहता है। यह अनुकूल परिस्थिति में अंकुरित होकर कवक जाल बनाता है और प्राथमिक संक्रमण उत्पन्न करता है। अलैंगिक अवस्था में बीजाणुधानी बनती है, जो अंकुरित होने तक कवक तन्तु के साथ लगी रहती है एवं जल या वायु द्वारा प्रकीर्णित होकर द्वितीयक संक्रमण हेतु निवेश द्रव्य का काम करती है।

(ब) *राइजेक्टोनिया* बीज विगलन, आर्द्र पतन एवं मूल विगलन रोग

राईजेक्टोनिया फफूँदी द्वारा इस रोग का संक्रमण तने पर मृदा की सतह से आरम्भ होकर नीचे की ओर फैलता है। रोगग्रसित पौधों को अगर उखाड़कर देखा जाए तो विक्षत से उत्पन्न कवक तन्तु पर जैव पदार्थ चिपका रहता है एवं कवक तन्तु भूरे रंग के दिखायी पड़ते हैं।

बीज विगलन एंव अंगमारी वाले सभी कवक मुख्यतयाः मृदोढ़ एवं विकल्पी मृतजीवी होते हैं। जब परपोषी खेतो में नहीं होता है, तब यह मृदा में काफी समय तक जीवित रहते हैं। इनका प्रकीर्णन मृदा के स्थानान्तरण, जल प्रवाह, वायु एवं रोगी पौधों के अवशेषों द्वारा होता है। अनुकूल वातावरण में यह सक्रिय होकर बीज, बीजांकुर तथा पौधों का संक्रमण करते हैं। पौध अंगमारी की व्यापकता मुख्य रूप से बीज बोने के उपरान्त वातावरण पर निर्भर करती है। इन सभी कवकों की संख्या मृदा की ऊपरी सतह पर

राइजेक्टोनिया प्रजाति से ग्रसित चुंकदर

अधिक होती है और अनुकूल वातावरण में तने के निचले भाग में संक्रमण कर ऊत्तकों का एन्जाइम द्वारा विघटन कर देते हैं। अगर वातावरण गर्म और नम होता है तो अंकुरण शीघ्र हो जाता है और पौधे रोगजनकों के संक्रमण से बच जाते हैं। सूखी एवं नम मृदा में अंकुरण एवं निर्गमन धीरे-धीरे होता है जो पौधे को काफी समय तक रोगग्राही बनाये रखते हैं। *राइजेक्टोनिया* की दो प्रजातियाँ *राइजेक्टोनिया सोलेनाई* एवं *राईजेक्टोनिया बटाटीकोला* मुख्य रूप से मूल विगलन रोग उत्पन्न करती हैं।

(1) *राइजेक्टोनिया सोलेनाई*

राइजेक्टोनिया सोलेनाई द्वारा रोग के लक्षण मूल के शीर्ष भाग पर परिलक्षित होते हैं। सर्वप्रथम पौधें की निचली पत्तियों के पर्णवृन्त पर रोग के लक्षण दिखायी पड़ते हैं जो कुछ समय उपरान्त काले पड़ जाते हैं। पर्णवृन्त कमजोर हो जाने के कारण रोगग्रसित पत्तियाँ भूमि पर गिर जाती हैं और धीरे-धीरे सूख जाती हैं। इन दरारों के ऊपर रोगकारक फफूँदी का गहरे बादामी रंग का कवकजाल दिखायी पड़ता है जिस पर अनेक छोटे-छोटे स्कलेरोशिया दिखायी पड़ते है और यदि मूल की अनुप्रस्थ काट को देखा जाये तो आन्तरिक ऊत्तकों का रंग गहरा बादामी दिखायी पड़ता है।

(2) *राइजेक्टोनिया बटाटीकोला*

प्रायः *राइजेक्टोनिया बटाटीकोला* द्वारा उत्पन्न रोग का संक्रमण फसल बोने के लगभग 4 महीने बाद दिखायी पड़ता है। रोग के मुख्य लक्षण मूल के ऊपरी भाग एवं पर्णवृन्त के निचले भाग पर दिखायी पड़ते हैं। रोग के संक्रमण के उपरान्त मूल एवं पर्णवृन्त पर अनगिनत काले रंग के स्केलेरोशिया एवं पिकनीडिया बनते हैं। संक्रमित मूल एवं पर्णवृन्त काले पड़ जाते हैं। इस रोग का प्रसार मुख्यतयाः *स्केलोरोशिया* द्वारा होता है। जब पौधों की जड़े *स्केलेरोशिया* के सम्पर्क में आती हैं तो *स्केलेरोशिया* की सुसुप्तावस्था समाप्त हो जाती है और *स्केलेरोशिया* से बहुत सी जनन नलिकायें निकलती हैं जो पौधों को संक्रमित करती हैं। मृदा का उच्च तापमान (35-40 डिग्री से. ग्रे.) जड़ के संक्रमण के लिये अत्यन्त अनुकूल होता है।

(2) पर्ण चित्ती रोग

चुकन्दर पर लगने वाले मुख्य पर्ण रोग सारिणी-2 में दर्शाए गये हैं।

(अ) *आल्टरनेरिया* पर्ण चित्ती रोग

लक्षण: यह रोग फसल काटने के लगभग दो महीने पूर्व लगता है। इस समय तक जड़ का पूर्ण विकास हो जाता है अतः इस रोग से फसल को कोई विशेष हानि नहीं होती है। यह रोग *आल्टरनेरिया*

की चार प्रजातियों *आल्टरनेरिया आल्टरनेटा, आल्टरनेरिया ब्रेसकी, आल्टरनेरिया अश्विनी* एवं *आल्टरनेरिया दिलकुशियाना* द्वारा होता है। इस रोग का प्रसार रोगजनक के कोनिडिया रोगग्रसित पौधों के अवशेषों के मलवे पर मृदा में जीवित रहते हैं। अनुकूल वातावरण में असंख्य कोनीडिया हवा में उड़कर स्वस्थ पौधों पर पहुँचकर संक्रमण करती हैं। पत्तियों के धब्बों पर पुनः कोनीडिया बनती हैं जिसके द्वारा इस रोग का द्वितीयक संक्रमण होता है।

आल्टरनेरिया पर्ण चित्ती रोग

(1) *आल्टरनेरिया टेनुइस या आल्टरनेटा*

लक्षण: *आल्टरनेरिया आलटरनेटा* द्वारा उत्पन्न धब्बे निचली पत्तियों के किनारे दिखायी पड़ते हैं। धब्बों का व्यास लगभग 0.5 से.मी. होता है परन्तु उनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है। प्रारम्भ में धब्बों का रंग पीला-भूरा और तत्पश्चात भूरा काला होता है। अनुकूल वातावरण में रोग का प्रकोप बढ़ने के कारण धब्बे आपस में मिल जाते हैं जिससे पत्तियों का अधिकांश भाग रोगग्रसित हो जाता है और रोग ग्रसित पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। धब्बों के ऊतकक्षयी भाग में काले रंग का चूर्ण दिखायी पड़ता है जिसमें रोगकारक फफूँदी के असंख्य कोनिडिया होते हैं जिनका प्रकीर्णन वायु द्वारा होता है।

(2) *आल्टरनेटिया ब्रेसकी*

लक्षण- इस प्रजाति से रोगग्रसित पत्तियों पर धब्बे पर्णपटल के किसी भी भाग पर दिखायी पड़ते हैं। यह धब्बे संकेन्द्री गहरे बादामी रंग के वृत्ताकार एवं व्यास में 1.5 से.मी. तक होते हैं बाद में धब्बों का ऊत्तकक्षयी क्षेत्रों के रूप में विस्तार होने से पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। पत्तियों के अतिरिक्त धब्बे पर्णवृत्त पर भी बनते हैं।

(ब) *सर्कोस्पोरा* पर्ण चित्ती रोग

यह रोग *सर्कोस्पोरा बीटीकोला* नामक फफूँदी द्वारा होता है। इस रोग के कारण चुकन्दर की मूल फसल की उपज में लगभग 33 प्रतिशत तथा चीनी की मात्रा में लगभग 44 प्रतिशत तक ह्रास होता है। यह रोग प्रायः मैदानी भागों में मूल/जड़ फसल में फरवरी-मार्च एवं पहाड़ी भागों में बीज फसल में अगस्त-सितम्बर में दिखायी पड़ता है।

इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम निचली पत्तियों पर दिखायी देते हैं। वृत्ताकार धब्बों का व्यास लगभग 3-5 से.मी. तक होता है और इनके किनारे लाल एवं उनका मध्य भाग भूरे रंग का होता है। प्रारम्भ में यह धब्बे एक दूसरे से अलग स्थित होते हैं, परन्तु कुछ समय पश्चात् कई छोटे-छोटे धब्बे आपस में मिलकर बड़े धब्बे बनाते हैं, जिसके कारण पत्तियाँ सूख जाती हैं। पत्तियों के गिर जाने के कारण जड़ फसल की उपज एवं चीनी की मात्रा कम हो जाती है। जब यह रोग बीज फसल पर लगता है तो धब्बे पर्णवृत्त एवं बीज फली पर भी बनते हैं, जिसके कारण बीज का आकार छोटा हो जाता है तथा उनकी अंकुरण क्षमता भी कम हो जाती है।

फसल कटने के उपरान्त कवक पौधों के रोगग्रसित अवशेषों पर मृदा में जीवित रहता है जो कि प्रारम्भिक संक्रमण में सहायक होता है। मृदा में कवक जाल एवं कोनिडिया दोनों ही उपस्थित रहते हैं परन्तु रोगजनक को मृदा में जीवित रहने के लिये कवकजाल की प्रमुख भूमिका होती है। अनुकूल वातावरण में रोगग्रसित पत्तियों के पर्णवृन्त एवं पुष्पवृन्त पर अनेक कोनिडिया बनती हैं जो निचली पत्तियों को संक्रमित करती हैं जिसके कारण 6-10 दिन में धब्बे बन जाते हैं। इन धब्बों पर उपस्थित कोनिडिया प्रायः जल या वायु द्वारा द्वितीयक संक्रमण करती है। इनके अंकुरण हेतु आपेक्षित आर्द्रता 60-70 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए। कोनिडियम की जनन नलिका पर्णरन्ध्रों से होती हुयी परिपोशी में प्रवेश करती हैं और द्वितीयक संक्रमण करती हैं।

(स) चूर्णिल आसिता रोग

यह रोग *ऐरीसाईफी बीटी* नामक कवक के द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप गर्म एवं नम वातावरण में अधिक होता है। इस रोग द्वारा फसल की उपज में 20-25 प्रतिशत हानि होती है। हमारे प्रदेश में इस रोग का प्रकोप प्रायः मई-जून महीने में तब दिखायी पड़ता है जब फसल परिपक्व होकर खोदाई के किये तैयार होती है। अतः इस रोग से फसल को अत्याधिक हानि नहीं होती है।

लक्षण: इस रोग का रोगजनक जड़ एवं बीज फसल दोनों को ही संक्रमित करता है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम जड़ फसल में पत्तियों और बीज फसल में पौधे के सभी बाह्य भागों पर दिखायी पड़ते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि रोगग्रसित पत्तियों पर टेलकम पाउडर छिड़क दिया गया है। इस रोग का प्रकोप निचली पत्तियों से

सर्कोसपोरा पर्ण चित्ती रोग

प्रारम्भ होकर ऊपर की तरफ बढ़ता है। रोग लगने के कुछ समय पश्चात् तक ऊतक हरे बने रहते हैं परन्तु कुछ समय उपरान्त जब रोगजनक पत्तियों की कोशिकाओं से भोज्य पदार्थ लेने लगता है तब धब्बों का रंग भूरा पड़ जाता है। चूर्णी धब्बा रोगजनक के कवक जाल एवं कोनिडिया का बना होता है। यही कोनिडिया वायु द्वारा एक पौधे से दूसरे स्वस्थ पौधों पर पहुँचकर द्वितीयक संक्रमण करते हैं। रोग की अन्तिम अवस्था में चूर्णी धब्बों पर काले रंग की *'पिन हेड'* आकार की संरचनाएं बनती हैं, जिन्हें *कलाईस्टोथिसियम* कहते हैं। यह रोगजनक के लैंगिक जनन द्वारा उत्पन्न होते हैं। इसके बनने के उपरान्त पत्तियाँ पीली पड़ कर सूखने लगती है परन्तु पौधे से अलग नहीं होती हैं।

चूर्णिल आसिता रोग

(2) *स्क्लेरोशियम* मूल विगलन रोग

चुकन्दर का यह सबसे भयानक तथा अत्याधिक क्षति पहुँचाने वाला रोग है जो कि *स्क्लेरोशियम राल्फसाई* नामक कवक द्वारा होता है। अनुकूल वातावरण में इस रोग के कारण जड़ उत्पादन में 14-59 प्रतिशत हानि एवं चीनी की मात्रा में 20 प्रतिशत तक हानि होती है। यह रोग फरवरी-मार्च में दिखायी पड़ता है और ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ती है त्यों-त्यों इस रोग का प्रकोप भी बढ़ता है। इस रोग का प्रकोप 30-35 डिग्री से. ग्रे. तापमान पर अधिक होता है।

लक्षण: इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण जो मृदा के अन्दर मूल पर होते हैं, वह दिखायी नहीं पड़ते हैं परन्तु रोगी पौधों की पत्तियाँ पीली पड़कर मुरझाने लगती हैं। अगर रोगग्रसित मूल को ध्यान से देखा जाए तो उसके ऊपरी भाग में कवक का सफेद जाल दिखायी पड़ता है जो बहुत शीघ्रता से बढ़ता है और कुछ दिनों के उपरान्त सम्पूर्ण मूल सड़ जाती है। रोगग्रसित जड़ों को आसानी से उखाड़ा जा सकता है और इसी पर कवक के कवकजाल पर अनेक *स्क्लेरोशिया* बनते हैं जो तरूण अवस्था में हल्के पीले रंग के होते हैं और बाद में परिपक्व होकर भूरे काले रंग के हो जाते हैं। कभी-कभी स्केलेरोशिया मृदा की सतह पर भी पाये जाते हैं। स्केलेरोशिया प्राथमिक निवेश द्रव्य के प्रमुख स्रोत होते हैं जो अनुकूल वातावरण में अंकुरित होने पर मृदा में कवक तन्तुओं को निर्माण करते हैं। ये कवक तन्तु चुकन्दर की जड़ों में प्रवेश करते हैं और रोगजनक रोगग्रसित ऊतकों में आक्जेलिक अम्ल उत्पन्न करता है, जो जड़ों के विगलन में सहायक होता है। विगलित जड़ों पर द्वितीयक *स्क्लेरोशिया* बनते हैं जिनका द्वितीयक प्रसार जल/सिंचाई, कृषि यन्त्रों एवं पशुओं द्वारा होता है।

स्क्लेरोशियम राल्फसाई ग्रसित फसल

स्केलेराशियम राल्फसाई ग्रसित फसल की विभिन्न अवस्थायें

(3) चुकन्दर के विषाणु रोग

चुकन्दर के विषाणु रोगों में पीत रोग प्रमुख है जो जड़ (मूल) एवं बीज फसल दोनो पर ही लगता है और अत्याधिक हानि पहुँचाता है। यह रोग विषाणु द्वारा होता है।

लक्षण: इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम मध्यावस्था की पत्तियों पर दिखायी पड़ते हैं। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में शिराओं से लगा भाग हरा होता है परन्तु बाद में शिराएं भी पीली पड़ जाती हैं। धीरे-धीरे पीलापन पूरी पत्तियों पर फैल जाता है। रोगग्रसित पौधों की पत्तियाँ मोटी तथा भंगुर हो जाती हैं और हाथ से दबाने पर पत्तियाँ कई टुकड़ों में टूट जाती हैं। रोग की उग्र अवस्था में रोगग्रसित पत्तियों पर उत्तकक्षीय स्थल बनने लगते हैं जो प्रायः अग्र भाग एवं किनारों पर सीमित रहते हैं। बाद में यह शिराओं के बीच में भी फैल जाते हैं और पत्तियों का निष्पत्रण हो जाता है।

ऐसे लक्षण तभी दिखायी पड़ते हैं जब पौधे तरूण अवस्था में संक्रमित होते हैं। रोग के लक्षण नयी-नयी पत्तियों पर कभी नहीं परिलक्षित होते हैं। बीज फसल में इस रोग के लक्षण पौधे के निचले भाग से आरम्भ होकर धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ते हैं। पीत रोगग्रसित फसल स्वस्थ फसल की अपेक्षाकृत दो सप्ताह पहले पक जाती है परन्तु बीज छोटे होते हैं और उनका अंकुरण भी कम होता है।

रोगजनक विषाणु के कण पौधे के फ्लोएम बन्डल में अनगिनत संख्या में पाये जाते हैं। इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी में देखने पर विषाणु के कण लम्बे, टेढ़े-मेढ़े और शताकाकार दिखायी पड़ते हैं। विषाणु का तापीय मृत्यु बिन्दु 50-55 डिग्री से.ग्रे. और तनुता अन्तिम बिन्दु 1:10000 से नीचे है। प्रकृति में विषाणु का संचारण रोगी पौधे से स्वस्थ पौधों पर एफिड द्वारा होता है। इस रोग के फैलाने में *माइजस परसिकी* एवं *एफिस फेबी* मुख्य रोग वाहक है। यदि विषाणु का प्रकोप फसल के आरम्भ में होता है तो उपज 60 प्रतिशत तक घट जाती है और यदि विषाणु का प्रकोप फसल के अन्त में होता है तो 10-20 प्रतिशत उपज कम हो जाती है। अधिक रोगग्रसित फसल में सुक्रोज की मात्रा 1.2 प्रतिशत कम हो जाती है।

(4) मूल जड़ ग्रन्थि सूत्रकृमि रोग

चुकन्दर का यह रोग जड़ एवं बीज फसल दोनों को ग्रसित करता है। जड़ फसल में इसका प्रकोप पंजाब, हरियाणा, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में फरवरी से मई तक एवं बीज फसल पर इसका प्रकोप जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में जून से अगस्त तक दिखायी पड़ता है। जब यह रोग जड़ फसल पर लगता है तब उपज एवं रस की मात्रा एवं गुणवत्ता की कमी हो जाती है। जब यह रोग बीज फसल में लगता है तब बीज की उपज कम हो जाती है और बीज की अंकुरण क्षमता घट जाती है।

मूल जड़ ग्रन्थि सूत्रकृमि ग्रसित चुकंदर

मूल जड़ ग्रन्थि सूत्रकृमि चुकन्दर के मूल रोम को नष्ट कर देता है। यह मूल ग्रन्थि उत्पन्न करता है जिसके कारण पौधे की पोषक तत्वों की प्राप्ति की क्षमता घट जाती है एवं यह मूल को अन्य रोगजनकों के प्रति रोगग्राही बना देता है।

लक्षणः इस रोग से ग्रसित पौधों की वृद्धि रूक जाती है एवं जड़ों पर पिटिकायें बन जाती हैं। यह रोग *मेलाईडोगाइन जवानिका* एवं *मेलाईडोगाइन इनकागनीटा* सूत्रकृमि द्वारा होता है। *मेलाइडोगाईन जवानिका* की पिटिकायें/गाँठे पार्श्वीय जड़ों पर अधिक बनती हैं जबकि *मेलाइडोगाइन इनकागनेटा* का संक्रमण मुख्य जड़/मूल पर अधिक होता है। इन गाँठों को परिपोषी से आसानी से अलग नहीं किया जा सकता है। ये गाँठें गोल या उपगोलाकार होती है तथा इनका आकार रोगजनक सूत्रकृमि की प्रजाति पर निर्भर करता है। जड़ों के अनेक भाग में संक्रमण होने के कारण वे मुद्गराकार हो जाती हैं। रोग्रगस्त जड़ों की मोटाई कम हो जाती है परन्तु विशेषकर निचले भाग की लम्बाई बढ़ जाती है। रोगग्रसित मूल में रेशेदार पार्श्व जड़ों की अधिकता होती है। मूल ग्रन्थि सूत्रकृमि के आक्रमण के कारण पौधों की मृत्यु नहीं होती है परन्तु गाँठों पर अनेक रोगजनक एवं मृतजीवी कवकों तथा जीवाणुओं के आक्रमण से सम्पूर्ण जड़ नष्ट हो जाती है। पिटिकाओं/गाँठों की वृद्धि के लिए अनुकूल तापमान 25-28 डिग्री से.ग्रे. है। रोगग्रसित जड़ों की पिटिकाओं/गाँठों में भूमि के अन्दर मादा सूत्रकृमि एक फसल से दूसरी फसल तक जीवित रहकर प्राथमिक निवेश द्रव्य का कार्य करती है। प्रौढ़ मादा सूत्रकृमि में मुख्य रूप से अण्डे ही दिखायी पड़ते हैं। अण्डों से पुनः डिंभक पैदा होते हैं जो ऊत्तकों का संक्रमण करते हैं।

(5) बोरॉन की न्यूनता से उत्पन्न रोग *(हार्ट राट)*

चुकन्दर में पोषक तत्वों की न्यूनता के कारण लगभग 9 प्रकार के रोग लगते हैं जिसमें बोरान की न्यूनता/कमी से उत्पन्न *'हार्ट राट'* प्रमुख है। बोरान तत्व की कमी से मूल जड़ में अन्तः विगलन के लक्षण दिखायी पड़ते हैं। यह रोग खेत में जगह-जगह दिखायी पड़ता है। इस रोग का प्रकोप उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा तथा जम्मू कश्मीर में देखा गया है परन्तु इस रोग का कोई विशेष महत्व नहीं है। मैदानी क्षेत्रों में यह रोग मार्च-अप्रैल में दिखायी पड़ता है।

लक्षणः इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पौधे के भूमि के ऊपरी स्थित भाग में दिखायी पड़ते हैं। रोगग्रसित पौधों का वर्धन ऊतक एवं पत्तियाँ मर जाती हैं तथा संक्रमित पौधे भूमि पर गिर जाते हैं।

बोरान न्यूनता ग्रसित चुकन्दर

नयी पत्तियाँ छोटी हो जाती है और पुरानी पत्तियों के पर्णवृन्त लटक जाते हैं। नयी पत्तियाँ मुड़ी हुई और उनके किनारे काले पड़ जाते हैं तथा बाद में झुलसकर नष्ट हो जाती हैं। पुरानी पत्तियों के पर्णवृन्तों के ऊपरी भाग में अनुप्रस्थ दरारें पड़ जाती हैं जो कि सीढ़ीनुमा दिखायी पड़ती हैं।

रोग की उग्र अवस्था में पौधे की सभी पत्तियाँ झुलसकर गिर जाती हैं जिसके कारण मूल की शिखा पर उपस्थित कक्षीय कलिकाओं का अंकुरण होने लगता है और मूल के ऊपरी भाग में अनेकों छोटी-छोटी पत्तियाँ निकल आती हैं। इस रोग में चुकन्दर की गूदेदार मूल के ऊपरी भाग और पर्णवृन्तों के निचले भाग में कई कवकों के आक्रमण के कारण सड़ने लगती हैं। सड़न धीरे-धीरे मूल के निचले भाग में फैलती है। संवहन वलयों के बीच के मृदूतक ऊत्तकों के ऊत्तकक्षय होने के कारण इनका रंग भूरा पड़ जाता है। रोग की अन्तिम अवस्था में एधा वलयों का भी विरूपण हो जाता है और गुहा के ऊतकों में सड़न प्रारम्भ हो जाती है, जो प्रायः द्वितीयक रोग जनक के आक्रमण के कारण होती है। इस रोग के लक्षण बीज फसल पर भी दिखायी पड़ते हैं और कभी-कभी बोल्टर्स (वह पौधे जिनमें जड़ फसल में ही पुष्पक्रम निकल आता है) ऐसे पौधों की वांछित वृद्धि नहीं होती है। मुख्य पुष्पीय वृन्त छोटा हो जाता है और विभज्योतकी ऊतक नष्ट हो जाते हैं कुछ समय पश्चात् पार्श्व शाखाओं के भी विभज्योत की ऊतक नष्ट हो जाते हैं जिसके कारण वह सूखकर काली पड़ जाती हैं। ग्रसित पौधों में बीज छोटे बनते हैं तथा उनका अंकुरण भी कम हो जाता है।

रोगजनक

यह रोग बोरान तत्वों की न्यूनता के कारण होता है तथा खेत में जगह-जगह दिखायी पड़ता है। यह रोग ऐसी मृदा में भी पाया जाता है जहाँ पर कैल्शियम अपेक्षाकृत अधिक होता है एवं अम्लीय मृदा की अपेक्षा क्षारीय मृदा में अधिक होता है। इसके अतिरिक्त ऐसी मृदा में जिसमें जैव/कार्बनिक पदार्थ की न्यूनता होती है, उसमें भी इस रोग का प्रकोप अधिक होता है।

नियन्त्रण

(1) नर्सरी/पौधशाला में पानी निकलने का उचित निकास होना चाहिए तथा सिंचाई आवश्कतानुसार ही करना चाहिए।

(2) रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों को खेत में एकत्रित करके जला देना चाहिए जिससे कि कवक के निवेश द्रव्य में कमी आ जाती है।

(3) बीज बोने के लिए *मल्टीजर्म* बीज के स्थान पर *मोनोजर्म* बीज का प्रयोग करना चाहिए।

(4) बीज विगलन, आर्द्र पतन रोगों के लिए मृदा का रसायनिक उपचार फार्मलीन (400 लीटर/हे.) की दर से कर लेना चाहिए। फार्मलीन द्वारा उपचार करने के उपरान्त तथा बीज बोने के पहले मृदा में उसकी गन्ध नहीं आनी चाहिए। रिडोमिल नामक फफूँदीनाशक का 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने से इन रोगों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

(5) बीज को दो कवकनाशी के मिश्रण जैसे विटावेक्सथिरेम अथवा बेविस्टिनथिरेम (2 ग्रा./कि.ग्रा.) की दर से उपचारित करके बोने से आर्द्रपतन तथा बीज विगलन का प्रकोप कम हो जाता है।

(6) रोगग्रसित खेत में कम से कम 2-3 वर्ष का उचित फसल क्रम अपनाना चाहिए। इसके लिये मक्का, धान, बाजरा और ज्वार इत्यादि बोना चाहिए जिससे कि कवकजनित एवं सूत्रकृमि जड़ ग्रन्थि रोगों का प्रकोप कम हो जाता है।

(7) चूर्णिल आसिता, *सर्कोस्पोरा* पर्ण चित्ती रोग एवं *आल्टरनेरिया* पर्ण चित्ती, स्केलेरोशियम जड़ विगलन रोगग्रसित क्षेत्रों में रोगरोधी प्रजातियाँ जैसे मेरिबो रजिस्टापोली, मेरिबो मेगनापोली, रोमोस्काय-06, एल.एस.-6, एल.एस.-7, आई.आई.एस.आर.-2 एवं आई.आई.एस.आर. काम्प-1 तथा शंकर प्रजातियाँ जैसे सेन्डरीना, स्परेन्जा, केलिस्टा, 4 ए.ई. 0754, 7 के. 01 तथा 6 के. 73 आदि ही बोना चाहिए।

(8) जड़ ग्रन्थि सूत्रकृमि रोग के नियन्त्रण हेतु खेत की ग्रीष्म ऋतु में कई बार जुताई करना चाहिए ऐसा करने से मृदा में उपस्थित सूत्रकृमि के अण्डे एवं डिंभक मर जाते हैं। खेत में अधिक समय तक पानी भरा रहने से भी इस रोग का प्रकोप काफी सीमा तक कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त खेत में कार्बनिक पदार्थों के उपयोग से भी इस रोग की तीव्रता कम हो जाती है। नीम, की खली (25 कुन्टल/हे.) की दर से फसल बोने के 3 सप्ताह पूर्व डालने से भी इस रोग पर

सारिणी-1 बीज के रोगजनक कवक

रोग	रोगजनक कवक
पर्ण चित्ती रोग	अल्टरनेरिया प्रजाति, सरकोस्पोरा बीटीकोला, फोमा बीटीकोला
बीजाकुर रोग एवं जड़ विगलन	फ्यूजेरियम प्रजाति
क्राउन एवं भण्डारण विगलन	राइजोपस प्रजाति

सारिणी-2 बीजांकुर रोग एवं उनके रोगजनक कवक

रोग प्रजाति	रोगजनक कवक
पीथियम प्रजाति	*पीथियम ऐफेनीडरमेटम, पीथियम अल्टीमम, पीथियम वटलेराई, पीथियम डिबेरियेनम, पीथियम इरेगुलेर, पीथियम ओलीगेन्ड्रम, पीथियम स्पाईनोसम, पीथियम स्पलेन्डन्स*
राईजेक्टोनिया प्रजाति	*राईजेक्टोनिया सोलेनाई, राईजेक्टोनिया बटाटीकोला*
फ्यूजेरियम प्रजाति	*फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम, फ्यूजेरियम मोनेलीफारमी, फ्यूजेरियम ऐवीनेसियम, फ्यूजेरियम क्लेमाईडोस्पोरम*
फोमा प्रजाति	*फोमा बीटी*
अल्टरनेरिया प्रजाति	*अल्टरनेरिया आल्टरनेटा, आल्टरनेरिया ब्रेसकी*
सिकिन्ड्रोक्लेडियम प्रजाति	*सिलिन्ड्रोक्लेडियम बीटी*

नियन्त्रण पाया जा सकता है। रोगग्रसित क्षेत्रों में रोगीरोधी संकर प्रजातियाँ जैसे 7 के. 01 तथा 4 ए.ई. 0754 ही बोना चाहिए।

(9) *'हार्ट राट'* रोग के नियन्त्रण हेतु जिस मृदा में बोरान की कमी है वहाँ चुकन्दर बोने के पहले मृदा मे बोरान (20-30 कि.ग्रा./हे.) की दर से फसल बोने से पहले मिलाने से इसका प्रकोप कम हो जाता है इसके अतिरिक्त पत्तियों में बोरान की न्यूनता के लक्षण दिखायी पड़ने पर बोरैक्स का 1000 पी.पी.एम. घोल का छिड़काव करने से इस रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।

(10) नाइट्रोजन उर्वरक को उचित मात्रा में प्रयोग करने से *स्केलेरोशियम* जड़ विगलन रोग का नियन्त्रण किया जा सकता है क्योंकि नाइट्रोजन उर्वरक मृदा में ऐसे जीवाणुओं की संख्या कम कर देता है जो रोगजनक के संक्रमण को कम कर देते हैं।

(11) अगेती बुवाई करने से चूर्णिल आसिता रोग का प्रकोप कम होता है। गधक (200 मेश) का भुरकाव (15-20 कि.ग्रा./हे.) की दर से रोग के लक्षण दिखायी पड़ते ही 2-3 बार 10-15 दिन के अन्तराल पर करने से इस रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। कवकनाशी रसायनों जैसे केलिक्सिन अथवा

सारिणी-3 पर्ण चित्ती रोग एवं रोगजनक कवक

रोग प्रजाति	रोगजनक कवक
सरकोस्पोरा पर्ण चित्ती	*सरकोस्पोरा बीटीकोला*
पाउडरी मिलडूय	*ईरीसाइफी बीटी*
आल्टरनेरिया ब्लाईट	*आल्टरनेरिया आल्टरनेटा, आल्टरनेरिया ब्रेसकी, आल्टरनेरिया अश्विनाई, आल्टरनेरिया दिलकुशियाना*
रेमूलेरिया पर्ण चित्ती	*रेमूलेरिया बीटी*
कोलिटोट्राईकम पर्ण चित्ती	*कोलिटोट्राईकम केपसकाई*
फोमा पर्ण चित्ती	*फोमा बीटी*
शोकाणु पर्ण चित्ती	*स्यूडोमोनास ऐपटाटा*
लीफ एवं क्राउन गाल	*एग्रोबेक्टीरियम टयूमीफेसियन्स*

सरिणी-4 गौण रोग

रोग	रोगजनक कारक
जड़ ग्रन्थि सूत्रकृमि रोग	*मेलाईडोगाइन जेवेनिका, मेलाईडोगाइन इनकागनेटा*
निमेटोड + कवक काम्पलेक्स	*मेलाईडोगाईन प्रजाति + पीथियम + राईजेक्टोनिया*
हार्ट विगलन रोग	बोरान की न्यूनता के कारण

केराथेन (2 मि.ली./ली.) की मात्रा से 2-3 बार 10-15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करने से भी इस रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।

(12) पर्ण चित्ती रोगों के लक्षण प्रकट होते ही बेविस्टिन या मेनेकोजेव (2-5 कि.ग्रा./हे.) की दर से 2-3 बार 10-15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करने से इनका प्रभाव काफी सीमा तक कम हो जाता है।

(13) *स्केलेरोशियम* जड़ विगलन रोग के लक्षण प्रकट होने पर विटावेक्स (2.5 कि.ग्रा./हे.) की दर से 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तथा उसके उपरान्त 2-3 बार जड़ों के आस-पास छिड़काव करने से इस रोग की तीव्रता कम हो जाती है।

(14) चुकन्दर का पीत रोग एफिड द्वारा फैलता है। अतः इसके नियंत्रण हेतु इमीडाक्लोप्रिड 3 मि.ली./10 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करने से इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

(15) बीजाकुर रोगों के नियंत्रण के लिये बीज बोने से पहले *ट्राईकोडर्मा* जैव नियंत्रण को गोबर की खाद में मिश्रित कर के भूमि में मिलाने से इनका प्रकोप कम हो जाता है।

चुकन्दर के रोगों की यदि उचित समय पर पहचान करके उपरोक्त नियंत्रण विधियों का समय पर अमल किया जाए तो फसल की उपज एवं चीनी की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

गन्ने में पादप वृद्धि नियमक तथा पोषक तत्वों के साथ इनके क्रमिक प्रयोग का अंकुरण, कार्यकीय तथा उत्पादकता लक्षणों पर प्रभाव

राधा जैन, अंशु सिंह, सी.पी. सिंह, एस.पी. सिंह एवं अमरेश चन्द्रा
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सारांश

गन्ने की पूर्ण वृद्धि अवस्था में, विभिन्न पादप वृद्धि नियमकों तथा पोषक तत्वों के साथ इनके क्रमिक प्रयोग से गन्ने में विकास, कार्यकीय तथा उत्पादकता लक्षणों पर प्रभाव हेतु अध्ययन के लिए गन्ने की प्रजाति कोलख 94184 के तीन आंख युक्त टुकड़ों को वृद्धि कारक हार्मोन ईथरल (100 पीपीएम) तथा पोटैशियम क्लोराइड (0.2 प्रतिशत) घोल में 24 घण्टे उपचारित के साथ अनुपचारित टुकड़ों को बसन्तकाल, 2017-2018 में भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ प्रक्षेत्र पर बोया गया। बुआई के 30, 40 एवं 60 दिन बाद अंकुरण के आंकड़े दर्ज किए गए। बुआई के 5, 10, एवं 15 दिन बाद *कालिका* ऊतकों में *एसएआई* गतिविधि, *रिड्युसिंग शुगर, नान-रिड्युसिंग शुगर* एवं कुल *शुगर* की मात्रा का निर्धारण किया गया। बाद में विभिन्न वृद्धि नियमकों और वृद्धि नियमकों पोषक तत्वों के उपचारों (21 उपचार) का तीनों सेटों में वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर पर्णीय छिड़काव किया गया। बुआई के लगभग 60 दिन बाद ईथरल और ईथरल पोषक तत्वों के मिश्रण का कंट्रोल, ईथरल तथा पोटैशियम क्लोराइड उपचारित सेटों पर पर्णीय छिड़काव किया गया। पर्णीय छिड़काव के 25 दिन बाद प्रारम्भिक पौधा संख्या, पौधों के विभिन्न भागों का ताजा एवं शुष्क भार, क्लोरोफिल की मात्रा तथा नाइट्रेट रिड्क्टेज गतिविधि का निर्धारण किया गया। बुआई के लगभग 110 दिन बाद जिब्रेलिक अम्ल और जिब्रेलिक अम्ल तथा पोषक तत्वों के मिश्रण का *कंट्रोल,* ईथरल तथा पोटेशियम क्लोराइड उपचारित सेटों पर पर्णीय छिड़काव किया गया। पर्णीय छिड़काव के 25 दिन बाद पौधों की कुल संख्या, पत्तियों की संख्या तथा क्षेत्रफल, पौधों की लम्बाई, पौधों के विभिन्न भागों का ताजा एवं शुष्क भार, क्लोरोफिल की मात्रा तथा *नाइट्रेट रिड्क्टेज* गतिविधि का निर्धारण किया गया। बुआई के लगभग 175 दिन बाद काइटेनिन और काइटेनिन पोषक तत्वों के मिश्रण का *कंट्रोल* तथा ईथरल दोनों ही उपचारित सेटों पर पर्णीय छिड़काव किया गया। नवम्बर 2017 से फरवरी 2018 तक के महीनों में गन्ने की पेराई के बाद जूस गुणवत्ता से संबन्धित गुणों जैसे कि *ब्रिक्स, सुक्रोज* प्रतिशत, जूस शुद्धता, *सीसीएस* प्रतिशत आदि आंकड़े दर्ज किए गए। फसल की कटाई पर उपज से संबन्धित आंकड़े भी दर्ज किए गए। प्राप्त नतीजों से संकेत मिला है कि ईथरल तथा पोटैशियम क्लोराइड में भिगोए गए उपचारों में नियंत्रण की अपेक्षा बुआई के 30, 40 और 60 दिन बाद अंकुरण में क्रमशः 182 प्रतिशत एवं 106 प्रतिशत, 74 प्रतिशत एवं 45 प्रतिशत तथा 44 प्रतिशत एवं 36 प्रतिशत वृद्धि पाई गई। उपचारित अंकुरित कलिकाओं में *एसएआई* गतिविधि, *रिड्युसिंग शुगर* एवं कुल *शुगर* की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक पाई गई। ईथरल के पर्णीय छिड़काव से प्ररोहों की संख्या भी अधिक पाई गई। उपचारित सेट में जिब्रेलिक अम्ल और जिब्रेलिक अम्ल + पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव से पौधों के विभिन्न भागों के ताजा एवं शुष्क भार में वृद्धि पाई गई। ईथरल तथा ईथरल+पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव करने से क्लोरोफिल की मात्रा, *एनआर* गतिविधियों एवं प्ररोहों की संख्या में वृद्धि हुई। साथ ही पौधों की लंबाई, पत्तियों की संख्या तथा क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी हुई। अधिकतर उपचारों में पेराई योग्य कुल गन्नों की संख्या *(एनएमसी/प्लाट)* में वृद्धि पाई गई। गन्ने की अधिकतम उपज टी 5 (111.6 टन/हे.) टी5 के लगभग बराबर टी 14 की (111.1 टन/हे.) रहने के बाद टी 8 की (107.0 टन/हे.), टी 12 की (106.4 टन/हे.) तथा टी 11 की (105.0 टन/हे.) रही। न्यूनतम उपज टी1 में (83.2 टन/हे.) पाई गई। गन्ने की अधिकतम लंबाई एवं मोटाई क्रमशः टी 11 में (275.3 से.मी.) तथा टी 8 में (2.14 से.मी.) पाई गई। जूस में *सुक्रोज* एवं *सीसीएस* प्रतिशत तथा *ब्रिक्स* अधिकतम उपचार टी 11 में पाया गया। परिणामों से सुझाव मिलता है कि फसल की पूर्ण अवधि में पादप वृद्धि नियमकों तथा पोषक तत्वों के साथ इनके क्रमिक प्रयोग करने पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तावना

सामान्यतः पादप जगत का प्रत्येक पौधा अपनी प्रवृत्ति के अनुसार प्रकृति प्रदत्त ससाधनों से जल, वायु, प्रकाश तथा मृदा से विभिन्न तत्वों को ग्रहण करके स्वतः अंकुरित होकर वृद्धि करते हुए फल-फूल कर अपना जीवन चक्र पूरा करता है। इन्हीं पौधों में जिस प्रजाति के पौधे मनुष्य की आवश्यकतानुसार आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण होते हैं उन पौधों को फसल के रूप में उगाया जाता

है और प्रयास किया जाता है कि प्रति इकाई अधिक से अधिक उत्पादन लिया जाय। इसी लालसा ने पौधों तथा इनकी वृद्धि के कारकों के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया और भा.ग.अनु.सं., लखनऊ में ''गन्ने में पादप वृद्धि नियमकों तथा पोषक तत्वों के साथ इनके क्रमिक प्रयोग का अंकुरण, कार्यकीय तथा उत्पादकता लक्षणों पर प्रभाव'' हेतु अध्ययन किया गया। इस प्रयोग के सरलीकृत द्वारा प्रयोग में प्रयुक्त सामग्री, विधि एवं निष्कर्ष को सामान्यजन तक पहुँचने हेतु इस लेख का सृजन किया गया है।

विधि एवं सामग्री

पादप वृद्धि नियमकों तथा पोषक तत्वों के साथ इनके क्रमिक प्रयोग से गन्ने में वृद्धि, कार्यकीय तथा उत्पादकता लक्षणों पर प्रभाव हेतु अध्ययन के लिए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के प्रक्षेत्र पर एक परीक्षण किया गया। फरवरी 2017 में गन्ने की प्रजाति कोलख 94184 के तीन आँखयुक्त टुकड़ों को वृद्धिकारक हर्मोन ईथरल (100 पीपीएम) तथा पोषक तत्व पोटैशियम क्लोराइड (0.2%) घोल में 24 घण्टे उपचारित के साथ अनुपचारित टुकड़ों को *रैन्डोमाइज्ड ब्लॉक डिजाइन* के तहत तीन *रैप्लीकेशन्स* में बोया गया। उपचारों का विवरण तालिका 1 में दिया गया है। बुआई के 30, 40 एवं 60 दिन बाद कलिकाओं के अंकुरण के आंकड़े दर्ज किए गए। बुआई के 5, 10, एवं 15 दिन बाद कलिका ऊतकों में *एसएआई* गतिविधि, *रिड्युसिंग शुगर, नान-रिड्युसिंग शुगर* एवं कुल *शुगर* की मात्रा का निर्धारण किया गया। बुआई के लगभग 60 दिन बाद ईथरल और ईथरल+पोषक तत्वों के मिश्रण का नियन्त्रण, ईथरल तथा पोटैशियम क्लोराइड उपचारित सेटों पर पर्णीय छिड़काव किया गया। पर्णीय छिड़काव के 25 दिन बाद पौधों की कुल संख्या, पत्तियों की संख्या, क्षेत्रफल तथा पौधों की ऊँचाई, पौधों के विभिन्न भागों का ताजा एवं शुष्क भार, क्लोरोफिल की मात्रा तथा *नाइट्रेट रिड़क्टेज* गतिविधि का निर्धारण किया गया। बुआई के लगभग 110 दिन बाद जिब्रेलिक अम्ल और जिब्रेलिक अम्ल पोषक तत्वों के मिश्रण का *कंट्रोल,* ईथरल तथा पोटैशियम क्लोराइड उपचारित सेटों पर पर्णीय छिड़काव किया गया। पर्णीय छिड़काव के 25 दिन बाद पौधों की कुल संख्या, पत्तियों की संख्या तथा क्षेत्रफल, पौधों की ऊँचाई, पौधों के विभिन्न भागों का ताजा एवं शुष्क भार, क्लोरोफिल की मात्रा

तालिका 1: उपचारों एवं अनुप्रयोग के तरीकों का विवरण

	उपचारों का विवरण	उपचार
सेट I: अनुपचारित नियंत्रण (बिना भिगोये सेट)	टी1– बिना छिड़काव	नियंत्रण
	टी2– बुआई के 60 दिन बाद ईथरल (100 पीपीएम) का छिड़काव	छिड़काव 1
	टी3– बुआई के 60 दिन बाद ईथरल (100 पीपीएम) + जिंक सल्फेट (0.5%) का छिड़काव	छिड़काव 2
	टी4– बुआई के 110 दिन बाद छिड़काव 1 + जिब्रेलिक अम्ल (50 पीपीएम) का छिड़काव	छिड़काव 3
	टी5– बुआई के 110 दिन बाद छिड़काव 2 + जिब्रेलिक अम्ल (50 पीपीएम) + कैल्शियम क्लोराइड (1.0%) का छिड़काव	छिड़काव 4
	टी6– बुआई के 175 दिन बाद छिड़काव 1 + छिड़काव 3 + काइटेनिन (100 पीपीएम) का छिड़काव	छिड़काव 5
	टी7– बुआई के 175 दिन बाद छिड़काव 2 + छिड़काव 4 + काइटेनिन (100 पीपीएम) + मैगनीज क्लोराइड (0.1%) का छिड़काव	छिड़काव 6
सेट II: अनुपचारित नियंत्रण (बिना भिगोये सेट)	टी1– बिना छिड़काव	नियंत्रण
	टी2– बुआई के 60 दिन बाद ईथरल (100 पीपीएम) का छिड़काव	छिड़काव 1
	टी3– बुआई के 60 दिन बाद ईथरल (100 पीपीएम) + जिंक सल्फेट (0.5%) का छिड़काव	छिड़काव 2
	टी4– बुआई के 110 दिन बाद छिड़काव 1+ जिब्रेलिक अम्ल (50 पीपीएम) का छिड़काव	छिड़काव 3
	टी5– बुआई के 110 दिन बाद छिड़काव 2 + जिब्रेलिक अम्ल (50 पीपीएम) + कैल्शियम क्लोराइड (1.0%) का छिड़काव	छिड़काव 4
	टी6– बुआई के 175 दिन बाद छिड़काव 1 + छिड़काव 3 + काइटेनिन (100 पीपीएम) का छिड़काव	छिड़काव 5
	टी7– बुआई के 175 दिन बाद छिड़काव 2 + छिड़काव 4 + काइटेनिन (100 पीपीएम) + मैगनीज क्लोराइड (0.1%) का छिड़काव	छिड़काव 6
सेट III: पोटैशियम क्लोराइड उपचारित	टी1– बिना छिड़काव	नियंत्रण
	टी2– बुआई के 60 दिन बाद ईथरल (100 पीपीएम) का छिड़काव	छिड़काव 1
	टी3– बुआई के 60 दिन बाद ईथरल (100 पीपीएम) + जिंक सल्फेट (0.5%) का छिड़काव	छिड़काव 2
	टी4– बुआई के 110 दिन बाद छिड़काव 1 + जिब्रेलिक अम्ल (50 पीपीएम) का छिड़काव	छिड़काव 3
	टी5– बुआई के 110 दिन बाद छिड़काव 2 + जिब्रेलिक अम्ल (50 पीपीएम) + कैल्शियम क्लोराइड (1.0%) का छिड़काव	छिड़काव 4
	टी7– बुआई के 175 दिन बाद छिड़काव 2 + छिड़काव 4 + काइटेनिन (100 पीपीएम) + मैगनीज क्लोराइड (0.1%) का छिड़काव	छिड़काव 6

तथा *नाइट्रेट रिड़क्टेज* गतिविधि का निर्धारण किया गया। बुआई के लगभग 175 दिन बाद *काइटेनिन* और *काइटेनिन* पोषक तत्वों के मिश्रण का नियंत्रण तथा ईथरल दोनों ही उपचारित सेटों पर पर्णीय छिड़काव किया गया। नवम्बर 2017 से फरवरी 2018 तक प्रत्येक माह में गन्ने की पिराई के बाद जूस गुणवत्ता से संबन्धित गुणों जैसे कि *ब्रिक्स, सुक्रोज* प्रतिशत, जूस शुद्धता, *सीसीएस* प्रतिशत आदि आंकड़े दर्ज किए गए। फसल की कटाई पर उपज से संबन्धित आंकड़े भी दर्ज किए गए।

परिणाम

प्राप्त परिणाम से पाया गया कि ईथरल एवं पोटैशियम क्लोराइड में भिगोए गए सेटों में कलिकाओं के जमाव में शीघ्रता एवं वृद्धि पाई गई। ईथरल तथा पोटैशियम क्लोराइड में भिगोए गए उपचारों में नियंत्रण की अपेक्षा बुआई के 30, 40 और 60 दिन बाद अंकुरण में क्रमशः 182 प्रतिशत एवं 106 प्रतिशत, 74 प्रतिशत एवं 45 प्रतिशत तथा 44 प्रतिशत एवं 36 प्रतिशत वृद्धि पाई गई। ईथरल तथा पोटैशियम क्लोराइड के विलयन में उपचारित सेटों की अंकुरित कलिकाओं में *एसएआई* गतिविधि, *रिड्युसिंग शुगर* एवं कुल *शुगर* की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक पाई गई। *कन्ट्रोल* की अपेक्षा ईथरल के पर्णीय छिड़काव से प्ररोहों की संख्या अधिक पाई गई। ईथरल एवं पोटैशियम क्लोराइड से उपचारित सेट में जिब्रेलिक अम्ल और जिब्रेलिक अम्ल पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव से पौधों के विभिन्न भागों के ताजा एवं शुष्क भार में वृद्धि पाई गई। नियंत्रण ईथरल एवं पोटैशियम क्लोराइड सेटों में ईथरल तथा ईथरल+पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव करने से क्लोरोफिल ए, बी तथा कुल क्लोरोफिल की मात्रा तथा एनआर गतिविधियों में वृद्धि हुई। कंट्रोल की अपेक्षा जिब्रेलिक अम्ल और जिब्रेलिक अम्ल पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव से प्ररोहों की संख्या में वृद्धि हुई। *प्री*-ईथरल उपचारित तथा पोटैशियम क्लोराइड उपचारित सेट में जिब्रेलिक अम्ल और जिब्रेलिक अम्ल पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव से पौधों की लम्बाई, पत्तियों की संख्या तथा क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी हुई। ईथरल तथा पोटैशियम क्लोराइड से उपचारित सेट में ईथरल-पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव करने से पौधों के विभिन्न भागों के ताजा एवं शुष्क भार में वृद्धि पाई गई। नियंत्रण ईथरल एवं पोटैशियम क्लोराइड सेटों में जिब्रेलिक अम्ल और जिब्रेलिक अम्ल पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव से *क्लोरोफिल ए, बी* तथा कुल *क्लोरोफिल* की मात्रा तथा *एनआर* गतिविधियों में वृद्धि हुई। अधिकतर उपचारों में पिराई योग्य कुल गन्नों की संख्या *(एनएमसी/प्लाट)* में वृद्धि पाई गई। अधिकतम उत्पादन टी 11 में पाया गया जो कि लगभग टी 5 के बराबर रहा और उसके बाद टी 13, टी 14 के बाद टी 18 रहा। गन्ने की अधिकतम उपज टी 5 (111.6 टन/हे.) के लगभग बराबर टी 14 की (111.1 टन/हे) रहने के बाद टी 8 की (107.0 टन/हे.), टी 12 की (106.4 टन/हे.) तथा टी 11 की (105.0 टन/हे.) रही। न्यूनतम उपज (83.2 टन/हे.) टी 1 में पाई गई। गन्ने की अधिकतम लम्बाई एवं मोटाई क्रमशः टी 11 में 275.3 सें.मी. तथा टी 8 में 2.14 सें.मी. पाई गई। उपचार टी 11 के जूस में *सुक्रोज* एवं *सीसीएस* प्रतिशत तथा ब्रिक्स अधिकतम पाया गया जबकि टी 17 के बाद टी 15 में न्यूनतम *रिड्युसिग शुगर* पायी गयी। प्राप्त परिणामों से पाया गया कि फसल की पूर्ण अवधि में पादप वृद्धि नियमक तथा पोषक तत्वों के साथ इनके क्रमिक प्रयोग करने पर गन्ने की उत्पादकता एवं शुगर मात्रा पर वृद्धि हुई।

आभारः इस अनुसंधान को संचालित करने के लिए विज्ञान एवं तकनीकी परिषद, उत्तर प्रदेश *(सीएसटी, यूपी)* द्वारा वित्त पोषण हेतु कृतज्ञतापूर्ण आभार।

आज की सबसे पहली और सबसे बड़ी समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़े और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें। हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्रवाइयां अपनी-अपनी भाषओं में चलानी चाहिए तथा हमारी राष्ट्रीय कार्रवाइयों की भाषा हिन्दी होनी चाहिए। जब तब हमारे स्कूल और कॉलेज विभिन्न देशी भाषाओं में शिक्षा देना आरंभ नहीं करते, तब तक हमें आराम लेने का अधिकार नहीं हैं।

-राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

जड़ों के आस–पास के मूल परिवेश मृदा में पेड़ी गन्ना की उत्पादकता की महत्ता

राम सिंह, रवि कान्त पाण्डेय, मंजू, राजीव कुमार, आर.एस. चौरसिया, अनम एवं पुष्पा सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पेड़ी गन्ने का मतलब है कि पहले वर्ष में जो गन्ने की फसल बोई जाती है उसे काटने के बाद उसके बचे हुए ठूँठों से नये किल्ले निकल कर चीनी लायक गन्ने दोबारा बन जाते हैं। पेड़ी गन्ने की फसल लेने से काफी आर्थिक बचत हो जाती है, जैसे खेत की जुताई, गन्ने का बीज एवं शोधन इत्यादि का खर्चा बच जाता है। खेत में नमी बनी रहती है एवं गन्ने के पौधों की जड़ों द्वारा उत्सर्जित कुछ तत्वों से भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़ जाती है। पेड़ी गन्ने की फसल अपेक्षाकृत जल्दी पक जाती हैं जो पहली बार गन्ने की फसल ली जाती है। पेड़ी गन्ने में मृदा के भीतर ठूँठों में कलियाँ भी विकसित रहती है। ठूँठ की कलियों द्वारा विकसित गन्ने जल्दी बढ़ते हैं तथा पौधों में चीनी जल्दी बनकर तैयार हो जाती है क्योंकि फसल जल्दी पक कर तैयार जो जाती है। परन्तु इन सबके बावजूद अदासाली फसल से उपज कम रह जाती है। यदि हम लगातार पेड़ी गन्ने की फसल लेते रहते हैं तो साल दर साल उपज कम होने की संभावना बनी रहती है। जिसे चित्र में दर्शाया गया है। पेड़ी गन्ने की उपज कम होने के निम्न कारण हो सकते हैं। जैसे मृदाजनित रोगों के द्वारा गन्ने के किल्लों की वृद्धि नहीं हो पाती व काफी मात्रा में किल्ले मर जाते हैं। साथ ही साथ जब फसल की कटाई करते हैं, तो गन्ने के ठूँठ भी चोटिल हो जाते हैं, उनकी आँखें फट जाती हैं जहाँ से गन्ने के नये किल्लों का जन्म होता है। मृदा का ढीलापन खत्म हो जाता है जिससे

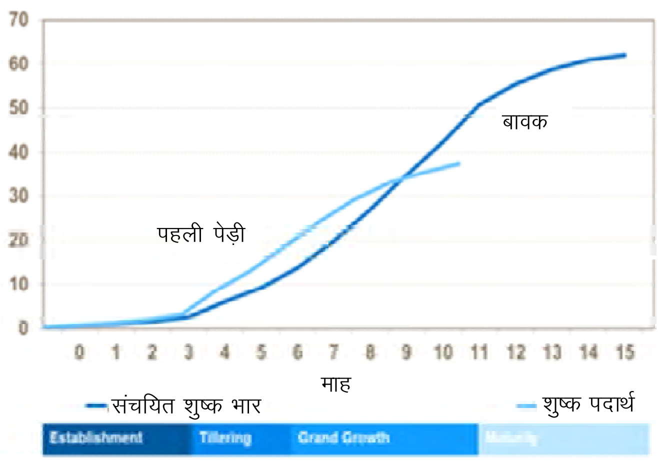

अदासाली एवं पेड़ी में शुष्क पदार्थ का उत्पादन (शुष्क पदार्थ 100 टन/हे.)

पौधों की उत्साहवर्धक वृद्धि रूक जाती है। फसल काटने के बाद पौधों की जड़ें कमजोर एवं सूखी सी हो जाती हैं तथा उनकी कार्य करने की क्षमता भी कमजोर हो जाती है। जिससे पेड़ी गन्ने को पोषक तत्व जो जड़ों के द्वारा प्राप्त होते हैं सम्पूर्ण रूप से नहीं मिल पाते हैं। साथ ही साथ नई जड़ें जो क्रियाशील रहती हैं उनकी क्रियाशीलता भी कम हो जाती है। इस तरह के कारक गन्ने की वृद्धि एवं उपज को बढ़ाने में अपना प्रभाव डालते हैं। यह सभी कारक गन्ने की जड़ों के आस-पास के वातावरण को प्रभावित करते हैं, इनको उचित रख-रखाव एवं सुधार करके गन्ने की पेड़ी फसल की उपज को काफी बढ़ा सकते हैं।

पौधों की जड़ों के मूल परिवेश में उपस्थित सूक्ष्म जीवों एवं उनके सहयोगियों के द्वारा पेड़ी फसल के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

मृदा में गन्ने की जड़ों के पास विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों की प्रजातियाँ मौजूद रहती हैं जिनमें काफी विभिन्नता रहती है। इन सूक्ष्मजीवों में कुछ प्रजातियाँ ऐसी पाई जाती हैं जो गन्ने की उपज को बढ़ाने में काफी मददगार होती है। इन सूक्ष्म जीवों का अवलोकन करके उनकी संख्या में *राइजोस्फेरिक* अभियाँत्रिकी के द्वारा उनकी संख्या में वृद्धि की जा सकती है जोकि पौधों को ऊर्जावान एवं शक्तिवर्धक बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं। ऐसा पाया गया है कि सामान्य मृदा (जहाँ पर पौधों की जड़ों का वातावरण न हो) की अपेक्षा पौधों की जड़ों के पास के क्षेत्रों में सूक्ष्म जीवों की संख्या 100 से 1,000 गुना ज्यादा पाई जाती है। जीवाणु इत्यादि ऐसे सूक्ष्म जीवों की प्रकृति होती है जो बहुत तेजी से बढ़ने की क्षमता रखते हैं एवं जीवित रहने एवं बढ़ने के लिए गन्ने की जड़ों द्वारा उत्सर्जित तत्वों को ग्रहण करते हैं। लगभग 15 प्रतिशत पौधे की जड़ें विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों से ढकी रहती हैं। जो कि अलग-अलग जातियों एवं प्रजातियों के होते है। इन सूक्ष्म जीवों की चय उपचय क्रियाओं के द्वारा पौधों की जड़ों में लवणों एवं पोषक तत्वों का आदान-प्रदान करने में मदद करते हैं। राइजोबियम जीवाणु एक तरह का (पादप वृद्धि की उन्नति) अर्थात पौधों के स्वास्थ्य बढ़ाने वाला सूक्ष्म जीव है। इसे संक्षिप्त में *पी.जी.पी.आर.* कहते हैं। यह सूक्ष्मजीव जब पौधों पर प्रभावी असर डालने लगता है एवं अच्छी लड़ाई क्षमता दिखाने लगता है

तब अपेक्षाकृत दूसरे *राइजोस्फेरिक* प्रजातियों से ज्यादा प्रभावी होता है। ऐसे कारकों को तीन अलग-अलग प्रारूपों में उनके क्रिया कलापों से या (चरित्र) से पहचाना जाता है।

- पौधों की जड़ की सतह को *(कोलोनाइज)* अर्थात बड़ी सतह बनाने की क्षमता रखता है।
- उसके पास दूसरे सूक्ष्मजीवों से अधिक ज्यादा लड़ने की एवं जीवित रहने की तथा समूह बनाने की क्षमता रखते हैं।
- पादप वृद्धि को बढ़ाने की क्षमता रखते हैं तथा एक तरह से जैविक खाद का काम करते हैं। साथ ही साथ, पौधों को पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ाते हैं। *राइजोरिमेनीडेटर* का कार्य संपन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त कीटनाशी, रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा फफूँद नाशक का भी कार्य करते हैं। संक्षेप में मृदा जीवाणु प्रजाति जो *राइजोस्फेयर* द्वारा उत्पन्न होती है, अन्दर बाहर या उसके आस-पास वह पौधों की वृद्धि को अधिक गति से बढ़ाने का कार्य करती है। *राइजोस्फेयर* हस्तक्षेप से नत्रजन का स्थिरीकरण होता है एवं जो फास्फोरस मृदा में मौजूद रहता है परन्तु पौधों को प्रर्याप्त मात्रा में अनुपलब्ध रहता है। कुछ सूक्ष्म जीव उस फास्फोरस को घुलनशील के रूप में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध कराके उन्हें ग्रहण करने की क्षमता को बढ़ा देते हैं। ए.सी.सी डियमेनेज नामक एन्जाइम के उत्पादन से इथाईलिन बनती है एवं जड़ों में (ऑक्सिन) बनाकर पादप वृद्धि हारर्मोन्स का निर्माण करते हैं जिससे पादप वृद्धि में तेजी लाई जा सकती है। साथ ही साथ *बायोटिक* (जैविक) तनाव से लड़ने की क्षमता बढ़ा देता है। साइड्रोपोर के उत्पादन से पौधों की जड़ों से जुड़े हुए जीवाणु समूह की क्रियाशीलता को बढ़ाने में मदद करता है। कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग करना यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें ऐसे जीवाणु को अधिग्रहित करते हैं जो कि मृदा की पीएच घटाने का कार्य करते हैं। कार्बनिक अम्ल को निकाल करके लाभकारी सूक्ष्म जीवों की प्रजातियों को खोज कर तथा मृदा में विकसित कर पौधों की वृद्धि करने का माहौल बनाते हैं।

गन्ना *राइजोस्फेयर* में पौधों एवं सूक्ष्म जीवों के मध्य जटिल संबंध

गन्ना *राइजोस्फेयर* एक तरह से मृदा के नीचे बने कमरे जैसा होता है जो पादप वृद्धि करता है एवं कार्बनिक पदार्थ निकालता है पहले वर्ष की बोई गई फसल से अर्थात अदासाली फसल से इस प्रतिक्रिया को राईजोउत्सर्जन कहते हैं। इस प्रतिक्रिया में ज्यादातर *मेटाबोलाईट* और पौधों के अवशेष एवं मृतक कोशिकाओं का प्रयोग होता है जो कार्बन इस प्रतिक्रिया से निकलता है वह प्रकाश संश्लेषण में काम आ जाता है।

इस तरह से *राइजोस्फेयर* मिट्टी में जीवाणु, आरकिया, सूक्ष्मजीवाणु, फफूँद की अच्छी वृद्धि होती है। यह सूक्ष्म जीव पेड़ी गन्ने की फसल पर अच्छा प्रभाव डालते हैं एवं कार्बन चक्र में योगदान करते हैं। कार्बन अणुओं को दोबारा स्थापित करके या दूसरे सूक्ष्म जीवों के भोजन बनाते हैं जैसे अमीबा एवं सूत्रकृमि, इस सूक्ष्म जैविक प्रक्रिया से *राइजोडिपोजिशन* की मात्रा एवं गुण भी बदल जाते हैं और यही *राइजोस्फेयर* के आदान-प्रदान को बनाए रखता है। इसी से हमें पता चलता है कि गन्ने के *राइजोस्फेयर* को पादप वृद्धि, स्वास्थ्य और जैविक एवं अजैविक तनाव के परिणाम को जाँच करने में मदद करता है या वंश्विक वातावरण को बदलने तथा गन्ना उत्पादन की क्रिया में बहुत बड़ा योगदान करता है।

पेड़ी गन्ना 12 महीने की फसल होने के कारण उसके जीवनकाल की वृद्धि अवस्था मानसून के साथ टकराती है जिसके कारण से *एनरोबिक* (आक्सीजन रहित) अवस्था बन जाने से वृद्धि अवस्था में बहुत से परिवर्तन आ जाते हैं। इस अवस्था में संघनन के प्रभाव और नमी की बढ़ोत्तरी से फिनोलिक विश्लेषण, कार्बनिक अम्ल तथा कार्बन नत्रजन अनुपात बढ़ जाता है जिसके परिवर्तन से जड़ों की अवस्था या गतिविधि से *केटायन एक्सचेंज कैपसिटी* स्तर 31 प्रतिशत तक गिर जाता है। पेड़ी गन्ने की जड़ों का रिसाव 41 प्रतिशत बढ़ जाता है और यह रिसाव इसलिए होता है क्योंकि *ग्राण्ड ग्रोथ फेज* के समय *आर.ओ.एस., रीएक्टिव आक्सीजन स्पेशीज लेवल* बढ़ जाता है जो जड़ों की *प्लाज्मा मैम्बरेन* के *लिपिड लेयर* को नष्ट कर देता है जिसके कारण पेड़ी गन्ने के नत्रजन धारण या ग्रहण करने पर भी प्रभाव पड़ता है। यह नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पौटेशियम ग्रहण की गिरावट क्रमशः 49, 59 एवं 56 प्रतिशत के करीब होती है। जिसकी वजह से शुष्क पदार्थ के संचयन में भी गिरावट आ जाती है जैसे कि क्रमशः 31, 39 एवं 49 प्रतिशत के लगभग जो हमें अदासाली बावक फसल से तुलना करने पर ज्ञात होता है। पेड़ी *राइजोस्फेयर* में नत्रजन *ऐरोमेटिक कार्बन* के साथ *बॉड* बना लेते हैं। वृद्धि अवस्था के समय यह *ऐरोमैटिक* नत्रजन ज्यादातर *एनीलाईड* नत्रजन होते हैं। यह हयूमिक एसिड *फ्रैकसन लिगनिन* से बने अन्तःस्राव से भरे होते हैं। 45 प्रतिशत और औसतन में एमाईड हर *लिगनिन* के *एरोमैटिक रिंग* के साथ जुड़े *बॉडेड* होते हैं। पेड़ी राइजोस्फेयर में >2.5 *एन.सी.एच.* कार्बन प्रतिशत 100 कार्बन होते हैं जो कि कम होता है। लगभग एक तिहाई 13.4 नत्रजन प्रति 100 कार्बन के हयूमिक एसिड के नमूने में जो दिखता है पेप्टाईड सभी नत्रजन के लिए लेखा-जोखा नहीं करते और लगभग 66 प्रतिशत सभी

कार्बन एम.एच.ए. पेड़ी मृदा लिग्निन से बने अन्तः स्राव के अंग होते हैं। अमूमन >4-5 लिग्निन एरोमेटिक रिंग प्रति 100 कार्बन यदि तुलनात्मक अध्ययन में पाया गया है। अपेक्षाकृत अदासाली फसल के *राईजोस्फेयर* में *लिगनिन कंटेन्ट* होता है। *लिगनिन* और *एनालाईड* नत्रजन को चित्र में दर्शाया गया है क्योंकि नत्रजन जो *एरोमैटिक कार्बन* के साथ बधा होता है वह थोड़ी मात्रा में उपलब्ध होता है और सस्य *एनालाईड* नत्रजन की अधिकता से *ह्यूमिक फ्रैक्सन* पेड़ी *राइजोस्फेयर* में पाई जाती है जिसकी वजह से पेड़ी गन्ने में पैदावार कम रह जाती है।

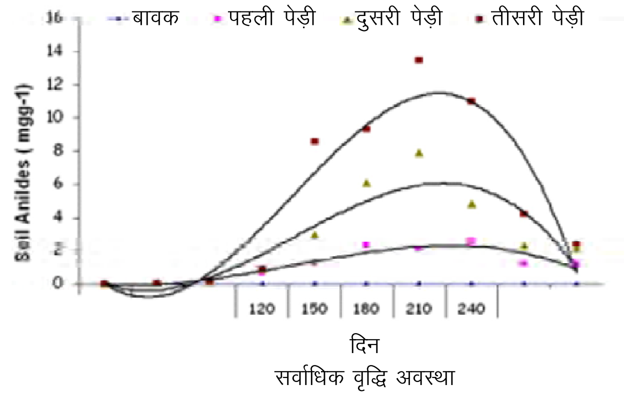

पेड़ी गन्ने में *एनालाइडस* की बढ़ोत्तरी

गन्ने की *राईजोस्फेरिक* तकनीक से मिट्टी के सूक्ष्मजीवों के द्वारा पेड़ी गन्ने की उपज में बढ़ोत्तरी करना

राइजोस्फेरिक वातावरण में गन्ने की जड़ों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थों के अन्तःस्राव होते रहते हैं। यह अन्तःस्राव कुछ पोषक तत्वों को मृदा में संभालकर रखता है जिससे सूक्ष्म जीव अपना भोजन करते रहते हैं। लाभदायक सूक्ष्म जीवों की वृद्धि भी होती रहती है। जड़ों के द्वारा निकले हुए अम्लीय तत्व एच विद्युत अवशेषों के माध्यम से *प्लाज्मा मेम्ब्रेन* को पार करके पौधों की कोशिकाओं में पहुँचते हैं। अम्लीयता के बढ़ जाने से लौह तत्व एवं फॉस्फोरस की प्रचुर मात्रा पौधों को आसानी से प्राप्त हो जाती है। साथ ही साथ कुछ खनिज पदार्थ एवं अघुलनशील कुछ पदार्थों की भी प्राप्ति सुगम हो जाती है। पौधों द्वारा लौह तत्व ग्रहण करने पर कुछ कार्बनिक यौगिक जैसे *सिडरीफोरस* जीवाणु द्वारा गतिमान हो जाता है जैसे Fe^{3+} (लौह तत्व) को पौधे ग्रहण कर लेते हैं। कार्बनिक ऋणायन जैसे साईट्रेट एवं मेलेट तथा फाईटेस और फॉस्फेटेश, *राईजोस्फेयर* वातावरण में जड़ों से निकलते हैं। यह सूक्ष्मजीव निष्क्रिय रूप में मौजूद फॉस्फोरस को सक्रिय कर देते हैं, जो कि पौधों को प्राप्य रूप में ग्रहण योग्य बना देते हैं। पौधों की एक ही जड़ में बहुत अधिक मात्रा में सहजीवी जीवाणु पाये जाते हैं। जैसे *माईकोराइजल, एक्टीनों राईजल* जीवाणुओं का आवश्यकतानुसार इनका प्रसार होता रहता है। इन्हें *कन्सोर्शिया ऑफ इफेक्टिव माईक्रोवेवस (सी.ई.एम.)* कहते हैं। गन्ने का राईजोस्फेयर तीन घटकों के आधार पर बनता है। मृदा अपनी भौतिक, रसायनिक एवं सूक्ष्म जैविक स्थित को बना लेती है। पौधों के अनुरूप तथा पौधें भी एक तरह से अभियंता की कलाकारी अपना लेते हैं, कि मृदा सूक्ष्म जीवों को इस रूप में विकसित करों जिससे पौधे स्वास्थ्य एवं वृद्धि कारक रहें, जिससे उपज में काफी बढ़ोत्तरी रहे।

गन्ने की जड़ों के आस-पास के वातावरण में सुधार करके मृदा का उपजाऊपन, पोषक तत्वों की ग्रहण करने की क्षमता को बढ़ाया जाना

जब मृदा में कार्बनिक खाद को मिला देते हैं तो *राइजोस्फेयर* वातावरण में मृदा का स्वास्थ पौधों की वृद्धि के लिए उचित माध्यम बनकर तैयार कर लेता है जिससे पेड़ी गन्ना की उपज अच्छी हो जाती है। इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि विभिन्न प्रकार की कार्बनिक खादें जैसे गोबर की खाद, *प्रेसमड* (गंधक युक्त) जो चीनी मिलों में गन्ने की पेराई से जिससे चीनी बनती है उसका सह उत्पाद है जिसमें पौधों के काफी पोषक तत्व मौजूद रहते हैं तथा केचुए के द्वारा बनाई गई खाद तथा कुछ जीवाणु हैं जैसे ग्लूकानएसिटो बैक्टर, डाईजोट्रोफिक्स यह गन्ने के *इन्डोफाईटिक* जीवाणु हैं जो वायुमण्डल से नत्रजन को मृदा में स्थिर करते हैं जिससे मृदा का उपजाऊपन बढ़ाने में मदद करता है। कार्बनिक खाद के प्रयोग से मृदा घनत्व, जल का मृदा की नीचे की परतों में छन कर कितनी जल्दी नीचे की परतों में चला जाता है *(वाटर इनफिलटरेशन रेट)*, जैविक कार्बन की मात्रा, मृदा जैविक कार्बन जैवभार, मृदा जैविक नत्रजन में बढ़ोत्तरी होती है तथा मृदा जैविक कार्बन प्राथमिक स्तर 0.32 प्रतिशत से बढ़कर 0.75 प्रतिशत बढ़ जाता है। यदि हम पेड़ी गन्ने में विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थ के स्रोतों को डालते हैं। मृदा पूरक के रूप में जैविक खादों के प्रयोग करने से धीरे-धीरे जैविक कार्बन के साथ-साथ सूक्ष्म जैविक कार्बन की बढ़ोत्तरी हो जाने से मृदा का स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है जो पेड़ी गन्ने की उत्पादन क्षमता को बढ़ा देता है। मृदा पूरक को मृदा में डालने पर *एस.बी.बी.सी.* 3.8 प्रतिशत से बढ़कर 5.36 प्रतिशत हो जाता है जिससे जैबिक कार्बन बढ़ जाता है। जैबिक जैवभार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान मृदा में संपन्न करता है जिसकी वजह से पोषक तत्वों के आदान-प्रदान तथा उनको ऊर्जा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भागीदारी मिलती है। मृदा सूक्ष्म जैविक नत्रजन *(एस.एम.बी.एन)* की बढ़ोत्तरी से मूल परिवेश *(राइजोस्फेयर)* में निवास करने वाले सूक्ष्मजीवों के समाज में भोजन वा ऊर्जा तथा उनकी टूट-फूट की

मरम्मत करने में मदद करता है। मृदापूरक, मृदा विन्यास एवं मृदा कणों को अच्छा बनाते हैं जिससे मृदा रन्ध्रावकास, जल संचयन तथा जल धारण क्षमता बढ़ जाती है जिसकी वजह से मृदा स्वास्थ्य में आशातीत सुधार हो जाता है फसल उत्पादन बढ़ जाता है।

मृदा पूरक (संशोधन) एवं जैविक खाद दोनों साथ मिलकर जड़ के अवशेष एवं उसके सहायक जैसे *सेल्युलोज, हेमी सेल्युलोज,* संपूर्ण *लिग्निन,* अघुलनशील अम्ल, तथा घुलनशील अम्ल, लेग्निन पदार्थों को सड़ने-गलने में मदद करते हैं। जहाँ तक जड़ों के जैवभार का स्राव तेजी से निकलता है अपेक्षाकृत बगैर *राइजोस्फेयर* के गन्ना की बुवाई के 120 दिन से लेकर 180 दिन के बीच के समय को *ग्रान्ड ग्रोथ पीरियड* कहते है उस दरमियान एक नकारात्मक संबंध होते हैं पूर्ण लिग्निन अम्ल में घुलनशील लिग्निन फेनोलस, एनीलाइडस और मृदा एन्जाइमस (डीहाईड्रोनेज, क्षारीय फॉस्फेटेज, अम्लीय फॉसफेटेज एवं एराईज सल्फेटेज) में मृदा संशोधकों द्वारा डीहाईड्रोजिनेज बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते है। 1.2-1.9 तक एराईज सल्फेट तथा 1.4 तक अम्लीय फॉसफिटेज की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। इसके साथ ही वृद्धि अवस्था के दौरान फिनोल एवं एनलाईड की मात्रा 65 और 79 प्रतिशत कम हो जाती है, फिनॉल्स एवं एनीलाईडस मृदा में उपलब्ध नत्रजन की उपलब्धता को वृद्धिकाल अवस्था के समय अनुपलब्धता बढ़ाने में सहायक होते हैं क्योंकि मृदा एंजाइम की क्रियाशीलता पोषक तत्वों की उपलब्धता में काफी सहायक होती है। मृदा संशोधक तथा जैविक खाद दोनों साथ मिलकर जड़ों की *केटायन एक्सचेंज कैपेसिटी* (CEC) को बढ़ा देते हैं। साथ ही साथ एंजाइमों की क्रियाशीलता को भी बढ़ाने में मददगार होते हैं। मृदा संशोधक जड़ों की *केटायन एक्सचेंज कैपीसिटी* को बढ़ाने के साथ-साथ जड़ों के जैवभार (जड़ों की लंबाई-चौड़ाई एवं वजन) को सड़ने एवं गलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। *राईजोस्फेरिक इंजीनियरिंग* के द्वारा मृदा संशोधकों का प्रयोग करके रासायनिक अवज्ञा जो वृद्धिकाल के समय पौधों के बढ़ने में बाधा डालते हैं उनकी क्रियाशीलता को कम करके पौधों की वृद्धि बढ़ाने में तथा जड़ों द्वारा पौधों को पोषक तत्व ग्रहण कराने में अहम भूमिका का निर्वहन करते हैं।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

प्रदूषित मृदा के जैविक उपचार में *ट्राईकोडर्मा* का महत्व

मोनिका उपाध्याय, उमेश कुमार त्रिपाठी एवं दीक्षा जोशी
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

वर्तमान समय में बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, गहन खेती व अन्य मानव गतिविधियों के परिणामस्वरूप हमको मृदा अवकरण, पर्यावरण प्रदूषण तथा कृषि फसलों की उत्पादकता में गिरावट जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। फसल उत्पादकता को बढ़ाने के लिए विभिन्न रासायनिक उत्पाद जैसे कीटनाशक, फफूँदीनाशक, उर्वरक आदि का खेती में अत्यधिक प्रयोग किया जा रहा है, जिससे हमारी मृदा दूषित होती जा रही है। साथ ही बढ़ते शहरीकरण से कार्बन डाईऑक्साइड में वृद्धि होने के कारण वायु प्रदूषण को बढ़ावा मिल रहा है। ऐसे में विभिन्न उद्योगों द्वारा उत्सर्जित जल में उपस्थित हानिकारक तत्व जैसे ताँबा, निकिल, कोबॉल्ट, आर्सेनिक यौगिक इत्यादि मृदा और जल को और दूषित करते हैं।

मृदा जैविक उपचार के लिए प्रयोग की जाने वाली पारंपरिक दो विधियां हैं: पहली विधि में खुदाई द्वारा उत्पादित दूषित मृदा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापित किया जाता है परन्तु दूषित मृदा के अंतिम निपटान के लिए नए खुदाई के क्षेत्र को खोजना बहुत मुश्किल और अत्यधिक महंगा है। दूसरी विधि या सम्मिलित विधि में दूषित मृदा का गढ्ढों में भरना है, जिससे उस स्थान पर संक्रमण बना रहता है। अतः इनकी देख-रेख और रख-रखाव की आवश्यकता होती है।

इन पारंपरिक विधियों की तुलना में एक बेहतर विधि है कि जहाँ संभव हो वहाँ प्रदूषकों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया जाए या कम से कम उन्हें निष्क्रिय पदार्थों में बदल दिया जाए। इसके लिए कुछ विधियों का उपयोग किया गया है, जो निम्नवत हैं: उच्च-तापमान भस्मीकरण *(यूवी ऑक्सीकरण)* और विभिन्न प्रकार के रासायनिक अपघटन (आधार-उत्प्रेरित *डीक्लोरिनेशन*)। ये दूषित पदार्थों की सीमा के स्तर को कम करने में बहुत प्रभावी हो सकते हैं, लेकिन इन विधियों में मुख्य रूप से उनकी जटिलता, छोटे पैमाने पर प्रयोग की लागत, और सार्वजनिक स्वीकृति की कमी जैसी कई कमियां हैं।

इन समस्याओं को दूर करने के लिए और हमारे पर्यावरण को भविष्य में प्रदूषण और शोषण से बचाने के लिए, कुछ पर्यावरण अनुकूल उपाय जैसे जैविक उपचार विकसित किए गए हैं। जैविक उपचार प्रदूषण को नियंत्रित करने की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्मजीवों का प्रयोग पर्यावरण में उपस्थित हानिकारक पदार्थों को नष्ट करने के लिए किया जाता है। इनमें प्रयोग किए जाने वाले सूक्ष्मजीव विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे जीवाणु, कवक, शैवाल इत्यादि जो जल और मृदा की शुद्धता को बढ़ावा देते हैं तथा मृदा की उत्पादकता में वृद्धि करते हैं। मृदा जैविक उपचार में प्रयोग किए जाने वाली एक मुख्य कवक है *ट्राईकोडर्मा*।

ट्राईकोडर्मा एक हरे रंग की कवक है जो सभी प्रकार की मृदा तथा अन्य प्राकृतिक आवासों में आसानी से पायी जाती है। इस कवक का प्रयोग कई वर्षों से जैव नियंत्रक के रूप में होता आ रहा है, साथ ही पौधवृद्धि को बढ़ावा देने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में इस कवक का प्रयोग जल में प्रदूषण करने वाले पदार्थों को नष्ट करने के लिए भी हो रहा है। *ट्राईकोडर्मा* कवक में एक से अधिक भारी तत्व जैसे लेड, क्रोमियम, निकिल, ताँबा, सोना, जस्ता, कैडमियम, मैगनीशियम इत्यादि को नष्ट करने की क्षमता पायी जाती है। कुछ *ट्राईकोडर्मा* की प्रजातियां जैसे *ट्राईकोडर्मा हॉरजियानम* में कार्बनिक यौगिकों उदाहरण के रूप में *डी.डी.टी. (डाईक्लोरो डाईफिनॉयल ट्राईक्लोरोईथेन), पी.सी.पी. (पेंटाक्लोरोफेनॉल), पी.सी.एन.बी. (पेंटाक्लोरोनाईट्रोबेंजीन), इन्डोसल्फॉन, डाई-एल्ड्रिन* इत्यादि को नष्ट करने की क्षमता है। *ट्राईकोडर्मा विरिडी* प्रजाति *सेलुलोस* एंजाइम का उत्पादन करती है जो अपशिष्ट कागज के जैव-वर्गीकरण में सहायक है, जो ठोस अपशिष्ट पदार्थ का प्रमुख घटक है।

इसके अलावा कुछ चीनी मिलों में, *ट्राईकोडर्मा हारजियानम* का उपयोग चीनी मिल उद्योगों के प्रदूषण के जैव-वर्गीकरण के लिए किया गया है तथा जटिल *पॉलीसेकेराइड* को सेल्युलोज एंजाइम की सहायता से सरल किण्वन योग्य शर्करा में परिवर्तित कर दिया गया है। इन शर्करा का उपयोग इथेनॉल के उत्पादन के लिए किया जाता है।

जैव उपचार द्वारा यह कवक विभिन्न तत्व जैसे जीवविश *(साइनाईड)* और *जीनोबायोटिक* को वातावरण से हटाने अथवा नष्ट करने में सहयोग करता है। *ट्राईकोडर्मा* प्रजातियाँ मृदाजनित

तालिका- जैव-उपचार में *ट्राईकोडर्मा* का प्रयोग

ट्राईकोडर्मा प्रजाति	प्रदूषक
ट्राईकोडर्मा विरिडी	चीनी मिल उत्पादित अपशिष्ट पदार्थ
ट्राईकोडर्मा एसपैरेल्लम, ट्राईकोडर्मा हारजियानम, ट्राईकोडर्मा टोमेन्टोसम	कैडमियम ऑयन
ट्राईकोडर्मा हारजियानम	साबुन, सर्फ, अपरिष्कृत तेल, जस्ता, सीसा, ताँबा
ट्राईकोडर्मा विरिडी, ट्राईकोडर्मा लॉजीब्रैकिएटम	पैलेडियम, क्रोमियम, कैडमियम, निकिल
ट्राईकोडर्मा एसपैरेल्लम	सीसा, ताँबा
ट्राईकोडर्मा वाइरेन्स (पी.डी.आर. 28)	ऑर्सेनिक, सीसा, कैडमियम, निकिल, सीसा, जस्ता
ट्राईकोडर्मा (एफ.ए. 06)	ऑर्सेनिक
ट्राईकोडर्मा रीसी	पॉलीसाईक्लिक ऐरोमेटिक हाईड्रोकार्बन
ट्राईकोडर्मा कोनिंगी	कैडमियम
ट्राईकोडर्मा ऐट्रोविरडी	जस्ता, बेरियम, लौह तत्व
ट्राईकोडर्मा प्रजाति	पेंटाक्लोरोफेनॉल, डीजल प्रदूषित मृदा

पादप रोगों की रोकथाम और मृदा उर्वरता को बनाए रखने में सहायता करती हैं और यहाँ तक कि पारिस्थितिकी तंत्र में *सेल्युलोजिक* जैवभार के पुनर्चक्रण के साथ-साथ प्राकृतिक उर्वरक उत्पादन के लिए खाद की परिपक्वता में भी मदद करती हैं। *ट्राईकोडर्मा* के सदस्य भारी धातुओ, *पॉलीक्रोमैटिक हाइड्रोकार्बन* सहित पुनर्गणना प्रदूषकों की एक बड़ी श्रृंखला को सहन कर सकते हैं और जैव उपचार में उपयोग के लिए एक अच्छे उम्मीदवार हैं।

ट्राईकोडर्मा प्रजातियों द्वारा उत्पादित *पेरोक्साइड, लैक्टैज, लैक्टिक एंजाइम* इत्यादि इन प्रदूषकों के अवक्रमण में सहायता करने वाले संभावित कारक हैं। इसलिए *ट्राईकोडर्मा* प्रजातियों का प्रयोग समय-समय पर मृदा संरक्षण और पर्यावरण सुरक्षा में किया जा रहा है। *ट्राईकोडर्मा* प्रजातियाँ न केवल मृदा स्वास्थ्य एवं पादप वृद्धि में ही सहायक हैं साथ ही फसल उत्पादन को भी सुरक्षित करते हैं।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

वर्तमान जलवायु परिवर्तन परिदृश्य में गन्ने में सिलिका की भूमिका

राजीव कुमार, पुष्पा सिंह, राधा जैन, अमरेश चन्द्रा, सी.के. गुप्ता, आर.आर. वर्मा एवं आर.के. सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सी$_4$ फसल होने के कारण प्रति इकाई क्षेत्र में गन्ने के उच्च जैवभार का उत्पादन होता है। इसकी पानी की आवश्यकता फसल के विभिन्न विकास चरणों के तहत भिन्न होती है। *टिलरिंग* अवस्था में गन्ने में पानी की अधिकतम आवश्यकता होती है। उसके बाद तनों के विकसित होने के समय और परिपक्वता अवस्था में होती है। भारत में गन्ने की खेती व्यापक रूप से भिन्न जलवायु परिस्थितियों में की जाती है। जलवायु परिवर्तन के वर्तमान परिदृश्य में पौधे प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हैं। अनावृष्टि एक प्रमुख अजैविक कारक बन गया है जो उनके विकास और परिवर्धन को नुकसान पहुँचा सकता है।

किसी भी फसल के लिए वानस्पतिक विकास के दौरान पानी नितांत आवश्यक होता है जो कि अधिकतम उत्पादकता प्रदान करता है। इसमें अनावृष्टि और जल भराव दो प्रमुख अजैविक तनाव हैं जो अधिकांश क्षेत्र में खेती के दौरान गन्ने को गुजरना पड़ता है। दिन के उच्च तापमान के साथ नमी का तनाव उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय दोनों स्थितियों में ही खराब वृद्धि और उच्च *टिलर* मृत्यु दर का कारण बनता है। फसल की प्रारंभिक अवस्था में कम आर्द्रता फसल पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। तीन प्रकार के अनावृष्टि में यानि मृदा, वायुमण्डलीय और क्रियात्मक में 4 पहलुओं वाला ज्यादा क्षतिकारक होता है जो मृदा में नमी की स्थिति में कमी के कारण होता है। पौधों के ऊतकों में किसी भी प्रकार से जल का असंतुलन फसल को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। यह काफी हद तक कम उत्पादकता और उपज का कारक हो सकता है। सिलिकॉन धरातल के पृष्ठभाग के नीचे पाए जाने वाले सबसे प्रचुर तत्वों में से एक है लेकिन यह ज्यादातर अनुपलब्ध रूप में पाया जाता है। फसलों की गहन खेती के कारण मृदा से उपलब्ध सिलिकॉन की भारी मात्रा में कमी हो जाती है जिससे मृदा के सिलिकॉन भंण्डार में अस्थायी कमी होती है।

ग्रामिनी के सदस्यों में से एक होने के नाते, गन्ने में सिलिकॉन की खपत अधिक होती है जो कि 300-700 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है। सिलिकॉन के लिए गन्ने की प्रतिक्रिया विश्व के कुछ हिस्सों में अच्छी तरह से ज्ञात है और इसका अनुप्रयोग अभी भी चलन में है। हालॉकि बेहतर उपज में सिलिकॉन की अनुक्रिया का कारण पूरी तरह से ज्ञात नहीं है। सिलिकॉन से गन्ने की उपज प्रतिक्रियाएँ संभवतः अजैविक और जैविक तनावों के लिए प्रतिरोध के साथ जुड़ी हुई हैं जैसे कि धातु विषाक्तता कम करना, रोग और कीट प्रतिरोध, पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि, बेहतर पत्ती और डंठक स्तंभन, शीत प्रतिरोध और पौधों की जल अर्थव्यवस्था में सुधार। सिलिका पत्तियों की स्तंभन को बनाए रखता है साथ में पौधों की प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया को भी अधिकतम स्तर पर बरकरार रखती हैं, इसलिए प्रकाश संश्लेषित पदार्थ का एकत्रीकरण अच्छा होता है। सिलिका प्रतिकूल मौसम की परिस्थिति में पौधों को मौसम के अनुकूल ढलने की क्षमता प्रदान करता है। देश के कुछ विशेष हिस्सों में जहाँ गन्ने की खेती की जाती है, सिलीकॉन पोषक तत्व प्रबंधन पर विचार करने की आवश्यकता है। बेहतर सिलीकॉन पोषण से गन्ने में अत्यधिक पत्ती से वाष्पोत्सर्जन की क्रिया कम होती हैं। उपरोक्त लिखित तनावों के प्रबंधन के लिए विशेष रूप से ऐसे पोषक तत्व प्रबंधन के सामंजस्य की आवश्यकता है जिसकी खपत गन्ने के पौधों द्वारा ज्यादा होती है और जिसकी गन्ने में बहुक्रियात्मक भूमिका होती है।

गन्ने के चोटी बेधक कीट को नियंत्रित करने के लिए भारत में सिलिका अनुसंधान की पहलों की सूचना को इंगित करती है कि सिलिकॉन पोषण गन्ने के चोटी बेधक कीट के साथ सीधे पत्ती म्यान में सिलिकॉन की मात्रा से जुड़ा हुआ है।

सिलिका गन्ने में पौधों की संख्या को बढ़ाता है, पत्तियों के विशिष्ट वजन, कुल शुल्क पदार्थ संचयन, गन्ने की मोटाई, गन्ने की लम्बाई और गन्ने की उपज में सुधार करता है। शुद्धता, यह रस गुणवत्ता जैसे कि ब्रिक्स, शर्करा, शुद्धता, सीसीएस और एसपीएस गतिविधियों को बढ़ाता है।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

रसायन रहित विधि से फलों को पकाना

शिव पूजन[1], देवेन्द्र पाण्डेय[1], देवेश पाण्डेय[2], अंकित कुमार पाण्डेय[3] एवं स्वप्निल पाण्डेय[4]
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ; [2]ओरियंटल विश्वविद्यालय, इंदौर
[3]बिहार कृषि विश्वविद्यालय, साबौर, बिहार; [4]क्षेत्रीय शोध संस्थान, बल्लोवाल संखुरी, पंजाब

फल का पकना एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। फलों की अनेक प्रजातियों में फल धारण करने के 12-18 सप्ताह पश्चात परिपक्व होने की अवस्था में आ जाते हैं किन्तु बागवानों द्वारा फल परिपक्वता से 2-3 सप्ताह पूर्व तोड़ दिये जाने के कारण फलों की अच्छी कीमत प्राप्त तो होती है परन्तु फल गुणवत्ता में अच्छे नहीं होते हैं। तोड़े गये अपरिपक्व फलों को पकाने के लिये व्यवसायियों द्वारा प्रतिबंधित रसायन जैसे *कैल्शियम कार्बाइड* का प्रयोग किया जाता है। *कैल्शियम कार्बाइड* नमी ग्रहण कर *एसिटिलीन* गैस उत्सर्जित करता है जो फलों को पकाने में सहायता करती है। इस गैस से पकाये गये फलों का सेवन करने से कर्क रोग होने की संभावना होती है। इस विधि से पके फलों में खट्टापन होता है तथा फलों की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं होती हैं। फल एक समान रूप से न पकने के कारण अपने रंग को भी प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। *एसिटिलीन* एक ज्वलनशील और स्वास्थ्य के लिये हानिकारक गैस है। *कैल्शियम कार्बाइड* पत्थर के पाउडर से नमी की उपस्थिति में *एसिटिलीन* गैस निकल जाने के पश्चात बने पाउडर में आर्सनिक जैसी भारी *मैटल* इत्यादि की अशुद्धियाँ भी होती है जो फलों के ऊपरी छिलके में लग सकती हैं और फलों के सेवन के दौरान विषाक्तता पैदा कर सकती है। इसी प्रकार अन्य अशुद्धियों द्वारा अनेक गैसें जैसे *फॉस्फीन* तथा *हाइड्रोजन सल्फाइड* अत्यधिक हानिकारक एवं तंत्रिका तंत्र के रोगों को भी उत्पन्न कर सकती है।

इस कारण भारत सरकार ने सन् 1955 से *कैल्शियम कार्बाइड* के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाया हुआ है। इस विधि का प्रयोग सरल और आसान होने के कारण व्यवसायी फल पकाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं।

फल नैसर्गिक रूप से *एथिलीन* उत्सर्जित करते हैं जिससे फल धीरे-धीरे पकते हैं। बाहरी स्रोत से *एथाइलीन* का वातावरण पैदा करने से इस गैस की सांद्रता बढ़ जाती है और फल अधिक तेजी से पक जाता है।

कृत्रिम विधि द्वारा फलों को एक समान रूप से पकने की बहुत बड़ी समस्या है अतः अनेक प्रकार के तरीकों को अपनाकर फलों को पकाया जाता है। विभिन्न प्रकार के फलों को पकाने के लिये अलग-अलग वातावरण और समय की जरूरत होती है। जैसे कि आम के फलों को पकाने के लिये 5-6 दिन और सपोटा के फलों को पकाने के लिये 6-7 दिन का समय लगता है। मुख्य रूप से एथिलीन गैस जो कि पौधों से निकला हुआ एक बहुत ही महत्वपूर्ण हारमोन्स होता है जो फलों को पकाने में मदद करता है। रसायन रहित विधि से फलों को पकाने से फलों की गुणवत्ता और उसमें उपस्थित खनिज पदार्थों की हानियाँ नहीं होती है।

फल पकने के उपरांत बदलाव

- फल के छिलके का रंग किस्मानुसार परिवर्तित होकर हरा से पीला हो जाता है।
- गूदे का रंग किस्मानुसार परिवर्तित हो जाता है।
- गूदा सख्त से मुलायम हो जाता है एवं जूस की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।
- स्टार्च शर्करा में परिवर्तित हो जाता है एवं खटास में कमी आती है।
- घुलनशील पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है।
- कैरोटिनाइड पदार्थों की मात्रा में वृद्धि तथा क्लोरोफिल की मात्रा में कमी आती है।

फलों को पकाने की विधियाँ

फलों को पकाने की अनेक विधियां प्रचलित हैं। जो निम्नवत हैं :

बॉक्स विधि से फल पकाना

यह एक सरल विधि है इसमें फलों को घरों में आसानी से पकाया जा सकता है। इस विधि में हवा के प्रति अवरोधी एक *बॉक्स* लेते हैं और फलों को *बॉक्स* में भर देते हैं। फलों को भरते समय कुछ पका हुआ और कुछ परिपक्व फलों को एक साथ रखते हैं जिससे पहले से पका हुआ फल एथिलीन गैस उत्सर्जित करता है जिससे अपरिपक्व फल आसानी से पक जाते हैं। इस विधि से पके हुये फलों के छिलकों पर कोई दाग और धब्बा नहीं होता है और फल गुणवत्तायुक्त होते हैं।

बन्द कमरे में फल पकाना

यह बहुतायत से फलों को पकाये जाने वाली एक विधि है इस विधि में फलों को हवा अवरोधी कमरे में पकाते हैं। इसमें कमरे में फलों को भर दिया जाता है तथा कमरे के मध्य में धुँआ किया जाता है जिससे *एसिटिलीन* गैस का उत्सर्जन होता है और फल आसानी से पक जाता है। आमतौर पर यह तकनीक आम

और केले को पकाने के लिये उत्तम मानी जाती हैं।

इस विधि से पकाया गया फल एक समान रंग और स्वाद को नहीं प्राप्त कर पाता है। इसके अलावा फलों पर धुँआ की गंध गुणवत्ता को बाधित करती है।

एग्राल द्वारा फल पकाना

यह एक उत्तम और लाभकारी विधि है। इसमें 0.1 फीसदी *एग्रॉल सॉल्यूशन* (1 लीटर पानी में *एथॉल* सॉल्यूशन का 1 मि.ली.) में परिपक्व फलों को डुबोते हैं फिर फलों को सुखा लेते हैं फिर फलों को अखबार के ऊपर बिना एक दूसरे को छुये हुये फैला देते हैं। सूती कपड़े से फलों को ढ़क देते हैं। इस विधि में फल दो से तीन दिन में पक जाते हैं।

प्राकृतिक विधि से फल पकाना

यह एक पुरानी और बहुतायत से प्रयोग में लाये जाने वाली एक सरल विधि है। इस विधि में फलों को धान की भूसी या गेहूँ के भूसे के ऊपर फैला दिया जाता है तथा उसी भूसे से फलों को ढक दिया जाता है। इस विधि से फल आसानी से तथा एक समान पक जाते हैं।

इथ्रेल द्वारा फल पकाना

इस प्रक्रिया में एक हवा अवरोधी कमरे में फलों को एक तिहाई भर देते हैं और एक चौथाई हिस्सा खाली रखते हैं जिससे हवा का संचालन आसानी से होता रहे। फिर 10 मि.ली. इथ्रेल और 2 ग्राम सोडियम हाइड्रॉक्साइड छर्रो को एक चौड़े मुँह वाले बर्तन में 5 लीटर पानी में मिलाकर फलों के पास रख देते हैं। कुछ फल जैसे कि पपीता और केला जैसे फलों को पकाने के लिये उसी के पास रख देते हैं। इस विधि में फलों को पकने में 12-24 घंटों की जरूरत होती है।

बेल के फलों को पकाना

बेल के फलों को एक समान रूप से पकने की बहुत ही समस्या है क्योंकि यह बहुत ही कठोर फल होता है। बेल को एक समान रूप से पकाने के लिये यह एक सरल और उत्तम विधि है। इसमें फलों को एक गडढ़े में रखकर पकाया जाता है सबसे पहले आवश्यकतानुसार एक गडढा बना लेते हैं। सामान्यतया 1 क्विंटल फल के लिये 1 घन मीटर गडढे की आवश्यकता होती है। गडढा बनाने के बाद गडढे की सतह और दीवारों को पानी से लेपन कर देते हैं जिससे मिट्टी अंदर न गिरने पाये। जब सतह पूर्ण रूप से सूख जाये या मिट्टी गिरना बंद हो जाये तो गडढे की सतह पर धान की भूसी या गेहूँ का भूसे को डाल देते हैं जिससे नमी फलों पर न लगने पाये। दीवारों की तरफ से पुवाल खड़ा कर देते हैं और एक जाल को गड्ढे में फैला देते हैं। फिर फलों को जो कि पूर्ण रूप से अपरिपक्व अवस्था में हो फिर गड्ढे में फलों को भर देते है फिर एक मिट्टी का बना हुआ मटका लेते हैं जिसमें 3-4 कि.ग्रा. भूसा आ सके। फिर मटके की सतह पर एक छेद करते हैं और मटके में गेहूँ के भूसे को भर देते हैं। फिर गड्ढे के मध्य में मटके को पलट कर रखते हैं जिससे मटके का मुँह फलों के मध्य और सतह का छेद ऊपर की ओर होता है। फिर गड्ढे की दीवार की तरफ खड़े पुवाल को चारों तरफ से इस प्रकार ढकते हैं कि मटके की सतह का छेद केवल खुला रहे फिर गड्ढे के मुँह को मिट्टी से लेपन कर देते हैं फिर खुले मटके के छेद में आग डाल कर इस प्रकार फूँकते हैं कि गड्ढे के चारों तरफ धुँआ फैल जाए और फिर मटके के छेद में सूती कपड़ा लगा कर बंद कर देते हैं। इस प्रक्रिया को दिन में दो बार करते हैं। इससे गड्ढे में धुँए से एसीटिलीन गैस का उत्सर्जन होता है जिससे फल आसानी से पक जाते हैं। इस विधि से फलों को पकाने के लिये 3-4 दिन की आवश्यकता होती है।

उन्नत विधि से फल पकाने से लाभ

- इस तकनीक से पकाए गये फल सेवन हेतु सुरक्षित होते हैं।
- फल एक समान रूप से तथा आकर्षक रंग लिये हुए पकते हैं।
- फल कम समय में पक जाते हैं।
- फलों में गूदा एक समान रूप से पीला हो जाता है।
- इस प्रक्रिया को अपनाकर फल पकाने से फलों में सिकुड़न भी कम होती है।

कैल्शियम कार्बाइड के प्रयोग से हानियाँ

- *कैल्शियम कार्बाइड* से *एसिटिलीन* गैस निकलती है जो फलों को एक समान रूप से पकाने में विफल रहती है।
- *एसिटिलीन* गैस से कर्क रोग होने की संभावना होती है।
- *एसिटिलीन* गैस से श्वसन, पाचन, निद्रा संबंधी इत्यादि जैसे रोगों के उत्पन्न होने का खतरा रहता है।
- गैस निकल जाने के पश्चात् शेष पाउडर में *आर्सनिक* जैसा *हैवी मेटल* होता है जो फल के छिड़के पर लगकर स्वास्थ पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

पर्यावरण संरक्षण

सी.पी. प्रजापति, आर.एस. चौरसिया एवं अनीता सावनानी
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पर्यावरण दों शब्दों - 'परि' और आवरण से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है - चारों ओर का घेरा। हमारे चारों ओर जो भी वस्तुएँ, परिस्थितियाँ विद्यमान हैं, वे मानव- क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिये एक दायरा सुनिश्चित करती हैं। इसी दायरे को हम पर्यावरण कहते हैं। यह दायरा आवास, गाँव, मुहल्ला, नगर, प्रदेश, देश, महाद्वीप, ग्लोब अथवा संपूर्ण सौर मंडल का हो सकता है।

आज पूरा विश्व यदि किसी एक समस्या को लेकर चिंतित है, तो वह पर्यावरण की समस्या है। प्राचीन भारत में मानव का सर्वप्रथम ध्येय प्राकृतिक व्यवस्था के साथ तारतम्यता बनाए रखना था। प्रारंभिक काल में पर्यावरण का अर्थ वातावरण माना जाता रहा है, पर आज पर्यावरण का अर्थ इतना व्यापक हो चुका है कि इसमें संपूर्ण पृथ्वी, उसका वातावरण और इस धरती पर विद्यमान हर वस्तु को पर्यावरण का हिस्सा मान लिया गया है।

आधुनिक युग में पर्यावरण की समस्याओं के लिए परिचय की भौतिकवादी सभ्यता के फलस्वरूप चरागाह नष्ट हो रहे हैं, पशुपालन उजड़ रहे हैं, झीलें सूख रही हैं, नदी के पानी के प्रदूषण के फलस्वरूप मछुआरों का जीवन अनिश्चित हो रहा है, बांध जिन्हें देश की प्रगति का नया तीर्थ स्थल कहा गया था, उनका कलश फीका पड़ रहा हैं, बिजलीघरों के झुंड तैयार हो रहे हैं, विकास के नाम पर असाध्य बीमारियाँ मिल रही हैं। रासायनिक कीटनाशकों के कारखानों ने हजारों व्यक्तियों की जाने ले ली हैं। उर्वरक बनाने वाली फैक्ट्रियाँ दाँतों को विकृत कर फेफड़ों को कमजोर कर रही हैं। ये सब वैज्ञानिक आविष्कार मानव जाति के उपादेय सिद्ध न होकर हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं।

प्रकृति ने मनुष्य को अनूठी प्रतिभा, क्षमता, सृजनशीलता, तर्कशक्ति देकर विवेकशील, चिंतनशील एवं बुद्धिमान प्राणी बनाया है। अतः मनुष्य का दायित्व है कि वह प्राकृतिक संसाधनों में संतुलित चक्र को बनाए रखते हुए स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना अपना पुनीत कर्तव्य समझें। आज का मानव अपने उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ रहा है क्योंकि भौतिकवाद व औद्योगिकीकरण ने उसे स्वार्थी बना दिया है। भारत में पर्यावरण की समस्या में अधिकतम योगदान औद्योगिकीकरण का न होकर अपूर्ण विकास का है।

भारत में पर्यावरण की समस्या के समाधान के लिए ऊर्जा की अंधाधुंध खपत व वनों की बेशुमार कटाई को रोकना होगा। अनायास बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण करना होगा। फसलों के लालच में पृथ्वी के गर्भ को चीरकर रसायनिक खाद का प्रयोग रोकना होगा। तेज रफ्तार की चाहत में कारों, ट्रकों, और मोटरगाड़ियों आदि की ताबड़तोड़ भाग-दौड़ से वातावरण में भरने वाले धुंए को नियंत्रित करना होगा। मनुष्य को इसी प्रकार से अपनी सूझ-बूझ से पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाली गतिविधियों को नियंत्रित व समाप्त करना होगा।

अतः जब पर्यावरण के प्रति मानव में मित्रता का भाव रहेगा, तभी वह पर्यावरण सुरक्षित रख सकेगा। मानव को चाहिए कि वह अपने आस-पास की प्राकृतिक संपदाओं को मित्र समझकर उसका उपयोग करे। इसी दृढ़ शक्ति से कार्य करने पर ही पर्यावरण को हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख पाएंगे।

प्रसन्नता एक अनमोल खजाना है,
छोटी-छोटी बातों पर उसे न लुटने दें।
-स्वामी विवेकानन्द

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

मृदा स्वास्थ्य एवं समृद्धि हेतु जैविक खेती अपनायें

रेनू आर्या[1], सोनम आर्या[2] एवं आर.एल. आर्या[3]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, बहराइच (उ.प्र.)
[2]कालेज आफ एप्लाइड एजूकेशन एंड हेल्थ साइन्स, मेरठ
[3]कृषि विभाग, कानपुर देहात

जैविक खेती प्रबंधन एक ऐसा समन्वित मार्ग है जहाँ खेती के समस्त अवयव एवं प्रणाली परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होती है तथा एक दूसरे के लिए कार्य करती है। जैविक रूप से स्वस्थ एक सक्रिय भूमि फसलों के पोषण का स्रोत होती है तथा खेत की जैव विविधता द्वारा नाशीजीवी नियंत्रण होता है। फसल चक्र तथा बहुफसली कृषि प्रणाली मृदा स्वास्थ्य के स्रोतों को बनाए रखती है। पशुधन समन्वय, उत्पादकता तथा स्थायित्व सुनिश्चित करता है। जैविक प्रबंधन स्थानीय स्रोतों के अधिकतम उपयोग तथा उत्पादकता पर बल देता है।

जैविक खेती कृषि की वह पद्धति है, जिसमें पर्यावरण के प्राकृतिक सन्तुलन को कायम रखते हुए भूमि, जल एवं वायु को प्रदूषित किए बिना दीर्घकालीन तथा स्थिर उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इस पद्धति में रसायनों का उपयोग कम से कम अथवा आवश्यकतानुसार किया जाता है। यह पद्धति रासायनिक कृषि की अपेक्षा सस्ती, स्वावलम्बी एवं स्थाई है। इसमें मिट्टी को एक जीवित माध्यम माना गया है। यह मात्र भौतिक माध्यम नहीं है। जैविक खेती से लक्षित कृषि उत्पादन प्राप्त करते हुए प्रकृति की सम्पदा, मृदा, जीवाणु, जल, वायुमण्डल के जीवों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। कृषि योग्य भूमि में विस्तार की सीमित संभावनाओं के कारण जैविक कृषि के माध्यम से कृषि उत्पादन को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है। परम्परागत स्रोतों के उपयोग से कृषि उत्पादों की गुणवत्ता एवं उत्पादकता में वृद्धि होगी, साथ ही साथ कृषकों की आय में भी वृद्धि होगी।

जैविक खेती ऐसी प्रबंधन प्रक्रिया है जिसमें मृदा स्वास्थ्य तथा पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ उच्च गुणवत्ता के उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। इसमें वह सभी जैविक खेती की कृषि प्रक्रियायें शामिल हैं, जिनसे पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ अच्छा पदार्थ प्राप्त हो सके। इन प्रक्रियाओं में मिट्टी की स्थानीय पारिस्थितिकी का सम्मान किया जाता है और कृषि तथा पर्यावरण के सभी कारकों में उपयुक्त गुणवत्ता का ध्यान रखा जाता है। जीवन्त मृदा हेतु आवश्यक है कि सभी फसल अपशिष्ट तथा खरपतवार अपशिष्ट वापस मृदा में मिला दिये जाए। पशु गोबर व मूत्र आधारित खादों, जैव वृद्धि कारकों, तरल खादों (अन्न तथा चारा निकालकर) सीधे तथा परोक्ष रूप में मृदा को लौटा दिये जाने चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि जितना जैव अंश मानव खाद्य, रेशे, पशुचारा तथा ईंधन हेतु निकाला गया है, उतना ही जैव अंश किसी न किसी रूप में मृदा को लौटा दिया जाए और इसका वर्ष-वार पूरा लेखा-जोखा रखना चाहिए ताकि मृदा में सभी पोषक तत्वों की उपलब्धता बनाई रखी जा सके।

जैविक खेती प्रबन्धन क्यों ?- वर्तमान में यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी है कि रासायनिक कृषि पद्धति से टिकाऊ उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः पौधों को पोषण हेतु रसायनों पर निर्भरता को कम करते हुए जैविक खेती को प्राथमिकता देनी होगी।

जैविक खेती का उद्देश्य

- पर्यावरण सन्तुलन के साथ कम लागत वाली कृषि उत्पादन तकनीकी अपनाकर खेती करना
- जैविक विविधता को समृद्ध करना एवं पर्यावरण संरक्षण
- रसायन एवं कीटाणुनाशक मुक्त कृषि उत्पादों का उत्पादन
- कृषि को लाभकारी बनाकर कृषकों के आर्थिक स्तर में सुधार लाना
- कृषि उत्पादन को स्थायित्व प्रदान करते हुए, पर्यावरण संरक्षण एवं संतुलन बनाये रखते हुए कृषि को लाभकारी बनाना
- भूमि की उर्वरता जैविक खाद से बढ़ाना तथा फसल चक्र बहुफसली प्रणाली अपनाना।
- मानव स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए सुरक्षित कृषि उत्पादों का उत्पादन
- मृदा एवं जल का संरक्षण कर कृषि उत्पादन में वृद्धि करना
- उच्च गुणवत्ता के बीज का उत्पादन, *वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीवाश,* तरल खाद में आत्म-निर्भरता लाना
- प्राकृतिक ऊर्जा जैसे सौर ऊर्जा, बायोगैस आदि का उपयोग।

बहुफसल प्रणाली तथा फसल चक्रः- कई फसलों को एक साथ मिश्रित रूप में या अलग-अलग एक ही भूमि पर बोया जायें। इनमें दलहनी फसलों का भी समावेश अवश्य करना।

फसल चक्रः- मृदा को उत्पादक एवं समृद्ध बनाने तथा प्राकृतिक जीवाणुओं की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए निश्चित समय में एक ही भूमि में विभिन्न फसलें अदल-बदल कर बुआई करने को फसल चक्र कहते हैं। फसल चक्र जैविक खेती की रीढ़ है। जैविक खेती हेतु 3-4 वर्षीय फसल चक्र अपनाएं। यह मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने में भी सहायक है।

बीज उपचारः- जैव प्रबन्धन में बीज उपचार में निम्न उपाय किए जाते हैं:

- 5.3^0 सेंटीग्रेड तापक्रम पर 20-30 मिनट तक गर्म जल से उपचार
- गौमूत्र को हल्दी पाउडर मिलाकर भी बीज उपचार किया जा सकता है।
- बीजामृत से उपचार
- पंचगव्य सत एवं दशपर्णी सत से उपचार
- *ट्राइकोडर्मा विरिडी* या *बिबेरिया बेसियाना* (4 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) या *स्यूडोमोनास* 10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज
- जैव उर्वरक (*राइजोबियम/ एजोटोबैक्टर + पी.एस.बी.*) से उपचार।

बीजामृत तैयार करनाः- 5 कि.ग्रा. ताजा गोबर कपड़े की थैली में भरकर एक पात्र में रख दें फिर इस पात्र में पानी भर दें इसमें गोबर में विद्यमान सारे तत्व/अंश छनकर पानी में आ जायेंगे। दूसरे पात्र में 50 ग्राम चूना लेकर एक लीटर पानी में मिलाएं। 12-16 घण्टे बाद कपड़े की थैली को दबाकर निचोड़ लें और गोबर के अर्क के साथ पाँच लीटर गौमूत्र मिला दें। 50 ग्राम जंगल की शुद्ध मिट्टी, चूने का पानी और 20 लीटर सादा पानी मिलाकर 8-12 घण्टे पश्चात् छानकर बीज उपचार हेतु प्रयोग करें।

खाद एवं मृदा समृद्धिकरणः- जैविक खाद/*वर्मी कम्पोस्ट*, हरी खाद एवं जैव उर्वरक समुचित मात्रा में डालने से मृदा उर्वरता बढ़ती है।

फसल अवशेष, गोबर की खाद, केंचुआ खाद, *बायोडायनामिक कम्पोस्ट*, तिलहन की खली, कुक्कुट खाद, जैव उर्वरक, *रॉक फॉस्फेट*, चूना आदि का प्रयोग मृदा के समृद्धिकरण में किया जाता है। इसके प्रयोग से मृदा में लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है। सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता बनाए रखने के लिए तरल खाद का उपयोग आवश्यक है।

समस्त प्रकार की फसलों हेतु 3-4 बार तरल खाद का प्रयोग करना चाहिए। *वर्मीवाश*/कम्पोस्ट अर्क तथा गौमूत्र इत्यादि बहुत ही अच्छे वृद्धि उत्प्रेरक है। बी.डी. 500 एवं बी.डी. 501 का छिड़काव भी लाभकारी सिद्ध हुआ है।

बी.डी.-500:- देशी गाय की सींग लेकर इसमें देशी दुधारू गाय का गोबर भरकर नम्वबर से फरवरी के मध्य भूमि में 16 से 18 इंच की गहराई के गडढ़े में इस प्रकार गाड़ते हैं कि सींग का खुला भाग मिट्टी के सम्पर्क में रहे तथा गडढ़े के पास पर्याप्त नमी बने रहे। 4 माह बाद इसे निकालकर सींग से निकले मिश्रण को 25 ग्राम प्रति 13 ली. पानी मिलाकर एक एकड भूमि में सांयकाल छिड़काव करें। इसके प्रयोग से नत्रजन स्थिरीकरण तथा फास्फेट घुलनशील जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है तथा मृदा की जीवंतता में वृद्धि होती है।

बी.डी. 501:- देशी गाय की सींग लेकर इसमें महीन पिसी हुई सिलिका भरकर मार्च से अप्रैल माह के मध्य भूमि में 16-18 इंच की गहराई में इस प्रकार गाड़ते हैं कि सींग का खुला भाग मिट्टी के सम्पर्क में रहे। 6-7 माह पश्चात सींग के मिश्रण को निकाल कर शीशे के जार में संरक्षित कर लेते हैं। इस मिश्रण के 1 ग्राम भाग को 13 ली. पानी में मिलाकर एक एकड़ क्षेत्रफल में प्रातः काल फसलों में प्रयोग करते हैं। इसे फसलों के प्रारम्भिक विकास एवं परिपक्व अवस्था के पूर्व उपयोग कर सकते हैं। इससे उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ फफूँदीजनित बीमारियों का भी नियंत्रण हो जाता है।

जैव उर्वरक एवं जीवाणु कल्चर का उपयोग :- उर्वरता प्रबन्ध एवं पोषक तत्वों की निरन्तरता बनाए रखने हेतु जैव उर्वरक *राइजोबियम, एजेटोबैक्टर* आदि अत्यन्त उपयोगी निवेश है।

- **बीज उपचारः-** 200 ग्राम नत्रजन *राइजोबियम कल्वर* + 200 ग्रा. *पी.एस.बी.* का घोल बनाकर 10 कि.ग्रा. बीज उपचारित करें।
- **जड़ उपचारः-** 1-2 किग्रा. नत्रजन स्थिरीकरण जैव उर्वरक (*एजोटोबैक्टर/एजोस्पाइरिलम*) एवं *पी.एस.बी.* उर्वरक को पर्याप्त जल में (5-10 ली.) घोल बनाएं रोपाई करने वाले पौधों की जड़ों को 20-30 मिनट तक रोपाई से पहले डुबाएं।
- **मृदा उपचारः-** 2-4 कि.ग्रा. *एजेटोबैक्टर/एजोस्पाइरिलम*, 2-4 कि.ग्रा. *पी.एस.बी.* तथा 50-100 कि.ग्रा. *कम्पोस्ट* अलग-अलग ढ़ेरों में मिलाकर पानी का छिड़काव करें। 12 घण्टे बाद दोनों ढ़ेरों को मिला दें।

मृदा की समृद्धता बनाये रखने के कुछ महत्वपूर्ण उपाय एवं सूत्र

संजीवकः- 100 कि.ग्रा. गाय का गोबर + 100 ली. गौमूत्र तथा 500 ग्राम गुड़ को 500 ली. क्षमता वाले ड्रम में 300 लीटर जल में मिलाकर 10 दिन हेतु सड़ने दें। 20 गुना पानी मिलाकर एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव करें अथवा सिंचाई जल के साथ प्रयोग करें।

जीवामृतः- 10 कि.ग्रा. गाय का गोबर + 10 ली. गौमूत्र + 2 कि. ग्रा. गुड़ तथा किसी दाल का आटा + 1 कि.ग्रा. जीवंत मृदा को 200 लीटर जल में मिलाकर 5-7 दिनों तक सड़ने दें। नियमित रूप से दिन में तीन बार मिश्रण को हिलाते रहें। एक एकड़ क्षेत्र में सिंचाई जल के साथ प्रयोग करें।

अमृत पानी :- 500 ग्राम शहद के साथ 10 कि.ग्रा. गाय के गोबर को मिलाकर तब तक फेंटे (एक लकड़ी की सहायता से) जब तक वह लुगदी जैसा न हो जाये। इसके बाद इसमें 250 ग्राम गाय का देशी घी मिलाकर तेजी से मिलायें। इसे 200 लीटर पानी में मिलाकर घोल लें। इस घोल को एक एकड़ जमीन पर छिड़क दें अथवा सिंचाई वाले पानी के साथ फैला दें। 30 दिनों के बाद दूसरी खुराक के रूप में पौधों की कतारों के बीच में छिड़कें अथवा सिंचाई वाले पानी के साथ प्रयोग करें।

पंचगव्य :- 5 कि.ग्रा. गाय का गोबर, 3 लीटर गौमूत्र, 2 लीटर गाय का दूध, दही दो लीटर, गाय के दूध से बना एक कि.ग्रा. मक्खन मिलाकर सात दिनों के लिए सड़ने को रख दें और इसे रोज दिन में दो बार हिलाते रहें। सात-आठ दिन में यह तैयार हो जाएगा। तीन लीटर पंचगव्य को 100 लीटर पानी में मिला लें और मृदा पर छिड़क दें। सिंचाई के पानी के साथ मिलाकर 20 लीटर पंचगव्य को प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कना चाहिए।

दशगव्य :- पांच कि.ग्रा. गाय का गोबर, तीन लीटर गौमूत्र, दो लीटर गाय का दूध, दो लीटर दही, एक कि.ग्रा. गाय का देशी घी, तीन लीटर गन्ने का रस, तीन लीटर कच्चे नारियल का पानी, 12 केलों को मसलकर पेस्ट तैयार कर लें एवं ताड़ी या अंगूर का रस दो लीटर, एक पात्र में गाय का गोबर और देशी घी मिलाकर तीन दिनों तक सड़ने के लिए रख दें। बीच-बीच में इसे हिलाते रहना जरूरी है। चौथे दिन उपरोक्त सभी चीजें इसमें मिला दें और 15 दिनों के लिए (प्रति दिन दो बार हिलाना जरूरी है) सड़ने को रख दें। 18वें दिन यह तैयार हो जाएगा। गन्ने के रस के स्थान पर 500 ग्राम गुड़ 3 लीटर पानी के साथ मिलाकर उपयोग किया जा सकता है अथवा *ईस्ट पाउडर* को 100 ग्राम गुड़ और दो लीटर गरम पानी के साथ मिलकार उपयोग कर सकते है। छिड़काव हेतु 3 से 4 लीटर दशगव्य को 100 लीटर पानी में मिला लें। मृदा में प्रयोग हेतु 50 लीटर दशगव्य एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त है। इसे बीजोपचार हेतु भी उपयोग किया जा सकता है।

नाशी जीव प्रबंधनः- जैविक खेती प्रबंधन में रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग वर्जित है। अतः नाशी प्रबंधन प्रमुखतया निम्न विधियों द्वारा तैयार किया जाता हैः

- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करना एवं रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग करना।
- **यांत्रिक विधियां अपनाकर नियंत्रण :-** रोग प्रभावित पौधे तथा रोगग्रसित भाग को अलग कर जलाना। अण्डा तथा लार्वा समूहों को एकत्रित करके नष्ट करना, चिड़ियों के बैठने के स्थान की स्थापना, प्रकाश *ट्रैप*, चिपचिपी रंगीन पटटी तथा *फेरोमोन ट्रैप* आदि।
- **जैविक नियंत्रणः-** नाशी जीवों का भक्षण करने वाले जीव-जन्तु एवं रोगरोधी प्रजातियां नाशी जीव नियंत्रण में सबसे अधिक प्रभावी सिद्ध हुई है। *ट्राइकोडर्मा* 40-50 हजार अंडे/हे. *चैलोनस ब्लेकबर्नी* 15-20 हजार अंडे/हे. *एपानदेलिस* 15-20 हजार अंडे/हे. तथा *काइसोपरला* के 5 हजार अंडे/हे. बुआई के 15 दिन बाद तथा नाशी जीवों का भक्षण करने वाले जीव-जन्तु तथा अन्य परजीवी बुआई के 30 दिन बाद प्रयोग करने से नाशी जीवों का नियंत्रण प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है।
- स्वीकार योग्य वानस्पतिक अर्क या कुछ रसायन जैसे *कॉपर सल्फेट, सॉफ्ट सोप* आदि द्वारा।

जैविक नाशीजीव नाशकों का प्रयोगः- *टाईकोडर्मा विरिडी* या *ट्राईकोडर्मा हारजिएनम* या *बिबेरिया बेसियाना* या *स्यूडोमोनास* 4 ग्रा./कि.ग्रा. बीज अकेले अथवा संयुक्त रूप से प्रयोग करना अधिकांश बीजजनित या मृदा रोगों के नियंत्रण में प्रभावी पाया गया है। बाजार में उपलब्ध *बिवेरिया बैसीयाना, मेआरीजियम एनीसोप्लीआई* आदि विशेष नाशीजीवी समुदाय का प्रबंधन कर सकते है। *बैसिलस* जीवाणु के नाशीजीव नाशक कुछ अन्य कीट जातियों के विरूद्ध प्रभावी हैं।

- **विषाणु जैव कीटनाशकः-** *बैक्यलोवाइरस* समूह जैसे *ग्रेनूलोसिस वाइरस (जी.वी.)* तथा *न्यूक्लियर पॉली हैड्रोसिस वायरस (एन.पी.वी.)* का प्रयोग *हेलीकोवर्पा आर्मीजेरा* तथा *स्पोडोप्टेरा लिटूरा* (250 लार्वा समकक्ष मात्रा) के नियंत्रण में बहुत प्रभावी है।
- **वानस्पतिक कीटनाशकः-** बहुत से वृक्षों में कीटनाशी गुण पाए जाते हैं। अतः कारण इनका सत/अर्क नाशी जीवों के

प्रबन्धन में प्रयोग किया जाता है। इसमें नीम सर्वाधिक प्रभावशाली पाया गया है।

- **नीमः-** 200 नाशी जीव कीटों तथा सूत्रकृमियों के प्रबन्धन में प्रभावी है। *ग्रास हौपर, लीफ हौपर, प्लांट हौपर, एफिड,* मोथ तथा इल्ली के लिए नीम अर्क तथा तेल बहुत प्रभावी है।

नीम अर्कः- *लार्वा बीटल, बटर फ्लाई, मौथ, कैटरपिलर,* जैसे *कोल्सिकन बीन बीटल, कोलोरेडो पुटैटो बीटल* तथा *डाइमंड बैक मोथ, एफिडस,* सफेद मक्खी, *मिलीबग, स्केल्स* वयस्क *बग, गैमीट* तथा *स्पाइडर* आदि के लिए बहुत प्रभावी है।

नीम उत्पाद :- *ग्रासहौपर,* धान की हरी पत्ती *हौपर* तथा कपास का *जैसिड* आदि के लिए बहुत प्रभावी हैं।

कुछ अन्य नाशी जीव प्रबंधन सूत्र :- बहुत से किसानों ने बड़ी संख्या में अग्रणी सूत्र विकसित किये हैं जो विभिन्न नाशी जीवों के प्रबंधन हेतु प्रयोग किए जाते हैं। यद्यपि इन सूत्रों की वैज्ञानिक रूप में वैधता नहीं है। फिर भी इनका किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाना उनकी उपयोगिता का द्योतक है। किसान इन सूत्रों को प्रयोग करने का प्रयास कर सकते हैं क्योंकि यह बिना क्रय के उनके खेत पर ही तैयार किये जा सकते हैं। कुछ लोकप्रिय वानस्पतिक कीटनाशक निम्नवत हैं :-

गौमूत्र :- एक लीटर गौमूत्र को 20 लीटर पानी में मिलाकर पर्णीय छिड़काव करने से अनेक रोगाणुओं तथा कीटों के प्रबन्धन के साथ-साथ यह फसल वृद्धि उत्प्रेरक का कार्य भी करता है।

सड़ा हुआ छाछ पानी :- मध्य भारत के कुछ भागों में सड़ा हुआ छाछ पानी, सफेद मक्खी तथा *एफिड* आदि के प्रबन्धन हेतु प्रयोग किया जाता है।

दशपर्णी सत :- 20 कि.ग्रा. नीम पत्ती + 2 कि.ग्रा. निर्गुन्डी पत्ते + 2 कि.ग्रा. सर्पगन्धा पत्ते + 2 कि.ग्रा. गुडुची पत्ते + 2 कि.ग्रा. शरीफा पत्ते + 2 कि.ग्रा. आक पत्ते + 2 कि.ग्रा. हरी मिर्च लुगदी + 250 ग्राम लहसुन लुगदी + 5 ली. गौमूत्र + 3 कि.ग्रा. गाय के गोबर को 200 ली. पानी में कुचलें तथा एक माह तक सड़ने दें। सत को सड़ने के बाद छान लें। यह सत एक एकड़ में छिड़काव हेतु पर्याप्त होता है।

नीम गौमूत्र सत :- 5 कि.ग्रा. नीम पत्ती को पानी में कुचलें। इसमें 5 ली. गौमूत्र तथा 5 कि.ग्रा. गाय का गोबर मिलायें। 24 घण्टे तक सड़ने दें। थोड़े-थोड़े अन्तराल पर हिलायें। सत को निचोड़ने के पश्चात 100 ली. पानी में मिलायें। यह सत चूसक कीटों तथा *मिली बग* के नियन्त्रण हेतु एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव करें।

मिश्रित पत्तों का सत :- 3 कि.ग्रा. नीम पत्ती 10 लीटर गौमूत्र में कुचलें। 2 कि.ग्रा. शरीफा के पत्ते + 2 कि.ग्रा. पपीता के पत्ते + 2 कि.ग्रा. अनार के पत्ते + 2 कि.ग्रा. अमरूद के पत्तों को पानी में कुचलें। दोनों मिश्रण को मिलायें। थोड़ी-थोड़ी देर के अन्तराल में तब तक उबालें जब तक यह घटकर आधा न हो जाए। 24 घण्टे रखने के बाद निचोड़कर छानें। 2-2.5 ली. सत को 100 ली. पानी मिलाकर बना यह घोल एक एकड़ में छिड़काव हेतु पर्याप्त होता है। यह रस चूसने वाले तथा फल छेदक कीटों के नियन्त्रण में लाभकारी है।

मिर्च-अदरक का सत :- 1 कि.ग्रा. बेशरम की पत्ती + 500 ग्राम हरी तीखी मिर्च + 500 ग्राम लहसुन + 500 ग्राम नीम पत्ती सबको 10 ली. गौमूत्र में कुचलें। इसे तब तक उबालें जब तक कि यह घटकर आधा न हो जाए। सत को निचोड़कर छान लें। 2-3 ली सत में 100 ली. पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव करें। यह सत पत्ती लपेटक कीट, तना, फल तथा फली छेदक कीटों के नियन्त्रण में प्रभावी है।

प्रभावी कीटनाशी सूत्र प्रथम :- एक ताँबें के पात्र में 3 कि.ग्रा. कुचली हुई ताजी नीम की पत्तियों तथा 1 कि.ग्रा. नीम की निबौली के चूर्ण को 10 ली. गौमूत्र में मिलाएं। पात्र को अच्छी तरह से बंद करके 10 दिनों तक सड़ने के लिए रख दें। 10 दिनों के बाद इस मिश्रण को तब तक उबालें जब तक कि यह आधा न रह जाए। 500 ग्राम हरी मिर्च कुचलकर एक ली. पानी में डालकर रात भर के लिए छोड़ दें। एक दूसरे पात्र में 250 ग्राम लहसुन को पानी में डालकर रात भर के लिए छोड़ दें। अगले दिन उबला हुआ मिश्रण, हरी मिर्च का सत तथा लहसुन का सत एक साथ मिला दें। अच्छी तरह मिलाने के पश्चात छान लें। इस कीटनाशक की 250 मि.ली. मात्रा को 15 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करने से सभी फसलों में विभिन्न प्रकार के कीटों का प्रभावी नियन्त्रण हो जाता है।

प्रभावी कीटनाशी सूत्र द्वितीय :- 5 कि.ग्रा. नीम की निबौली का चूर्ण + 1 कि.ग्रा. करंज बीजों का चूर्ण + 5 कि.ग्रा. बारीक कटी बेशरम की पत्तियों + 5 कि.ग्रा. नीम की बारीक कटी पत्तियों को एक 200 ली. ड्रम में डालें। इसमें 10-12 ली. गौमूत्र डालकर ड्रम को 150 ली. तक पानी से भर दें। ड्रम को अच्छी तरह से बन्द करके 8-10 दिन तक सड़ने के लिए छोड़ दें। इसके पश्चात मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर आसवित करें। 150 ली. मिश्रण से प्राप्त अर्क एक एकड़ के लिए पर्याप्त होता है। यह एक अच्छा कीटनाशक होने के साथ-साथ अच्छा वृद्धि कारक भी है।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

फसलों में पोषक तत्वों के कार्य एवं महत्व

मोहन सिंह एवं आर.के. सिंह
कृषि विज्ञान केंद्र, मुरादाबाद

यह सर्व विदित है कि कोई भी पौधा अपना जीवन चक्र बिना पोषक तत्वों के पूर्ण नहीं कर सकता क्योंकि सभी पौधों को बढ़वार और विकास के लिये कम से कम 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन पानी तथा हवा से मिलते हैं। अन्य 13 पोषक तत्व भूमि, उर्वरक तथा खादों से मिलते हैं। ये पोषक तत्व मुख्य रूप से तीन भागों में बांटे जाते हैं।

पौधों के मुख्य पोषक तत्व

पौधों के प्रमुख पोषक तत्वों में वे तत्व आते हैं जिनको अधिक मात्रा में पौधे ग्रहण करते हैं। जैसे-नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम। इन्हें प्रधान पोषक तत्व भी कहते हैं। इनके बिना पौधे बढ़वार नहीं कर पाते हैं।

पौधों के गौण पोषक तत्व

पौधों के प्रमुख पोषक तत्वों में वे तत्व आते हैं जिनको गौण मात्रा में पौधे ग्रहण करते हैं। जैसे- गंधक, कैल्शियम एवं मैग्नीशियम। इन्हें गौण पोषक तत्व कहते हैं।

पौधों के सूक्ष्म पोषक तत्व

पौधों के सूक्ष्म पोषक तत्वों में वे तत्व आते हैं जिनको सूक्ष्म मात्रा में पौधे ग्रहण करते हैं। जैसे- बोरोन, लौह तत्व, मैगनीज, तांबा, जस्ता, मोलिब्डेनम एवं क्लोरीन।

पौधे का 94 प्रतिशत भाग कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर बनता है। शेष 6 प्रतिशत भाग अन्य सभी तत्वों से मिलकर बनता है। सभी पोषक तत्व सभी फसलों के लिये आवश्यक होते हैं। परन्तु विभिन्न फसलों में उनकी मात्रा अलग-अलग होती हैं। उदाहरण के लिये धान की एक अच्छी फसल 200 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन ग्रहण करती हैं लेकिन वह केवल 250 ग्राम जस्ता या 20 ग्राम मोलिब्डेनम (नाइट्रोजन का दस हजारवां भाग) ही ग्रहण करेगी। फिर भी सभी तत्व समान रूप से आवश्यक होंगे। यदि फसल को थोड़ी मात्रा की आवश्यकता वाले ये सूक्ष्म तत्व न मिलें तो वह फसल बड़ी मात्रा में दिए गये एन. पी.के. का पूरा उपयोग नहीं कर पाएगी।

पौधों में पोषक तत्वों के मुख्य कार्य और कमी के लक्षण

प्रत्येक पोषक तत्व को पौधे के अन्दर कुछ विशेष कार्य करने होते हैं। एक पोषक तत्व दूसरे पोषक तत्व का कार्य नहीं कर सकता। किसी एक तत्व की सान्द्रता जब निश्चित क्रान्तिक स्तर से नीचे आ जाती है तो पौधे में उस तत्व की कमी हो जाती है। इससे पौधे की जीवन क्रिया में बाधा पड़ती है तथा उसके विभिन्न अंगों जैसे-पत्तियों पर तत्व विशेष की कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

नाइट्रोजन के मुख्य कार्य

पौधों की वृद्धि एवं विकास में सहायक, सभी प्रोटीनो का आवश्यक अवयव, फसलों की व्यांत व उपज में वृद्धि करता हैं।

कमी के लक्षण: पौधों की बढ़वार में रूकावट, कल्लों की संख्या कम, पुरानी पत्तियाँ पीले रंग की, उपज व फसल की गुणवत्ता खासकर प्रोटीन में कमी हो जाती है।

नाइट्रोजन के स्रोत

यूरिया, अमोनियम, कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट, डी.ए.पी, व एन.पी.के. जटिल उर्वरकों के प्रयोग से पूरा किया जा सकता हैं।

फास्फोरस के मुख्य कार्य

जड़ों की वृद्धि में सहायक, कोशिका विभाजन, पौधों की वृद्धि व उपज में सहायक, फूल व फलों के विकास के लिए तथा फसल शीघ्र पकने के लिए जरूरी तत्व है।

कमी के लक्षण

पौधों की बढ़वार एवं जड़ों के विकास में रूकावट, पुरानी पत्तियाँ नीले हरे रंग की तथा फसल का देर से पकना फास्फोरस की कमी के मुख्य लक्षण होते हैं।

फास्फोरस के स्रोत

डाई अमोनियम फास्फेट, सिंगल सुपर फास्फेट, रॉक फास्फेट, व *एन.पी.के.* जटिल उर्वरकों से पूर्ण होते हैं।

पोटेशियम के मुख्य कार्य

प्रोटीन, मंड तथा शर्करा के उत्पादन एवं प्रवाह को नियंत्रित करना, पौधों को रोगों व कीड़ों-मकोड़ों, पाले व गिरने से बचाव, तथा फसलों की गुणवत्ता में सुधार होता हैं।

कमी के लक्षण

पुरानी पत्तियों की नोकों का रंग भूरा पड़ना, तने कमजोर, धीमी वृद्धि, दाने सिकुड़े हुये तथा पत्तियों का जल्दी गिरना प्रारम्भ हो जाता हैं।

पोटेशियम के स्रोत

यह पोषक तत्व *म्यूरेट आफ पोटाश, सल्फेट आफ पोटाश* तथा *एन.पी.के.* जटिल उर्वरक से प्राप्त होता हैं।

गंधक के मुख्य कार्य

मिथियोनिन, सिस्टीन, ग्रंथियों, प्रोटीन व तेल निर्माण में सहायक हैं।

कमी के लक्षण

नई पत्तियां हल्की-हरी या पीली, कठोर एवं भंगुर तने तथा कई लक्षण नाइट्रोजन की तरह भी होते हैं।

गंधक के स्त्रोत

गंधक उक्त उर्वरक- जैसे *जिंक सल्फेट, अमोनियम सल्फेट, सिंगल सुपर फास्फेट, जिप्सम, सल्पोमैग, पायराइट।*

कैल्शियम के मुख्य कार्य

जड़ों के विकास एवं पौधों के अंगों की रचना के लिये जरूरी शर्करा के प्रवाह में मदद करता हैं तथा पौधों में पानी की पूर्ति में सहायक होता हैं।

कमी के लक्षण

नई पत्तियाँ सर्वप्रथम प्रभावित होती हैं तथा तने कमजोर, अविकसित पुष्पक्रम का गिरना, मूंगफली में दाना ठीक से न पड़ना इस तत्व की कमी के मुख्य लक्षण हैं।

कैल्शियम के स्रोत

यह तत्व जिप्सम, *चूना, कैल्शियम* तथा *अमोनियम नाइट्रेट, सिंगल सुफरफास्फेट, बेसिक स्लेग* आदि से प्राप्त होते हैं।

मैग्नीशियम के मुख्य कार्य

हरित लवक *(क्लोरोफिल)* का एक मुख्य अवयव हैं तथा पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन के लिये आवश्यक हैं।

कमी के लक्षण

पुरानी पत्तियाँ सर्वप्रथम प्रभावित होती हैं। हरे रंग की कमी जिसके कारण पत्ती की शिराओं के बीच में पीलापन तथा टहनियाँ कमजोर हो जाती हैं।

मैग्नीशियम के स्रोत

मैग्नीशियम सल्फेट, डोलोमाइट (अम्लीय मिट्टियों में) *सल्पो मैग।*

फसलों में सूक्ष्म पोषक तत्वों के कार्य

पौधों में बढ़वार एवं विकास के लिये कम से कम 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती हैं। इनमें से कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन नामक तीन तत्व हवा एवं पानी से मिल जाते हैं तथा अन्य 13 तत्व भूमि, उर्वरक तथा खादों से मिलते हैं। जिनमें से 3 प्रमुख तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश हैं। 3 गौण तत्व गंधक, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम हैं और शेष 7 सूक्ष्म तत्व बोरान, लोहा, मैगनीज, ताबाँ, जस्ता, मोलिब्डेनम तथा क्लोरीन हैं।

बोरान के मुख्य कार्य

पौधों के नये अंगों के निर्माण, जटिल रासायनिक प्रक्रियाओं एवं कोशिकाओं के विभाजन में सहायक, पोटेशियम तथा कैल्शियम के अनुपात को नियंत्रित करना, शर्करा, न्यूक्लिक अम्ल तथा हार्मोन्स के निर्माण में सहायक साथ ही दलहनी फसलों की जड़ ग्रन्थियों में सहयोग देता हैं।

कमी के लक्षण

बोरान की कमी के लक्षण कलिकाओं तथा नई पत्तियों में दिखाई देते हैं तथा बढ़वार रूक जाती हैं। पत्तियाँ मोटी हो जाती हैं। फूल, कलियाँ आदि गिरने लगती हैं। नई वृद्धि सूख जाती हैं। फल एवं बीज अच्छी तरह नहीं बन पाते हैं। जड़ वाली फसलों में *ब्राउन हार्ट* रोग हो जाता हैं।

बोरान के स्रोत

बोरान की पूर्ति के लिये *बोरेक्स, सौल्युवर* एवं सुहागा का प्रयोग करना उचित रहता हैं।

लौह तत्व के मुख्य कार्य

हरे पदार्थ के निर्माण में सहायक होता हैं। शर्करा एवं प्रोटीन संश्लेषण में सहयोगी तथा कुछ एंजाइम का वाहक है और पौधों की श्वसन क्रिया में सहयोग करता है।

कमी के लक्षण

लोहे की कमी से पत्तियाँ लाल रंग की हो जाती हैं। नई पत्तियों की शिराओं के बीच से हरा रंग गायब होने लगता है। धान की नर्सरी में पीलापन आ जाता है।

लौह तत्व के स्त्रोत

फेरस सल्फेट, आयरन चिलेटेड से प्राप्त होता है।

मैग्नीज के मुख्य कार्य

मैग्नीज पौधों में नाइट्रोजन एवं लोहे की जैविक क्रियाओं को प्रभावित करता है तथा पौधों में *एस्कार्बिक एसिड* के शोषण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

कमी के लक्षण

मैग्नीज की कमी के लक्षण सबसे पहले पौधों की नई पत्तियों पर प्रकट होते हैं। पत्तियों का रंग पीला धूसर या लाल धूसर हो जाता है तथा शिराएं हरी होती हैं। पत्तियों के किनारे और शिराओं का मध्य भाग हरीतिमाहीन हो जाता है और पत्तियाँ अपने सामान्य आकार में ही रहती हैं।

मैग्नीज के स्रोत

मैग्नीज की पूर्ति करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त उर्वरक *मैग्नीज सल्फेट* है।

ताँबा के मुख्य कार्य

ताँबा एंजाइम में *इलेक्ट्रान कैरियर* का काम करता है। ये *एंजाइम* पौधों में *ऑक्सीडेशन* और *रिडक्शन* क्रिया में सहयोगी होते हैं। इसी क्रिया के द्वारा पौधों का विकास एवं प्रजनन होता है।

कमी के लक्षण

नई पत्तियाँ एक साथ गहरी पीले रंग की हो जाती है तथा सूखकर गिरने लगती है। खाने वाली फसलों के गुच्छों में वृद्धि होती है तथा शीर्ष में दाने नहीं होते हैं।

ताँबा के स्रोत

ताँबें की कमी को *कॉपर सल्फेट* अर्थात तूतिया या नीला थोथा से प्राप्त होता हैं।

जस्ता के मुख्य कार्य

जस्ता पौधों में *एंजाइम* क्रियाओं को उत्तेजित करता हैं तथा रोग रोधी क्षमता में वृद्धि करता हैं। नाइट्रोजन एवं फास्फोरस के उपयोग में सहायक होता है।

कमी के लक्षण

जस्ता की कमी से पत्तियों पर सफेद अथवा पीले रंग की धारियाँ बनती हैं जो बाद में भूरे रंग अथवा कांसा के रंग में परिवर्तित हो जाती हैं साथ ही पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा बालियां देरी से निकलती हैं।

जस्ता के स्रोत

जिंक सल्फेट, चिलेटेड जिंक, कार्बनिक खादें आदि से प्राप्त होता हैं। *जिंक सल्फेट मोनो हाइड्रेटेड* और *हेप्टा हाइड्रेटेड* दोनों रूपों में उपलब्ध रहता हैं।

मॉलिब्डेनम के मुख्य कार्य

दलहनी फसलों की जड़ों में नाइट्रोजन संग्रह करने वाले जीवाणुओं के कार्य में सहयोगी होता हैं। *अमीनो एसिड* तथा प्रोटीन निर्माण की समस्त क्रियाएं शिथिल हो जाती है। पौधों की रोगरोधी क्षमता कम होने लगती है।

कमी के लक्षण

इसकी कमी से पौधों की नई पत्तियां सूख जाती हैं तथा हल्के हरे रंग की हो जाती हैं। पत्तियों की मध्य शिराओं को छोड़कर पूरी पत्तियों पर सूखे धब्बे दिखाई देते हैं। साथ ही नाइट्रोजन के उचित ढंग से उपयोग न होने के कारण पुरानी पत्तियाँ हरीतिमाहीन होने लगती है।

मॉलिब्डेनम के स्रोत

यह तत्व *अमोनियम मोलिब्डेट* उर्वरक में पाया जाता है इसमें 52 प्रतिशत *मोलिब्डेट* होता है तथा नाइट्रोजन भी रहता है।

क्लोरीन के मुख्य कार्य

पौधों की वृद्धि में सहयोगी होता हैं, पौधों को लाल, नीले, बैगनी रंगों को पैदा करने में सहयोगी होता हैं, इसकी उपस्थिति से फसलें शीघ्र पकती हैं साथ ही मैग्नीशियम का अवशोषण बढ़ाता है।

कमी के लक्षण

क्लोरीन की अनुपस्थिति से पौधों के ऊतकों में पानी तथा क्लोरीन का सम्बन्ध बिगड़ जाता हैं। जिससे ऊतक सूखने लगते हैं और इसकी कमी से फसलें देर से पकती हैं।

क्लोरीन के स्रोत

क्लोरीन की पूर्ति के लिए कार्बनिक खादों, पानी आदि से हो जाती हैं।

ध्यान देने योग्य बातें

सभी पोषक तत्व भूमि में उपस्थित होते हैं। फसलों द्वारा निरन्तर पोषक तत्वों का उपयोग, भूमि का कटाव, पानी का रिसाव आदि के कारण धीरे-धीरे भूमि में एक या अधिक तत्व की कमी हो जाती है। इस कमी से स्पष्ट होता हैं कि भूमि के अपने भण्डार से फसल के लिए उस तत्व की आवश्यक मात्रा में आपूर्ति करने की क्षमता न रहना। जब अधिक उपज और सघन खेती के कारण फसल को पोषक तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती हैं तो यह कमी और भी व्यापक और तीव्र हो जाती हैं। तब कृषकों को उर्वरकों और खादों से पोषक तत्वों की आपूर्ति करनी होती हैं ऐसा करने से किसान अपनी भूमि की शक्ति बढ़ाता हैं।

ज्ञान-विज्ञान प्रभाग

बदलते परिवेश में गृह वाटिका की उपयोगिता

सत्यम चौरिहा[1] एवं ममता त्रिपाठी[2]
[1]दीन दयाल शोध संस्थान, चित्रकूट, [2]तुलसी कृषि विज्ञान केंद्र, गनिवा

गृह वाटिका से तात्पर्य सब्जी एवं फल उत्पादन की उस व्यवस्था से होता है जिसमे परिवार के सदस्यो द्वारा अपने पोषण के लिए फल एवं सब्जियाँ उगाई जाती हैं। मुख्यतः हर व्यक्ति के अपने घर के आस-पास थोड़ी बहुत भूमि उपलब्ध होती है।

गृह वाटिका के लाभ

परिवार का पोषण एवं घरेलू खर्च में बचत

गृह वाटिका से पूरे परिवार के लिए मौसम के अनुसार सब्जियों एवं फलों की आपूर्ति होती रहती है जिसके सेवन से पूरे परिवार का स्वास्थ्य ठीक रहता है। यदि मध्यम परिवार द्वारा मौसमी फल एवं सब्जियों पर प्रति माह होने वाला खर्च ₹ 1,000-1,500 पड़ता है जिसका वर्ष भर का खर्च ₹ 12 से 15 हजार पड़ता है।

गृह वाटिका द्वारा किशोर लड़कियों एवं महिलाओं का पोषण

समान्यतः परिवार में किशोर लड़कियों के स्वास्थ्य एवं गरीबी के बीच सीधा संबंध होता है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में कुपोषण की संख्या अधिक पायी जाती है। कुपोषण के कारण उनके शरीर का विकास नहीं होता है और जब 13-18 वर्ष की उम्र की होती है तो उनमें मासिक धर्म की शुरूआत होती है तब उनके अंदर लौह तत्व की कमी होने से वे रक्ताल्पता *(एनीमिया)* की शिकार हो जाती हैं। ऐसी लड़कियों का जब कम उम्र में विवाह हो जाता है तो उनसे कमजोर बच्चे पैदा होते हैं। रक्तल्पता के कारण गर्भवती, महिलाओं में प्राकृतिक गर्भपात समय से पूर्व बच्चों का जन्म, कम वजन के बच्चे का जन्म आदि विसंगतिया उत्पन्न होती हैं। गृह वाटिका के जरिये इस समस्या का बहुत अच्छे ढंग से समाधान किया जा सकता है।

गृह वाटिका का उपयोग सब्जियों की जैविक खेती के रूप में

गृह वाटिका का कम क्षेत्रफल होने के कारण हम रसायनिक उर्वरकों की जगह कार्बनिक एवं जैविक उर्वरकों का प्रयोग कर सकते हैं। पत्ती वाली सब्जियां जैसे- पालक, चौलाई, धनिया, मेथी, सलाद पत्ते, आदि में रसायनिक उर्वरकों विशेषकर नाइट्रोजनधारी उर्वरकों जैसे- यूरिया आदि का प्रयोग करना लाभप्रद नहीं होता है। इससे इन सब्जियों में नाइट्रेट का संचयन बढ़ जाता है। शरीर में अवशोषित नाइट्रेट नाइट्राइट आयन में बदल जाता है और इसकी अधिकता होने पर मेथेनोग्लोबिनिमिया की बीमारी हो जाती है आजकल जैसे जैविक विधि से उगाई गयी सब्जियों की महत्ता बढ़ रही है वैसे-वैसे खाद बनाने के नए तरीके जैसे वर्मीकम्पोस्ट, पीट मास आदि के उपयोग की पहल की जा रही है यदि हम अपने गृह वाटिका में लगाए गए आम, नीबू के पेड़ के पास एकत्र की गई पत्तियां एवं अन्य कार्बनिक पदार्थों के मलबे में केचुए को पाल कर वर्मीकम्पोस्ट तैयार करें तो उन पौधों को अलग से उर्वरक देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और इतनी पर्याप्त मात्रा में वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाएगा कि उससे हम सब्जियाँ एवं उनकी पौध तैयार करने में प्रयोग कर सकते हैं।

विषैले कीटनाशी रसायनों से मुक्त सब्जी उत्पादन में गृह वाटिका का उपयोग

गृह वाटिका की सबसे अच्छी सुविधा यह है कि हम विषैले कीटनाशी रसायन मुक्त सब्जियों का उत्पादन कर सकते हैं। कीटनाशी दवाओं के प्रयोग में सबसे बड़ी सावधानी उनके चुनाव एवं प्रतीक्षा समय की होती है प्रतीक्षा समय से मतलब यह है कि

किसी कीटनाशी दवा के प्रयोग में कितने दिन बाद उत्पाद को प्रयोग में लाया जा सकता है।

कीटनाशी दवाओं के प्रयोग में सबसे बड़ी सावधानी उनके चुनाव एवं प्रतीक्षा के समय होती है। पर्यावरण की दृष्टि से इन विषैले कीटनाशी रसायनों ने भूमि, जल एवं वायु को तो प्रदूषित किया ही है इसके साथ ही इन रसायनों ने अन्य जीव-जन्तुओं को भी प्रभावित करके पूरे पारिस्थातिकी तंत्र के संतुलन को असंतुलित कर दिया है। हम ऐसे रसायनों का चुनाव कर सकते हैं जिनकी प्रतीक्षा अवधि कम है तथा ऐसे वानस्पतिक स्रोतों जैसे- नीम या शरीफा से तैयार कीटनाशी रसायन का प्रयोग कर सकते हैं। नीम आधारित कीटनाशी रसायन *जैसिड,* एफिड्स और पत्तियां में सुरंग बनाने वाले कीटों के लिए काफी कारगर होते हैं। नीम की गुठली के सत्त से गोभीवर्गीय सब्जियों में लगने वाले प्रमुख कीट *डायमंड ब्लाक मोथ* का नियंत्रण हो सकता है। नीम की खली के प्रयोग से जमीन में लगने वाले कीटों की रोकथाम हो जाती है। इसी प्रकार शरीफे के बीज के गूदे को निकालकर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से एफिड और अन्य कीटों के प्रकोप से बचा जा सकता है।

बच्चों के लिए गृह वाटिका का उपयोग प्रशिक्षण स्थल के रूप में

छोटे एवं स्कूली बच्चों के लिए आस-पास की वनस्पतियां फूल-फल, वृक्ष विविध प्रकार की सब्जियों की जानकारी देने का इससे अधिकतम कोई सुगम साधन हो ही नहीं सकता, जहाँ बच्चे स्वयं बीज बोकर पौधे तैयार करें। उनमें फूल व फल आते देखकर खुशी होती है। गृह वाटिका में बच्चों से काम लेते समय उनके अभिभावकों की विभिन्न सब्जियों, फल-फूल की पूरी जानकारी देते रहना चाहिए।

गृह वाटिका का उपयोग एक व्यायाम स्थल के रूप में

गृह वाटिका में यदि सुबह शाम आधे घंटे कार्य कर लिया जाय तो इससे अच्छा व्यायाम होगा और घर को आर्थिक लाभ भी मिलेगा।

विद्यालय, देव स्थलों, पंचायत एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों में गृह वाटिका की स्थापना पोषण वाटिका के रूप में

गाँव या शहर में स्थित प्राथमिक विद्यालय, पंचायत भवनों एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों के आस-पास काफी जमीन रिक्त पड़ी रहती है। यदि ऐसी जमीन को गृह वाटिका के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय तो उस स्थान का सुंदरीकरण भी हो सकता है साथ ही सब्जियों की अच्छी उपज भी ली जा सकती है। विद्यालयों में इस प्रकार की गृह वाटिका का उपयोग उन्हें पोषण युक्त आहार देने में किया जा सकता है।

गृह वाटिका कार्य में बुजुर्ग एवं सेवानिवृत्त व्यक्तियों की भागेदारी

बुजुर्ग एवं सेवानिवृत्त व्यक्तियों के लिए गृह वाटिका अत्यंत उपयोगी होती है ऐसे व्यक्तियों के पास पर्याप्त समय रहता है जिसका गृह वाटिका में प्रयोग करके फल फूल एवं सब्जियाँ उगाने में बहुत अच्छे ढंग से सदुपयोग हो सकता है।

पारिवारिक स्नेह एवं सौहार्द स्थल के रूप में गृह वाटिका

मुख्यतः परिवार के सभी सदस्यों का कार्य भिन्न होता है। वह गृह वाटिका से अच्छी जगह हो ही नहीं सकती जहाँ परिवार के सभी सदस्य मिल-जुल कर एक कार्य का सम्पादन करें इससे स्नेह का आदान-प्रदान होता है।

गृह वाटिका द्वारा हरी, स्वच्छ एवं प्रदूषण मुक्त सब्जियों की उपलब्धता

सब्जियाँ जिनको हम बाजार से खरीदते हैं उनकी साफ सफाई के बारे में बराबर प्रश्न चिन्ह लगा रहता है। कभी-कभी सब्जी उत्पादक सिंचाई के लिए गंदे नाले या ऐसे तालाब के पानी का प्रयोग करते हैं जिसमें स्वास्थ्य के लिए हानिकारक जीवाणुओं एवं अन्य सूक्ष्मजीवों की संख्या अधिक होती है। जिसके सेवन करने से बीमारी होने का भी भय रहता है।

गृह वाटिका से गर्भवती महिलाओं का स्वास्थ्य

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए एवं उसके द्वारा विभिन्न कार्यों को संपादित करने के लिए उसे विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की जरूरत होती हैं। पोषक तत्व एक प्रकार से रासायनिक पदार्थ हैं जो हमारे भोजन में उपलब्ध रहते हैं। आहार में पाये जाने वाले पोषक तत्वों को हम मुख्य रूप से प्रोटीन, कार्बोहाड्रेट, खनिज तथा विटामिन्स में बाँटते हैं। सब्जियों व फलों में पोषक तत्व विभिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। इन विभिन्न पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए गृह वाटिका में उगाई गई सब्जियों का लाभ सामान्य से सामान्य व्यक्ति को आसानी से उपलब्ध होता है।

प्रोटीन की आवश्यकता

प्रोटीन की आवश्यकता उसकी गुणवत्ता पर निर्भर होती है।

बच्चों की प्रोटीन की आवश्यकता वयस्क की तुलना में अधिक होती है। क्योंकि उनमें नए ऊतकों का निर्माण होता है। इसी प्रकार गर्भवती महिलाओं व दुग्धपान कराने वाली महिलाओं को प्रोटीन की आवश्यकता अधिक होती है। गर्भवती महिला को प्रतिदिन 65 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है। *फ्रेंचबीन,* चौलाई, करी पत्ता, सहजन पत्ती, सब्जी मटर में प्रोटीन अधिक मात्रा में पायी जाती है।

ऊर्जा की आवश्यकता

एक सामान्य महिला को 2925 किलो कैलोरी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। इनकी तुलना में गर्भवती व दुग्धपान कराने वाली महिला को 350 से 550 किलो कैलोरी की अधिक आवश्यकता होती है। महिला को गर्भावस्था एवं दुग्धपान कराने के समय अधिक ऊर्जा की अवश्यकता होती है। शकरकंद, *फ्रेंचबीन,* केला, शरीफा आदि से अधिक कैलोरी मिलती है।

कैल्शियम की आवश्यकता

कैल्शियम की आवश्यकता बढ़ने वाले बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं में भ्रूण के विकास के लिए बहुत अधिक होती है। इसी प्रकार दुग्धपान कराने वाली माताओं के लिए भी कैल्शियम की अधिक आवश्यकता होती है। दुग्धपान के दौरान छोटे बच्चों को दूध के जरिये जो कैल्शियम मिलता है वह माँ के शरीर से आता है और यदि इस अवस्था में माँ के भोजन में प्रचुर मात्रा में कैल्शियम नहीं होगा तो उसकी आपूर्ति उसकी माँ की हड्डियों से होगी और अंततः उसकी हड्डियाँ कमजोर पड़ जाएगी। गर्भवती एवं दुग्धपान कराने वाली महिला को प्रतिदिन 1,000 मि.ग्रा. कैल्शियम की आवश्यकता होती है। चौलाई में 364 मि.ग्रा., करी पत्ता में 830 मि.ग्रा., सहजन पत्ती में 440 मि.ग्रा., मेथी पत्ता में 395 मि.ग्रा. तथा सरसों पत्ती में 370 मि.ग्रा. कैल्शियम होता है।

लौह तत्व

आहार में लौह तत्व की कमी होने पर रक्त में हीमोग्लोबिन का निर्माण रूक जाता है। लौह तत्व की कमी महिलाओं व लड़कियों में अधिक होती है। गर्भवती महिलाओं व दुग्धपान कराने वाली महिला को 38 मि.ग्रा. लौह तत्व की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। हरी पत्ती वाली सब्जियाँ लौह तत्व की बहुत अच्छा स्रोत होती है, जबकि धान्य पदार्थ यहाँ तक की दूध में भी लौह तत्व की मात्रा बहुत कम होती है। यदि हम अपनी गृहवाटिका में हरी पत्ती वाली सब्जियाँ उगाएं व प्रतिदिन 50 ग्राम हरी पत्ती वाली सब्जी का उपयोग करें तो लौह तत्व संबंधी समस्याएं व कुपोषण से दूर रहा जा सकता है। 100 ग्राम चौलाई में 38.5 मि.ग्रा. लौह तत्व होता है।

विटामिन्स

विटामिन्स एक प्रकार के कार्बनिक पदार्थ हैं, जो आहार में बहुत अल्प मात्रा में होते हैं। यदि शरीर में विटामिन्स की ठीक ढंग से आपूर्ति नहीं होती तो अन्य अवयवों का भी अच्छी तरह से शोषण नहीं होता है। विटामिन ए की कमी से आँखों का अंधापन *मीजिल्स* की समस्या आती है और विटामिन ए की कमी से गर्भवती महिलाओं की मौत भी हो जाती है। गर्भवती महिला को प्रतिदिन 2,400 माइक्रो ग्राम बीटा कैरोटीन की आवश्यकता होती है। हरी पत्ती वाली सब्जियाँ जैसे चौलाई, पालक, धनिया, सहजन की पत्ती, गाजर, पीला कुम्हड़ा, गाजर, पपीता में विटामिन ए पाया जाता है। कुपोषण दूर करने के लिए सब्जियों एवं फलों का प्रयोग प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 250 ग्राम फल व 300 ग्राम सब्जी खानी चाहिए जिसमें 115 ग्राम पत्ती वाली सब्जियाँ, 70 ग्राम जड़ तथा कंद वाली सब्जियाँ, 115 ग्राम अन्य सब्जियाँ होनी चाहिए। सब्जियों एवं फलों का मानव के लिए आवश्यक विटामिन्स और सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति में बहुत बड़ा योगदान होता है। पोषण की समस्या मात्र खाद्य पदार्थों की उपलब्धता से ही संबन्धित नहीं है बल्कि मनुष्य की संपन्नता तथा आहार प्रवृत्ति से जुड़ी है। किसी क्षेत्र विशेष में किस प्रकार का खाद्य पदार्थ उपलब्ध है और उपलब्ध खाद्य पदार्थ को किस प्रकार उपयोग में लाया जाता है उसका भी पोषण से सीधा सम्बन्ध होता है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

गुड़ की उपयोगिता

मिथिलेश तिवारी, राजीव रंजन राय, दिलीप कुमार एवं एस.आई. अनवर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

प्राचीन ग्रंथों में गन्ने की प्रजातियों का उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण में श्वेत ईख का उल्लेख है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'भाव प्रकाश निघन्टू' में गन्ने को पंचतणम् वर्ग में रखा गया है जिसमें उस समय प्रचलित पौण्ड्रक, मीरूक, वंशक, शतपोरक, नीलपोक, पापसेक्ष, काण्डेक्षु, सुचिपत्रक, नेपाल, दीर्धपत्रक, नीलपोर, कोशकृत, मनोगुप्त आदि कुछ प्रजातियों तथा उनके रस के भेषज्य गुण-दोषों का वर्णन भी मिलता है।

गन्ने की खेती का प्रारम्भ लगभग 6,000 ई.पू. न्यू गिनी में हुआ। लगभग 1000 ई.पू. मानव प्रवास मार्गों के साथ-साथ इसकी खेती धीरे-धीरे दक्षिण पूर्व एशिया, भारत और पूर्व में प्रशांत महासागर के देशों में फैल गई। भारतीय उपमहाद्वीप में गन्ने की खेती का एक बहुत लम्बा इतिहास रहा है। सबसे पुराना संदर्भ आर्युवेद (1500-800 ई.पू.) में मिलता है। विश्व में फैलाने में अरब देशों जैसे सीरित, साइप्रस, क्रेते आदि तक पहुँचा गया। पुर्तगाली 1520 ई. के आसपास गन्ने को मडिरा लाए और यहाँ से गन्ने को कैनरी द्वीप डोमिनिकन गणराज्य में पहुँचाया गया। गन्ने की फसल 1520 ई. के बाद मध्य और दक्षिण अमेरिका और बाद में ब्रिटेन, फ्रांस और वेस्ट इंडीज तक पहुँच गई। आज विश्व में 100 से अधिक देशों में गन्ने की खेती की जाती है।

भारत में गन्ने की खेती लगभग 50.8 लाख हेक्टेयर में की जाती है एवं वार्षिक उत्पादन लगभग 3576 लाख टन है। गन्ने के कुल उत्पादन का लगभग 16 प्रतिशत अंश गुड़ उद्योग में जाता है।

भारत में प्राचीन काल से ही गुड़ गन्ने के रस से बनाया जाता रहा है। वैज्ञानिक विधि से गन्ने के रस की सफाई और स्वास्थकारी विधि से बनाया हुआ गुड़ मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है। वैज्ञानिक विधि से बना गुड़ चीनी और खण्डसारी की तुलना में चिकित्सकीय एवं औषधीय प्रणाली में प्रयोग किया जाता रहा है। गुड़ हमारे शरीर पर जैविक प्रभाव जैसे रक्त शोधन, रक्तचाप को बनाए रखने, अमावतरोधी, मूत्रवर्धक, *एंटी ऑक्सीडेन्ट, लैक्सेटिव, एंटी थ्रोम्बोसिस,* धुएँ के वातावरण में श्रमिकों का बचाव इत्यादि करता है। गुड़ का चिकित्सकीय प्रयोग पीलिया, रक्ताल्पता, खाँसी एवं जुकाम एवं सांस के रोगों के उपचार में किया जाता है, गुड़ को खाने से मनुष्य को ऊर्जा तथा कई सूक्ष्म पोषक तत्व मिलते हैं, जो मानव स्वास्थ्य तथा रोग से बचने के लिए जरूरी हैं।

रक्तचाप नियंत्रणः गुड़ में सोडियम तत्व की मात्रा कम होने के कारण यह शरीर के रक्तचाप को बढ़ने नहीं देता है।

रक्ताल्पताः हमारे देश में बच्चों, किशोरियों, गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं में रक्ताल्पता व्याप्त है। 80 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं रक्ताल्पता से ग्रसित हैं जिसके कारण 30-40 प्रतिशत नवजात शिशुओं के जन्म के समय वजन कम पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में 84 प्रतिशत लड़कियाँ (आयु 14-18 वर्ष) रक्ताल्पता से पीड़ित हैं। जिसका मुख्य कारण हमारे खाने में स्वास्थ्य के लिए कुछ जरूरी तत्व जैसे लोहा व ताँबा की कमी है। इसके अलावा ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में उपलब्ध होते हुए भी लोगों को गुड़ की पौष्टिकता के बारे में पता नहीं है।

***एंटीआक्सीडेंट* तथा शरीर की प्रतिरोधक क्षमता :** गुड़ में *एंटी ऑक्सीडेट* जैसे जस्ता, मैंगनीज व सेलेनियम पाया जाता है। जिनके कारण गुड़ के प्रयोग से श्वसन संक्रमण से बचा जा सकता है। श्रमिक जो धुएं के वातावरण में काम करते हैं। यदि वे गुड़ खाएं तो उनके फेफड़ों पर धुएं का असर कम होता है।

त्वचाः गुड़ में ताँबा और जस्ता होने से मुहाँसों से बचा जा सकता है। ताँबा और जस्ता दोनों ही त्वचा के रख-रखाव के लिए जरूरी है।

शरीर का वजनः गुड़ खाने से शरीर का वजन नियंत्रित रखा जा सकता है।

कब्जः गुड़ के सेवन से कब्ज की शिकायत को दूर किया जा सकता है, क्योंकि यह एक लैक्जेटिव की तरह कार्य करता है।

थकावट दूर करनाः गुड़ में मैग्नीशियम होने के कारण माँसपेशियों में आराम मिलता है तथा तंत्रिका तंत्र प्रबल होता है।

कामोत्तेजक गुड़ः गुड़ का कामोत्तेजक गुण गुड़ में मौजूद सूक्ष्म तत्वों के कारण होता है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

औषधीय गुणों वाला फल : आँवला

ब्रह्म प्रकाश, लाल सिंह गंगवार, अश्विनी कुमार शर्मा, अनीता सावनानी, अतुल कुमार सचान एवं ओम प्रकाश
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

आँवला भारत मध्य पूर्वी तथा कुछ दक्षिण पूर्वी देशों में पाया जाना वाला एक अत्यंत खट्टा फल है जिसका वानस्पतिक नाम *'एम्बलिका ओफिसिनेलिस'* अथवा *'फाईलेंथस एम्बलिका'* है। आँवले में शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट्स गुणों के कारण इसको प्रायः त्वचा तथा बालों के स्वास्थ्य तथा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु आयुर्वेदिक औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। आँवला *यूफोरबिएसी* कुल का पौधा है। यह भारतीय उपमहाद्वीप के जंगलों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में शीतकाल में पकता है तथा भारत में इसे एक पवित्र वृक्ष माना जाता है।

इसका फल हल्के हरे रंग का होता है तथा खाने में अत्यंत खट्टा व रेशेदार होता है। भारत में इसको नमक व पिसी मिर्च के साथ खाया जाता है। इसका अचार तथा मुरब्बा भी बनाया जाता है। यह त्रिफला तथा च्यवनप्राश दोनों ही लोकप्रिय आयुर्वेदिक औषधियों का प्रमुख अवयव है एवं अच्छे मानव स्वास्थ्य के लिए परंपरागत हर्बल भारतीय उत्पाद है। आँवला चूर्ण, रस, तेल, गोलियों तथा मसाले जैसे कई रूपों में उपलब्ध है। अपने पोषक लाभों के लिए आँवला चाय तथा सूखे आँवले को भी बड़ी संख्या में लोगों द्वारा प्रयोग किया जाता है।

100 ग्राम कच्चे आँवले में औसतन 478 मिलीग्राम विटामिन सी तथा 5 ग्राम रेशे होते हैं। प्रजाति, मौसम व किस्म के आधार पर इसमें परिवर्तन हो सकता है। विटामिन सी का प्रचुर स्रोत होने के कारण आँवला स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होता है। आँवले में विटामिन सी की मात्रा नारंगी के रस की तुलना में 20 गुना अधिक होती है। इसके साथ ही इसमें विभिन्न प्रकार के खनिज तत्व भी पाये जाते हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभप्रद होते हैं। इसमें मिलने वाले पोषक तत्वों के कारण आँवला न केवल स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है, अपितु सौंदर्य बढ़ाने में भी मददगार है। आँवले में विटामिन ए, गैलिक एसिड, टैनिक एसिड, निर्यास, शर्करा, एलब्यूमिन सेल्युलोज, मैगनीशियम, लौह तत्व, फॉलिक एसिड, पोटैशियम एवं कैल्शियम पाया जाता है। आँवला ग्राही, मूत्रल, रक्तशोधक एवं रूचिकर होने से अतिसार, प्रमेह, दाह, अम्लपित्त, रक्तपित्त, श्वास, खाँसी इत्यादि रोगों को नष्ट करता है, दृष्टि को तेज करता है एवं आयु की वृद्धि करता है। आँवला त्रिदोष हर है। अम्ल से वात, मधुर शीत से पित्त एवं रूक्षकषाय होने के कारण कफ को समाप्त करता है। आँवला हृदय को बल देने वाला एवं शोणित स्थापन है। आँवला रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने, आयु बढ़ने की प्रक्रिया को धीमे रखने, गले के संक्रमण के इलाज, रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने एवं हृदय के स्वास्थ्य में सुधार के लिए अत्यंत लाभकारी होता है। मूत्रवर्धक होने के कारण यह भोजन का अवशोषण बढ़ाता है, पेट के अम्लों में संतुलन रखता है, यकृत को स्वस्थ्य रखता है, मस्तिष्क को पोषण देकर मानसिक स्वास्थ में सुधार लाता है। यह फेफड़ों को मजबूत करने, मूत्र प्रणाली में सहायक, त्वचा की गुणवत्ता के सुधार तथा स्वस्थ बालों में सहायक होता है। यह फल शरीर को ठंडा रखकर विषाक्त पदार्थों को शरीर से उत्सर्जित करता है। आँवला दृष्टि की देखभाल करता है तथा मांसपेशियों की *टोनिंग* में सुधार लाता है।

आँवले का सेवन कैसे करें ?

आँवले का सेवन विभिन्न रूपों में किया जाता है। ताजा आँवला बाजार में सुगमता से उपलब्ध रहता है। आप आँवले की फाँके काटकर नमक व मसाले अथवा एक चम्मच मधु के साथ सेवन कर सकते हैं। मधु के साथ सेवन करने से इसका *टार्ट* स्वाद संतुलित हो जाता है। आँवले के सूखे फलों को चूसा जा सकता है। आँवले का मुरब्बा तो लगभग सभी को पसंद आता है परंतु इसके सेवन से शर्करा का अधिक उपभोग हो जाता है। आँवले का चूर्ण सभी आयुर्वेदिक दवाखानों में सुगमता से उपलब्ध रहता है। इसको पानी, शहद या दही के साथ मिलाकर बालों या चेहरे के *मास्क* के रूप में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। आँवले का तेल बालों को झड़ने से रोककर मजबूत बनाता है तथा असमय होने वाली बालों की सफेदी को रोकता है। आँवले को इसका रस निकालकर भी प्रयोग किया जा सकता है। खाली पेट आँवले के रस में पानी मिलाकर पीने से पाचन तंत्र स्वस्थ रहता है तथा रक्त में शर्करा का स्तर भी संतुलित रखने में भी सहायक होता है। कई व्यक्ति अन्य रसों के साथ मिलाकर इसके रस का सेवन करना पसंद करते हैं तो कुछ लोग चटनी एवं अन्य रूपों में भी इसका सेवन करते हैं। आँवले से बना च्यवनप्राश प्रमुख आयुर्वेदिक *टॉनिक* है जो बच्चे, बूढ़े एवं जवान सभी के लिए शक्तिवर्धक होने के साथ-साथ रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी

सहायक होता है। आँवला छोटे बच्चों एवं किशोरों के लिए भी अत्यंत लाभकारी है। यह सम्पूर्ण शरीर को पोषण देता है।

मोटापा कम करने हेतु

- आँवले का नियमित सेवन मोटापा घटाता है। यह शरीर में प्रोटीन का स्तर बढ़ता है जिससे अवांछित वसा कम होती है। आँवले के नियमित सेवन से शरीर का मेटाबॉलिज्म ठीक होता है। आँवले को भोजन में सम्मिलित करने से मोटापा तेजी से घटता है।

सर्दी तथा गले का संक्रमण

- दो चम्मच मधु में दो चम्मच आँवले का रस मिलाकर दिन में 3-4 बार पीने से सर्दी तथा खराब गले में राहत मिलती है।

अनिद्रा

- अच्छी नींद के लिए आँवले को भोजन में सम्मिलित करें। आँवले के रस को जायफल के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से अनिद्रा रोग से छुटकारा मिलता है।

पित्ताशय में पथरी बनने से रोकना

- आँवला पित्ताशय में पथरी बनने के खतरे को कम करता है। पथरी *कोलेस्ट्रॉल* की अधिक मात्रा से बढ़ती है। आँवले के सेवन से यकृत में *कोलेस्टेरोल* पित्त अम्ल में परिवर्तित होकर पथरी के खतरे को कम करता है।

ठंडक लाने हेतु

- अधिकांश लोग ऐसा सोचते हैं कि आँवले का सेवन शीतकाल में ही लाभदायक होता है। विटामिन सी का प्रचुर स्रोत होने के कारण गर्मी तथा प्रकाश से सुरक्षा देकर *टेनिन्स* में सुधार करता है। गर्मियों में आँवले के चूर्ण के सेवन से शरीर व त्वचा गर्मी में भी ठंडी बनी रहती है।

आँखों की बीमारियाँ

- विटामिन ए से भरपूर आँवले के रस को शहद के साथ पीने से आँखों की नजर सुधरती है। आँवले के सेवन से पास दीखने तथा मोतियाबिंद में भी सुधार होता है। इसका कारण आँवले में उपस्थित *कैरोटिन* अंश है जो दृष्टि पर होने वाले लाभदायक प्रभावों के लिए प्राचीन समय से ज्ञात है। विटामिन ए तथा *कैरोटिन* के कारण ही नजर में सुधार होता है तथा इससे *मैकुलर डिजेनरेशन* तथा रतौंधी के खतरे में भी कमी आती है।
- 20 ग्राम आँवले के चूर्ण को जल में उबालकर 2-3 बार आँखों में डालना फायदेमंद रहता है।

प्रमुख पोषक तत्व

प्रमुख पोषक तत्व	प्रति 100 ग्राम मान	आरडीए का प्रतिशत
कुल ऊर्जा	48	2.4
कुल वसा	0.5 ग्राम	0.5
प्रोटीन	1 ग्राम	–
कुल कार्बोहाइड्रेट	10 ग्राम	3.0
जल	86 ग्राम	–
फीनोलिक यौगिक गैलिक अम्ल	3012 मिली ग्राम	लागू नहीं
कार्बोहाइड्रेट		
कुल कार्बोहाइड्रेट	10 ग्राम	3.0
डाइट्री रेशे 5 ग्राम	5 ग्राम	18.0
शर्करा	–	–
स्टार्च	–	–
वसा, *लिपिड्स* तथा वसीय अम्ल		
कुल वसा	0.5 ग्राम	1.0
सेचुरेटेड वसा	0.0 ग्राम	–
मोनोसेचुरेटेड वसा	0.1 ग्राम	–
पॉलीसेचुरेटेड वसा	0.3 ग्राम	–
कोलेस्टेरोल	शून्य	–
ट्रांस–वसा	शून्य	–
ओमेगा 3 वसीय अम्ल	48 मिलीग्राम	–
विटामिन		
विटामिन ए, आईयू	290 आईयू	6.0
विटामिन सी	478 मिलीग्राम	800:
विटामिन डी	–	–
विटामिन ई *(अल्फा टोकोफेरोल)*	0.16. 0.05 मिलीग्राम	–
विटामिन के	–	–
थियामीन	–	3.0
राइबोफ्लेविन	–	2.0
नियासीन	0.3 मिलीग्राम	10
विटामिन बी$_6$	0.1 मिलीग्राम	4.0
फोलेट	6 माइक्रोग्राम	
विटामिन बी$_{12}$	–	–
पेन्टोथीनिक अम्ल	0.3 मिलीग्राम	3.0
कॉलिन	–	–
बीटेन	–	–
खनिज लवण		
कैल्शियम	25 मिलीग्राम (4212 मिलीग्राम)	3.0
लौह तत्व	0.9 मिलीग्राम (0.16. 0.04 मिलीग्राम)	6.0
मैग्नीशियम	10 मिलीग्राम (132 मिलीग्राम)	2.0
फॉस्फोरस	215 मिलीग्राम	3.0
पोटैशियम	198 मिलीग्राम (151 37 मिलीग्राम)	6.0
सोडियम	13.4 मिलीग्राम	0.0
जस्ता	0.12 मिलीग्राम (0.14–0.08 मिलीग्राम)	1.0
ताँबा	0.1 मिलीग्राम (0.04–0.03 मिलीग्राम)	4.0
मैगनीज	0.1 मिलीग्राम (0.71–0.06 मिलीग्राम)	7.0
सेलेनियम	0.6 माइक्रोग्राम	1.0
क्लोराइड	25.6. 2.3 मिलीग्राम	0.0

- ताजे आँवले का रस आँखों की बीमारियों में उपयोगी होता है।
- आँवले के रस में सहजन की पत्तियों एवं सेंधा नमक मिलाकर लगाने से आँखों की बीमारियों में लाभ होता है।
- आँखों की फूली मिटाने हेतु आँवले के रस को 3-4 बार आँखों में डालना लाभ पहुँचाता है।
- आँखों की दृष्टि बरकरार रखने के लिए एक चम्मच आँवले के रस को शहद के साथ प्रतिदिन सुबह सेवन करना चाहिए।

बालों के जीर्णोद्धार

- आँवले का चूर्ण बालों की कई औषधियों में प्रयुक्त किया जाता है। यह बालों की वृद्धि तथा इनको काला रखने में सहायक होता है। यह बालों की जड़ों को मजबूत रखने के साथ-साथ बालों के रंग को बरकरार रखकर चमकीला बनाता है। बालों की जड़ों में आँवले के तेल को लगाने से अच्छी वृद्धि होती है तथा उनका रंग बरकरार रहता है। भारत में आँवले का तेल बालों को न झड़ने देने व गंजापन रोकने के लिए अत्यंत लोकप्रिय है। आँवले का यह गुण उसमें उपस्थित कैरोटिन, लौह तत्व तथा एंटी-ऑक्सीडेंट्स *फ्री रेडिकल्स* को शरीर से निकलते हैं। जो *फ्री रेडिकल्स* के बालों को क्षति पहुँचाते से रोकते हैं।
- आँवले के सेवन से बालों में भी निखार आता है। यह न केवल बालों की जड़ों को मजबूत बनाता है अपितु उनमें रौनक भी लाता है। आँवले का पेस्ट बनाकर बालों में लगाने से भी लाभ प्राप्त होता है। इससे बालों की वृद्धि अच्छी होती है। यह बालों का टूटना एवं झड़ना भी रोकता है।
- सूखे आँवले 30 ग्राम, बहेड 10 ग्राम, आम की गुठली 50 ग्राम एवं लौह चूर्ण 10 ग्राम लोहे की कढ़ाई में भिगोकर नित्य लगाने से लाभ होता है।
- आँवला, रीठा, शिकाकाई का प्रयोग बालों के लिए अत्यंत उपयोगी होता है।
- आँवले एवं आम की गुठली की मज्जा को लगाने से भी बाल लंबे होते हैं।

नकसीर

- आँवले को जामुन एवं आम के साथ पीसकर बने *पेस्ट* को माथे पर लगाने से नकसीर रूक जाती है।
- आँवले को अजमोदा, हल्दी, यवक्षार तथा चित्रक के साथ बराबर-बराबर मात्रा लेकर बने चूर्ण को शहद अथवा घी के साथ चाटने से स्वर भेद की समस्या से छुटकारा मिल जाता है।

उल्टी

- 10-20 मिलीलीटर आँवले के रस एवं 5-10 ग्राम मिश्री के प्रयोग से उल्टी में लाभ मिलता है।
- आँवला त्रिदोष नाशक है।
- उल्टी आने पर आँवले का रस सफेद चन्दन के चूर्ण के साथ उपयोग करना लाभकारी होता है।

अम्लपित्त

- 1-2 आँवले को मिश्री के साथ सेवन करने से अम्लपित्त में लाभ मिलता है।
- आँवले के 10 ग्राम भिगोकर पीसे हुए बीज 250 ग्राम गाय के दुग्ध के साथ लेने से भी अम्लपित्त में लाभ प्राप्त होता है।

पीलिया

- आँवले को मधु के साथ चटनी के रूप में प्रयोग करने से पीलिया में लाभ मिलता है।
- आँवले का एक गिलास रस सुबह खाली पेट पीने से पीलिया से बचाव होता है।

कब्ज

- प्रतिदिन आँवले के चूर्ण के सेवन से कब्ज नहीं होता तथा पाचन सुधरता है। यह हल्का दस्तावर होता है जो रेशे का प्रचुर स्रोत होता है। इसी कारण आँवले के सेवन से पाचन संबंधी समस्या नहीं होती।
- 3-6 ग्राम त्रिफला चूर्ण (आँवला, हर्र एवं बहेड़ा) गरम पानी के साथ लेने से कब्ज में लाभ होता है।

अर्श

- आँवले के लेप किए बर्तन में छाछ भरकर पीना अर्श के लिए लाभकारी होता है।
- 3-6 ग्राम आँवले के चूर्ण को दही की मलाई के साथ सेवन करने से भी बवासीर में लाभ मिलता है।

शुक्रमेह

- गुठली रहित आँवलों के 10 ग्राम चूर्ण एवं 20 ग्राम मिश्री को 250 ग्राम जल के साथ 15 दिन प्रयोग करना लाभकारी होता है।

खूनी पेचिश

- आँवले के रस में मधु एवं घृत मिलकर पीने एवं ऊपर से बकरी का दूध दिन में तीन बार पीना खूनी पेचिश में उपयोगी पाया गया है।

प्रमेह

- आँवला, हरड़, बहेड़ा, नागर-मोथा, दारू-हल्दी, देवदारू बराबर भाग में मिलाकर काढ़ा बनाकर 10-20 ग्राम प्रातःकाल एवं सांयकाल पीने से लाभ होता है।
- आँवला, गिलोय, नीम की छाल, परवल की पत्ती को बराबर मात्रा में लेकर सेवन करने से लाभ होता है।

पित्तदोष

- आँवले के रस को शहद एवं गाय के घृत सहित प्रयोग करने से पित्तदोष में लाभ होता है।

मूत्रतिसार

- आँवले के रस को पके केले, शहद व दुग्ध के साथ लेना लाभप्रद होता है।

मूत्रवर्धक

जल की अत्यधिक मात्रा होने के कारण, आँवले का फल आंशिक रूप से मूत्रवर्धक का कार्य करता है। इसका अर्थ है कि आँवले के फल के सेवन से मूत्र की मात्रा तथा आवृत्ति में वृद्धि होती है। मूत्र के द्वारा हमारे शरीर के अवांछित विषाक्त पदार्थ के साथ अतिरिक्त जल की मात्रा, लवण तथा यूरिक अम्ल शरीर से बाहर निकल जाते हैं। साथ ही यह वजन घटाने में भी सहायक होता है क्योंकि 4% मूत्र भी वसा का अवयव होता है। इसी कारण मूत्रवर्धक पदार्थ आपके गुर्दों के स्वास्थ्य तथा मूत्र की नली के संक्रमण से बचाव हेतु परम आवश्यक होते हैं।

रक्त प्रदर

- आँवले के 20 ग्राम रस एवं एक ग्राम जीरा चूर्ण दिन में दो बार सेवन करने से लाभ होता है।

श्वेत प्रदर

- आँवले के 20 ग्राम पिसे बीज 2 चम्मच मधु एवं मिश्री के साथ उपयोग करने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

मंदाग्नि

- पकाए हुए आँवलों में काली मिर्च, सोंठ, सैंधा नमक, भुना जीरा एवं हींग मिलाकर प्रयोग करने से पाचन क्रिया सही रहती है।

अतिसार

- आँवलों को पीसकर नाभि पर लेप करना अतिसार में लाभकारी होता है।

सुजाक

- आँवले के 2-5 ग्राम चूर्ण को पानी में घोलकर पीने से सूजाक में लाभ होता है।

वात रक्त

- आँवला, हल्दी एवं मोथा के क्वाथ को 2 चम्मच शहद के साथ खाली पेट लेने से लाभ होता है।

गठिया

- आँवले में *एंटी इन्फ्लेमेट्री* गुण होने के कारण गठिया में होने वाले जोड़ों के दर्द तथा सूजन से राहत दिलाता है। इसके लिए प्रतिदिन प्रातः काल कच्चे आँवले खाना चाहिए अथवा आँवले का रस पीना चाहिए।
- 20 ग्राम सूखे आँवले एवं गुड़ को पानी में उबालकर सुबह शाम पीना गठिया रोग में लाभदायक होता है।

कफ ज्वर

- आँवला, मोथा, इंद्रजौ, हरड़, बहेड़ा, कटुकी एवं फालसे का क्वाथ कफ ज्वर को नष्ट करने में अत्यंत उपयोगी होता है।

रक्तपित्त

- आँवले के 10-20 मिली लीटर रस में 2 ग्राम हल्दी को एक चम्मच शहद के साथ मिलाकर सेवन करने से रक्त पित्त में लाभ मिलता है।
- आँवला चूर्ण की 5 से 10 ग्राम की मात्रा दही के साथ अथवा 1-20 ग्राम क्वाथ को गुड के साथ लेना उपयोगी होता है।

ज्वर दोष

- आँवला, चमेली की पत्ती, नागरमोथा, ज्वासा की बराबर मात्रा लेकर बने क्वाथ का सेवन करने से ज्वर दोष में लाभ मिलता है।

पित्त ज्वर

- आँवले के 2-5 ग्राम चूर्ण का सेवन करने से पित्त का नाश हो जाता है।

कुँठ

- आँवला एवं नीम की पत्तियों की बराबर मात्रा का 2-6 ग्राम चूर्ण प्रातः काल शहद के साथ लेने से लाभ मिलता है।

खुजली

- आँवले की गुठली को जलाकर नारियल के तेल के साथ मिलाकर लगाने से खुजली में लाभ मिलता है।

श्रम दाह

- आँवले का 100 ग्राम क्वाथ एवं 10 ग्राम गुड़ साथ लेना श्रम दाह में लाभकारी होता है।

पित्त रोग

- 1-2 नग आँवले का मुरब्बा सुबह खाली पेट खाने से पित्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

चाकू का घाव

- आँवले के ताजे रस को चाकू से हुए घाव पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

दीर्घायु

- आँवले का चूर्ण एवं घी या मधु रात में लेने से व्यक्ति दीर्घायु होता है।
- 3-6 ग्राम आँवले के चूर्ण में आँवले का रस डालकर 2 चम्मच शहद एवं 1 चम्मच घी के साथ लेने से व्यक्ति दीर्घायु होता है।

इम्यूनिटी बढ़ाने के लिए

- विटामिन सी तथा *पॉलीफीनोल्स, एलकेलोइड्स* तथा *क्लेर्सेटिन* तथा *केम्फेरोल* जैसे *फ्लेव्नोइड्स* का प्रचुर स्रोत होने के कारण आँवला प्राकृतिक रूप से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ता है। आँवले में *एंटीबैक्टीरियल* व *एंटीइन्फ्लेमेटरी* गुण भी होते हैं। आयुर्वेद में आँवले के रस का प्रयोग श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या में वृद्धि हेतु किया जाता है जो प्रतिरक्षा तंत्र की सुरक्षा पंक्ति है क्योंकि ये कोशिकाएँ शरीर से विषाक्त पदार्थ उत्सर्जित करती हैं। अतः प्रतिरक्षा शक्ति को बढ़ाने के लिए आँवला अत्यंत असरदार है। इसके चूर्ण में हल्दी मिलाकर प्रातः खाली पेट लेने से न सिर्फ सर्दी-जुकाम व *वाइरल इन्फेक्शन* दूर रहते हैं। साथ ही यह हमारे शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को भी मजबूत बनाता है।

मधुमेह रोग

- आँवले में पाया जाने वाला क्रोमियम मधुमेह के रोगियों के लिए अत्यंत लाभप्रद होता है। आँवला इंसुलिन स्रावित करने वाली कोशिकाओं के समूह को उद्दीपित करता है। मधुमेह के रोगियों की रक्त शर्करा का स्तर कम करता है तथा उनके शरीर को संतुलित व स्वस्थ रखता है। रक्त शर्करा कम होने पर ग्लूकोज को कोशिकाओं के द्वारा ऊर्जा हेतु प्रयुक्त किया जाता है। इससे शरीर के *मेटाबॉलिज्म* मजबूत होती है तथा अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है। क्रोमियम *बीटाब्लोकर* के प्रभाव में भी वृद्धि करता है जो शरीर में खराब *कोलेस्टेरोल (एलडीएल)* के स्तर को घटाकर हृदय के स्वास्थ्य को ठीक रखता है। आँवले में *हाइपरग्लाइसेमिक* तथा वसा को कम करने वाले गुण होते हैं।
- एक चम्मच आँवलें के रस के साथ एक कप करेले के रस को दो माह तक प्रतिदिन सुबह लेने से रक्त शर्करा नियंत्रित हो जाती है।
- आँवले के चूर्ण में हल्दी मिलकर प्रातःकाल खाली पेट लेने से रक्त शर्करा भी नियंत्रित रहती है।

हृदय रोग

- आँवले में पाये जाने वाले कैल्शियम, फास्फोरस, लौह तत्व जैसे पोषक तत्व हृदय की माँसपेशियों को मजबूत बनाते हैं। यह *कोलेस्ट्रॉल* की मात्रा को कम करता है जिससे शिराओं एवं धमनियों में *प्लौक* जमने के आसार समाप्त हो जाते हैं। आँवले के सेवन से *स्ट्रोक* एवं *हार्ट अटैक* की संभावना कम हो जाती है। आँवले का सेवन *हीमोग्लोबिन* एवं लाल रक्त कणिकाओं की संख्या को बढ़ाता है जिससे रक्त संचार में वृद्धि होती है तथा सभी अंगों व कोशिकाओं को आवश्यक ऑक्सीजन पहुँचती है। इससे उनकी वृद्धि तथा पुनरूद्भव क्षमता में वृद्धि होती है।

हड्डियों को मजबूत बनाने में

- आँवले में कैल्शियम की प्रचुर मात्रा के कारण हड्डियाँ मजबूत होती हैं। आँवले के नियमित सेवन से *ऑस्टियोपोरोसिस* में भी कमी आती है। हड्डियों के टूटने के लिए *ऑस्टियोक्लोसिस* कोशिकाएँ ही उत्तरदायी होती हैं।

कैंसर से बचाव

- आँवले के नियमित सेवन से कैंसर होने का खतरा भी कम होता है। आँवला *एंटीऑक्सीडेंट्स,* विशेषकर *सुपर ऑक्साइड डिसम्यूटेज* का प्रचुर स्रोत होता है जो *फ्री रेडिकल्स* से शरीर की रक्षा करता है।

धूम्रपान का दुष्प्रभाव कम करने में

- आँवला यकृत को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि आँवले के नियमित सेवन से फेफड़ों पर धूम्रपान का दुष्प्रभाव कम पड़ता है। अच्छा *एंटीऑक्सीडेंट्स* होने के कारण यह सिगरेट के धुंओं से पैदा होने वाले *फ्री रेडिकल्स* से लड़ता है।

मजबूत दाँत एवं नाखून

- आँवला दाँतों एवं नाखूनों को भी मजबूत करता है।

पाचन में लाभकारी

- अधिकांश फलों की तरह आँवला *फाइबर* का प्रचुर स्रोत है। इसके सेवन से पाचन तंत्र सही रहता है। *फाइबर* भोजन को आँतों की ओर ले जाकर उनकी गति को नियंत्रित करता है। इससे कब्ज होने की संभावना नहीं रहती है। आँवले में उपस्थित रेशे दस्त को रोकने में भी मददगार होते हैं। यह *गैस्ट्रिक* व पाचक रसों को स्रावित करके भोजन के उचित पाचन में सहायता करता है जिससे पोषक तत्वों का अवशोषण सही रूप से होता है तथा आप हल्का एवं स्वस्थ अनुभव करते हैं।

अम्लता नियंत्रित करने में

- आँवले के नियमित सेवन से पेट ठीक रहता है। इससे पेट में गैस अथवा जलन की समस्या से भी राहत मिलती है। *पौप्टिक* अल्सर में भी आँवले का सेवन लाभकारी होता है। आँवले को देशी घी के साथ खाने से गैस की समस्या से छुटकारा मिल जाता है।

मुँह के छाले

- अपाचन व संक्रमण के कारण कई बार मुँह में छाले हो जाते हैं। मुँह के छाले ठीक करने के लिए आँवले का रस रामबाण औषधि है। आँवले के रस में पानी मिलाकर दिन में दो बार गरारे करने से मुँह के छाले ठीक हो जाते हैं।

भूख न लगना

- आँवले के सेवन से भूख न लगने की समस्या भी समाप्त हो जाती है।

रक्त शोधन

- एंटी-ऑक्सीडेंट होने के कारण आँवला अच्छा रक्तशोधक है। यह शरीर से विषाक्त पदार्थ निकालकर रक्त को शुद्ध करने में सहायक होता है।

एंटी-एजिंग कारक

- आँवले में उपस्थित *एंटीऑक्सीडेंट्स* गुणों के द्वारा शरीर से *फ्री रेडिकल्स* की संख्या कम करके स्वास्थ्य संबंधी *हाइपरलिपीडीमिया* से बचाता है। आँवले में उपस्थित विटामिन सी तथा *एंटीऑक्सीडेंट्स फ्री रेडिकल्स* को शरीर से बाहर निकालते हैं। ये *फ्री रेडिकल्स* ही आयु बढ़ने के कारण झुर्रियां आदि बनने का कारण बनते हैं। आँवले का चूर्ण बढ़ती आयु के दाग-धब्बों को छुड़ाने के लिए *फेस-मास्क* के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

यकृत को स्वस्थ रखने में सहायक

- आयुर्वेद के अनुसार आँवले के रस के सेवन से यकृत पुनः ऊर्जावान हो जाता है। आँवला बहुत अधिक दवाईयों के सेवन तथा विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने में अत्यंत प्रभावी होता है। आँवले में उपस्थित *क्वरसेटिन, गैलिक* अम्ल तथा *इलैजिक* अम्ल जैसे *फाइटोकेमिकल्स* की उपस्थित *फ्री रेडिकल्स* को निकालकर शरीर को विषाक्त पदार्थों से दूर रखती है।

कैंसररोधी गुण

- आँवले का सत्त *सरवाइकल* तथा *ओवेरियन कैंसर* कोशिकाओं के विरूद्ध *साइटोटौक्सिक* प्रतिक्रिया दिखाता है। कनाडा में हुए एक शोध से ज्ञात हुआ है कि आँवले का सत्त कई प्रकार के *फ्लेवोनोइड्स* तथा *टेनिन्स* से भरपूर होने के कारण विभिन्न प्रकार के कैंसर के विरूद्ध शक्तिशाली औजार के रूप में कार्य करता है।

कैल्शियम अवशोषण में सहायक

- आंवला कैल्शियम को शरीर में अवशोषण में भी सहायक होता है। कैल्शियम हमारी हड्डियों, दाँत व नाखूनों का महत्वपूर्ण अवयव है। हमारे सुंदर चमकीले बाल भी इसी के कारण होते हैं। इसी कारण आँवले के रस में पानी मिलाकर खाली पेट पीने की सलाह डी जाती है।

त्वचा में निखार

- शीत ऋतु में प्रतिदिन आँवले का सेवन करने से त्वचा में निखार आता है।
- आँवले के प्रतिदिन सेवन करने से यह सूर्य की हानिकारक किरणों से भी त्वचा की रक्षा करता है।
- आँवला शरीर में मौजूद *फ्री रेडिकल्स* को कम करता है। *फ्री रेडिकल्स* के कारण शरीर में झुर्रियां पड़ती है एवं विभिन्न प्रकार के दाग-धब्बे पड़ जाते हैं। इस प्रकार से आँवला *एंटी-एजिंग* का भी कार्य करता है।

मासिक धर्म में होने वाले *क्रैम्प्स*

आँवले में उपस्थित खनिज लवण तथा विटामिन मासिक धर्म में होने वाले *क्रैम्प्स* में राहत के लिए अत्यंत लाभदायक संयोग सिद्ध होते हैं। आँवले के नियमित सेवन से इसके पोषक तत्व प्रणाली में सदा उपस्थित रहते हैं तथा मासिक धर्म में होने वाले *क्रैम्प्स* से राहत दिलाते हैं।

दस्त व पेचिश में भी असरदार

ठंडा करने तथा दस्तावर गुणों के कारण आँवलों का चूर्ण दस्त तथा पेचिश के उपचार हेतु आवश्यक अवयव है। यह विभिन्न प्रकार के *गैस्ट्रिक सिंड्रोम* तथा विषाक्त एवं हानिकारक पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देता है जो बैचेनी तथा बीमारी का कारण बनते हैं। इससे *हीलिंग* की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है तथा जलन की अनुभूति ठंडक में बदल जाती है तथा दस्तों में होने वाली बैचेनी को भी कम करता है।

भूख बढ़ाता है

भूख बढ़ाने के लिए खाने से पूर्व आँवले के चूर्ण को मक्खन तथा शहद के साथ सेवन करना चाहिए। आँवले का चूर्ण नाइट्रोजन के स्तरों में संतुलन बनाए रखने में भी सहायक होता है जिससे स्वास्थ तरीके से शरीर का भार बढ़ता है। आँवले का उपयोग ज्वर, अपाचन, रक्त की कमी, मूत्र संबंधी समस्याएँ, श्वसन संबंधी समस्याएँ तथा मानसिक, *गैस्ट्रिक* तथा *कार्डियोवैसकुलर* बीमारियों में भी लाभ पहुँचाता है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

सोयाबीन एवं स्वास्थ्य

कविता बिष्ट, योगेन्द्र प्रताप सिंह एवं पंकज
कृषि विज्ञान केन्द्र (भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान), शिकोहपुर, गुरूग्राम

सोयाबीन का दैनिक भोजन में उपयोग करने से उत्तम गुणवत्ता के पोषक तत्वों की उचित मात्रा प्राप्त होती है। जिससे कुपोषण की विभिन्न स्थितियों से केवल बच्चों तथा महिलाएं ही नहीं वरन समस्त परिवार के स्वास्थ्य की सुरक्षा की जा सकती है। सोयाबीन में लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन होता है, जो किसी भी दलहनी फसल से लगभग दोगुना है और 20 प्रतिशत उच्च गुणवत्ता का वसा तथा आवश्यक वसीय अम्ल प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसके अलावा, सोयाबीन में कैल्शियम, लौह तत्व, लवण, विटामिन भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सोयाबीन और इसके आहार बहुत लम्बे समय से स्वास्थ्यवर्धक समझे जाते रहे हैं। वर्तमान में भी अनेक शोधों से इस बात की पुष्टि होती है कि यदि दैनिक खाद्य में प्रतिदिन समुचित रूप से 30 ग्राम प्रसंस्करित सोयाबीन का उपयोग किया जाए तो मनुष्य अनेक घातक रोगों जैसे हृदय रोग, मधुमेह, हड्डी की कमजोरी व कैंसर रोगों से दूर रह सकता है।

लैक्टोज एलर्जी : जिन बच्चों एवं व्यक्तियों को जन्मजात या अन्य किसी कारण से अपनी माँ का दूध, अन्य सामान्य डेयरी दूध के प्रति असहनशीलता होती है अर्थात् वे उसे पचा नहीं पाते और उनमें दूध पीते ही गैस बनना, पेट फूलना, दस्त होना एवं उल्टियाँ होना आदि लक्षण दिखाई देने लगते हैं। चूंकि सोयाबीन में लैक्टोज शर्करा नहीं होती, अतः सोयाबीन से बना दूध व दुग्ध पदार्थ ऐसे व्यक्तियों के लिए लाभकारी व पौष्टिक दूध का एकमात्र स्रोत है।

हृदय रोग : रक्त में कोलेस्ट्रोल का उच्च स्तर हृदय रोगों और हृदयाघात का एक मुख्य कारण है। खाद्य संतृप्त वसा और कोलेस्ट्रॉल दोनों ही रक्त कोलेस्ट्रॉल का स्तर बढ़ाते हैं। इसके विपरीत सोया आहारों में संतृप्त वसा की मात्रा बहुत ही कम और कोलेस्ट्रॉल तो बिल्कुल ही उपस्थित नहीं होता है। शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि सोया प्रोटीन की एक निश्चित मात्रा प्रतिदिन लेने से यह रक्त के कोलेस्ट्रॉल का स्तर कम करके हृदय रोग की संभावना को कम करता है।

मधुमेह : शरीर में इंसुलिन हारमोन की कमी से ग्लूकोज का पाचन एवं अवशोषण ठीक न होने से रक्त में शर्करा (ग्लूकोज) की मात्रा बढ़ जाती है, जिस स्थिति को 'मधुमेह' कहते हैं। मधुमेह रोगियों को ऐसे भोज्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए जिनका *ग्लाईसीमिक इण्डेक्स* कम हो जिससे रक्त शर्करा नियंत्रण में रहे। विभिन्न प्रकार की दालों, विशेष तौर पर सोयाबीन का *ग्लाईसीमिक इण्डेक्स* कम होने की वजह से मधुमेह रोगियों के लिए यह मूल्यवान खाद्य आहार है।

अस्थिक्षरण *(आस्टियोपोरोसिस)* : इस रोग में हड्डियाँ छिद्रपूर्ण और कमजोर हो जाती है जिससे उनके टूटने का खतरा बढ़ जाता है। यह रोग महिलाओं में अधिक होता है, क्योंकि रजोनिवृत्ति के दौरान *एस्ट्रोजन* की मात्रा में तेजी से कमी आती है और हड्डियों से कैल्शियम का क्षय होने लगता है। सोया प्रोटीन के कारण, कैल्शियम का इस्तेमाल मानव की हड्डियों के लिए अच्छे ढंग से होता है जिससे *आस्टिओपोरोसिस* की संभावना कम हो जाती है।

रजोनिवृत्ति : रजोनिवृत्ति के समय *एस्ट्रोजन* हारमोन के स्तर में परिवर्तन होने से बेचैनी रहना, नींद न आना, सिरदर्द रहना, रात्रि में पसीना आना, मानसिक परेशानियों में घबराहट, चक्कर आना, हृदय की धड़कन बढ़ना, याददाश्त एवं भूख में कमी व थकावट जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। सोयाबीन से मिलने वाला प्रोटीन *फाइटोएस्ट्रोजन* से भरपूर होता है जो महिलाओं में स्रावित होने वाले *एस्ट्रोजन* की संरचना के समान होता है। इसलिए सोयाबीन के उपयोग से रजोनिवृत्ति से जुड़े लक्षणों का ठहराव दिया जा सकता है।

कैंसर : सोया आहारों में विभिन्न *एंटीकारसियोजिनस* की प्रचुरता रहती है खासतौर पर *आइसोफ्लेविन* जो केवल सोया उत्पादों में ही पाया जाता है जिसके कारण सोया युक्त पदार्थ का नियमित उपयोग करने से अनेक प्रकार के कैंसर से बचाव हो सकता है।

सामान्य तौर पर देखा गया है कि लोग कच्चे सोयाबीन को गेहूँ के साथ मिलाकर उसे आटे के रूप में पिसवाते हैं और फिर चपाती बना कर खाते हैं। किन्तु सोयाबीन में कई अच्छे गुणों के अलावा, कुछ अपोषक तत्व भी होते हैं जो खाए जाने पर पाचन क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं तथा इनसे पोषकता में कमी आ जाती है। इनमें से सबसे प्रभावकारी तथा सामान्य है *ट्रिप्सिन* अवरोधक, *लिपोक्सिजनेस,* वायुविकारकारक, *गैलेक्टोसाइड्स* एवं *फाइटिक* अम्ल। *ट्रिप्सिन* अवरोधक को यदि नष्ट न किया जाए तो वह मनुष्य की प्रणाली में प्रोटीन का उपयुक्त उपयोग नहीं होने देता है। *लिपोक्सिजनेस* ऐसा एन्जाइम है जो वसा के मुक्त वसा अम्ल *हाइड्रोलिसिस* में उत्प्रेरक का काम करता है जिससे विकृत गन्ध उत्पन्न हो जाती है। वायु विकार कारक तत्व एक प्रकार के कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं जो मानव पाचन प्रणाली द्वारा *हाइड्रोलाइज*

नहीं किए जाते हैं। अतः वे आँतों में मौजूद जीवाणुओं को उपलब्ध हो जाते हैं। ये जीवाणु इन वायु विकार कारक कार्बोहाइड्रेट्स का किण्वन करते हैं जिससे पेट में अत्यधिक गैस उत्पन्न होती है। *फाइटिक एसिड* एक स्फुर अम्ल है जो खनिज के साथ जुड़कर खनिज को शरीर में अवशोषित नहीं होने देते। ट्रिप्सिन अवरोधक एवं *लिपोक्सिजनेस* ताप परिवर्तनीय होते हैं तथा इन्हें पकाकर या गरम करके नष्ट किया जा सकता है जबकि वायु विकार कारक कार्बोहाइड्रेट तापस्थायी होते हैं और कई घंटों तक पकाए जाने पर भी इन पर प्रभाव नहीं पड़ता है। सोयाबीन को भोजन के रूप में लेने से पूर्व इन अपोषक तत्वों को सुरक्षित स्तर तक निष्क्रिय करना आवश्यक है। अतः भोजन के रूप में प्रयोग करने हेतु सोयाबीन को अच्छी तरह प्रसंस्करण किया जाना चाहिए। अपोषक तत्व निष्क्रिय करने की क्रिया अत्यंत सरल है तथा घरेलू स्तर पर भी संभव है। सोया आटा उत्पादों में सोया आटा सबसे सरल उत्पाद है जिसे निम्नलिखित तरीके से घर पर तैयार किया जा सकता है :

- कचरा, कच्चे एवं खराब दाने को हटाकर सोयाबीन की सफाई करना
- साफ किए गए सोयाबीन को 2-3 घण्टों तक स्वच्छ, पीने योग्य पानी में भिगोना (1 कि.ग्रा. सोयाबीन 3 लीटर पानी में) और हल्के हाथ से रगड़कर छिलका निकालना
- पानी को निकाल कर भिगोई गई सोयाबीन को भाप देकर प्रेशर कुकर में 6-7 सीटियों आने तक पकाना
- पकाई गई सोयाबीन को ट्रे में फैलाकर लगभग एक घण्टे तक छाया में सुखाना ताकि सतह की नमी को सुखाया जा सके।
- शेड में सुखाई गई सोयाबीन को लगभग 8-10 घंटों तक धूप में सुखाना
- उपचारित सोयादाल को चक्की में पीसकर प्राप्त सोया आटे को 1:9 के अनुपात में गेहूं के आटे के साथ मिलाया जा सकता है।

इस सोया प्रोटीनयुक्त आटे को चपाती, पूरी, पराठा आदि तथा बेकरी उत्पाद जैसे ब्रेड, बिस्कुट, केक आदि तैयार करने में प्रयोग किया जा सकता है। सोया आटे को बेसन के साथ 1:1 के अनुपात तक मिलाकर पारम्परिक व्यंजन जेसे लड्डू, सेव, चकली, पकौड़ा आदि बनाए जा सकते हैं। पॉलीथीन में पैक किया गया सोया आटा कुल दो माह तक सुरक्षित रहता है। तथापि पैकेट खोले जाने के पश्चात् इसे 15 दिनों के अंदर प्रयोग कर लेना चाहिए।

सोया दूध

सोया आटा के अलावा, सोया दूध एवं टोफू (सोया पनीर) एशियाई देशों में प्रयोग तथा उत्पादित होने वाले सबसे लोकप्रिय उत्पाद है। घरेलू स्तर पर *मिक्सर-ग्राइंडर* का उपयोग कर निम्नलिखित तरीके से सोया दूध तैयार किया जा सकता है:

- कचरा, कच्चे एवं खराब दाने को हटा कर सोयाबीन की सफाई करना
- चक्की में सोयाबीन का छिलका उतारना व दो भागों में विभाजित करना
- सोयाबीन दाल को सोडा बाई कार्बोनेट (1 प्रतिशत) युक्त पानी (1 कि.ग्रा. सोयाबीन 3 लीटर पानी में) में 4-6 घंटों के लिए भिगोना
- गीली सोया दाल को गर्म पानी के साथ पीसना (1 कि.ग्रा. सोयाबीन को 8 लीटर पानी के साथ)
- प्राप्त सोया प्यूरी को 15-20 मिनट तक उबालना
- मलमल के कपड़े से छानने पर 6-8 लीटर सोया दूध प्राप्त हो जाएगा।

प्राप्त सोया दूध का उपयोग विभिन्न भोज्य पदार्थ तैयार करने में किया जा सकता है। सोया दूध को सुगंधित दूध में परिवर्तित व ठंडा कर, इसकी ग्राहयता बढ़ाई जा सकती है। ओकारा, सोया दूध बनाते समय प्राप्त होने वाला ठोस पदार्थ है। 1 कि.ग्रा. सोयाबीन से दूध बनाते समय 6-8 लीटर दूध और 1.25 कि.ग्रा. ओकारा प्राप्त होता है। इस ओकारे का उपयोग हलुआ, पकौड़ा एवं गुलाब जामुन आदि बनाने में किया जा सकता है।

सोया पनीर (टोफू) : सोया दूध को अम्लीय माध्यम से फाड़कर ठोस पदार्थ प्राप्त किया जाता है जिसे 'सोया पनीर' अथवा 'टोफू' कहा जाता है। एक कि.ग्रा. सोयाबीन से लगभग 1.5 से 1.75 कि.ग्रा. पनीर प्राप्त किया जा सकता है। सोया दूध को पनीर में परिवर्तित करने हेतु 0.2 प्रतिशत *साइट्रिक एसिड* का उपयोग कर अन्य दूध के पनीर की भांति तैयार किया जा सकता है। सोया पनीर से सब्जी, पुलाव, पकौड़े, परांठा आदि बनाने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

सोया दही : सोया दही का प्रयोग कर निम्नलिखित तरीके से सोया दही तैयार किया जा सकता है:

- 800 मि.ली. सोया दूध के साथ 200 मि.ली. अन्य (डेयरी) दूध मिलाएं या 1 लीटर सोया दूध में 30-40 ग्राम शक्कर मिलाएं।
- तैयार दूध को 35-37 डिग्री सेल्सियस तक गर्म करें।
- 1 लीटर गुनगुने दूध में 2-5 ग्राम दही का जामन डालें।
- लगभग 6-8 घंटे में सोया दही तैयार हो जाता है।

तैयार दही का उपयोग विभिन्न भोज्य पदार्थ जैसे लस्सी, मट्ठा, कढ़ी, रायता, दही-बड़े, श्रीखंड इत्यादि बनाने के लिए किया जा सकता है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

महिलाओं के स्वास्थ्य स्थिति का आंकलन

शालिनी श्रीवास्तव
मुक्त लेखिका व रिसर्च एसोसिएट

वर्ष 2015-16 के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार शादी के बाद तकरीबन 63 प्रतिशत मामलों में महिलाओं के स्वास्थ्य सम्बंधित समस्यायों के बारे में निर्णय उनके पति या परिवार द्वारा लिया जाता है। मसलन उनको कौन-सी दवा लेनी है ? डॉक्टर के पास कब जाना है ? यहाँ तक कि उन्हें कब शारीरिक जाँच कराने की आवश्यकता है, यह भी उनके पति या फिर परिवार के लोग ही बताते हैं।

भारत निश्चित तौर पर वैश्विक मुखिया बनकर उभर रहा है लेकिन अब भी यहाँ महिलाओं के साथ बच्चों के स्वास्थ्य की स्थिति चिंताजनक बनी हुई है। शिक्षा का बढ़ता स्तर जागरूकता को जरूर बढ़ा रहा है। बावजूद इसके दूर-दराज गाँवों में अब भी महिलाएं पितृसत्तात्मक समाज के बोझ तले जीने को विवश है। वह स्वयं को एक स्वतंत्र प्राणी स्वीकार न कर पति या परिवार के अधीनस्थ जीव मानती हैं जिनकी खुद की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है और न ही स्वतंत्र रूप से वे अपने लिए कोई निर्णय लेने में सक्षम दिखाई देती हैं। हालांकि हालात पहले से बेहतर हो रहे हैं फिर भी कई ऐसे घर हैं जहाँ छोटे से बड़े निर्णयों में उनकी भागीदारी नगण्य होती है। ऐसे हालात सिर्फ गाँवों में नहीं हैं बल्कि बड़े शहरों में भी हैं और आश्चर्य की बात है कि बहुत से शिक्षित समझे जाने वाले परिवारों का हाल भी यही है। जहाँ महिलाओं को अपने न्यूनतम अधिकारों के लिए भी काफी संघर्ष करना पड़ता है।

भारत में स्वास्थ्य एक बहुत बड़ा और गंभीर मुद्दा है जिसपर न तो आम लोग ज्यादा ध्यान देते हैं और न ही सरकार। बड़ी आबादी वाले इस देश में अभी भी स्वास्थ्य चुनावी या राजनीतिक मुद्दा नहीं है। जब तक नागरिकों को बेहतर स्वास्थ्य की गारंटी नहीं मिलती, तब तक हम चाहें भी तो बहुत आगे तक नहीं बढ़ सकते। अच्छा स्वास्थ्य, समृद्धि और सफलता को काफी हद तक सुनिश्चित करता है। परंतु आजकल दिनों-दिन नई बीमारियों का खतरा बढ़ता चला जा रहा है। आलम यह है कि बहुत सी ऐसी बीमारियों का प्रकोप बढ़ रहा है जिसका इलाज भी अभी संभव नहीं है। वैश्विक स्तर पर तापमान और बढ़ते प्रदूषण ने बीमारियों को एक सीमा से अधिक बढ़ा दिया है। जिससे आए दिन नयी तरह की चुनौती को झेलना पड़ रहा है। दुनिया में जब हर स्तर पर साझेदारी बढ़ रही है तो ऐसे में बीमारियों में भी साझीदारिता का बढ़ना आम है। ऐसे माहौल में इस बात पर अब विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है कि हम विश्व भर में पनप रही बीमारियों से लड़ने में कितना सक्षम हैं ? नई जगहों पर नई बीमारियों की संभावनाओं से कितना सचेत हैं? अनुसंधान, अन्वेषण और तकनीक के माध्यम से लोगों को बचा पाने में कहाँ तक सफल और समर्थ हैं ?

एक रिपोर्ट बताती है कि भारत में बीते सालों के मुताबिक *क्लीनिकल ट्रायल* अब कम हो रहे हैं। आपको बताते चलें कि भारत की जनसंख्या भार विश्व की 17 प्रतिशत है और विश्व की 20 प्रतिशत बीमारियों का बोझ भारत झेल रहा है। भारत में सरकार द्वारा स्वास्थ्य सम्बंधित कई योजनाएं चलायी जा रही हैं। मगर इन योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुँच रहा जहाँ इसकी जरूरत है। अब तक की सबसे बड़ी स्वास्थ्य योजना 'आयुष्मान' लागू होने के बावजूद भारत के सामने अभी भी कई सारी चुनौतियाँ मौजूद हैं। बता दें कि खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2016 लागू होने के बावजूद 14.5 प्रतिशत लोग भारत में कुपोषण के शिकार हैं। महिलाओं की स्वास्थ्य की हालत तो और भी गंभीर है।

स्वास्थ्य मंत्रालय का आँकड़े कहते हैं कि 53 प्रतिशत महिला रक्ताल्पता से पीड़ित हैं। बहुत सी गंभीर बीमारियों की व्यापक ज्ञान की कमी के चलते महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर में गिरावट दर्ज की गयी है। ज्यादातर मामलों में देखा गया है कि महिलाओं में ज्यादातर गृहणियाँ अपने स्वास्थ्य को लेकर कम जागरूक या फिर लापरवाह हैं। महिलाओं के स्वास्थ्य की बात करना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि जब तक जननी स्वस्थ नहीं होगी, तब तक आने वाली संतानों को स्वस्थ नहीं रखा जा सकता ? आधी आबादी का प्रदर्शन जब तक स्वास्थ्य के मामलों में बेहतर नहीं रहेगा, तब तक भारत को विकसित देश बनने का सपना सपना ही बना रहेगा। सिर्फ अर्थव्यवस्था और *रैंकिंग* में अपनी कुछ बढ़त बना लेने मात्र से भारत की प्रगति की बात करना छलावा मात्र है। अच्छे स्वास्थ्य का सीधा *लिंक* रोजगार और आर्थिक प्रगति से है जिसमें महिलाओं की भागीदारिता के बगैर विकास संभव नहीं है।

स्वास्थ्य का असर सिर्फ जीवन प्रत्याशा या जन्म-मृत्यु दर के आँकड़े जानने के लिए ही जरूरी नहीं है बल्कि हमारी अर्थव्यवस्था का बढ़ना और बेहतर जीवन-शैली भी इसी पर निर्भर है। किसी भी क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन हेतु शारीरिक स्वास्थ्य के साथ ही मानसिक स्वास्थ्य पर भी ध्यान दिए जाने की जरूरत है। भारत में अब भी मानसिक स्वास्थ्य को नजरअंदाज किया जाता है। महिलाएं आज के समय में शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक रोग और मानसिक प्रताड़ना की ज्यादा शिकार हो रही हैं। आंकड़ें बताते हैं कि यौन हिंसा, घरेलू हिंसा और वैवाहिक हिंसा में इजाफा दर्ज होने से महिलाओं की कार्यकुशलता एवं कार्यक्षमता प्रभावित हो रही है। आज के भागदौड़ और तनावपूर्ण माहौल में न सिर्फ शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को ज्यादा तरजीह दिए जाने की जरूरत है बल्कि सरकार द्वारा भी ठोस स्वास्थ्य नीति और बीमारियों के प्रति जागरूकता फैलाने की जरूरत है। स्वास्थ्य को नजरंदाज कर सरकार आर्थिक प्रगति का कोई लक्ष्य वास्तविकता में पूर्ण नहीं कर सकती। आज जरूरत है कि स्वास्थ्य के क्षेत्र में जीडीपी को एक प्रतिशत से अधिक बढ़ाया जाए। श्रीलंका एवं थाईलैंड जैसे छोटे देश भी सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का क्रमशः 1.59% तथा 2.89% स्वास्थ्य पर खर्च कर रहे हैं। ऐसे में भारत को अपनी कमी को जल्द से जल्द सुधारना चाहिए और स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। आज जैसे-जैसे पश्चिमी सभ्यता भारतीयों पर हावी हो रही है, वैसे-वैसे पुरुषों के साथ महिलाओं में भी शराब तथा सिगरेट पीने का चलन बढ़ रहा है। साथ ही महिलाएं अब पहले से ज्यादा गंभीर बीमारियों जैसे *एड्स, टीबी, कैंसर* की शिकार हो रही हैं। ऐसे में यह एक नयी तरह की चुनौती बनकर उभर रही है। क्योंकि ऐसी महिलाएं सामाजिक भय तथा दबाव के चलते न तो खुलकर अपने बीमारियों या लतों के बारे में बता पाती है और न ही समय पर अस्पताल ही पहुँच पाती हैं। ऐसे में उन्हें गंभीर बीमारियों से मुक्ति दिला पाना, अस्पताल या पुनर्वास केंद्र तक पहुँचा पाना चुनौती के साथ ही विकराल समस्या भी है। इसके अलावा स्वास्थ्य के क्षेत्र में महँगी दवाईयाँ, योग्य चिकित्सकों, स्वास्थ्य तकनीक एवं उपकरणों तथा अनुसंधान की कमी ने इस क्षेत्र में मुश्किलों को और भी बढ़ा दिया है। साथ ही आएदिन डॉक्टरों की हड़ताल, सरकारी अस्पतालों में सुविधाओं की कमी से हंगामा, डॉक्टरों में नैतिकता में गिरावट तथा बेहतर स्वास्थ्य नियंत्रक एवं नियामक संस्थाओं की कमी ने स्वास्थ्य स्तर को निचले पायदान पर खिसका दिया है जिसपर विचार और उचित कार्यवाही की तत्काल आवश्यकता है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

कीटनाशकों के प्रभावी प्रयोग हेतु यंत्र, उचित उपयोग एवं सावधानियाँ

एस.एन. सुशील एवं दीक्षा जोशी
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

दुनिया भर में विभिन्न कीटों, रोगों और खरपतवार के कारण लगभग 35% फसल उपज का नुकसान कटाई से पूर्व ही हो जाता है। विकसित देशों के मुकाबले, विकासशील देशों में इस क्षति का स्तर और ज्यादा होता है। वर्तमान समय में बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और आबादी के कारण खाद्य, चारे और अन्य कृषि वस्तुओं की माँग भी लगातार बढ़ती जा रही है और यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि सतत, स्थायी और लाभप्रद फसल उत्पादन के लिए, इन फसल कीटों, रोगों और खरपतवार का प्रभावी प्रबंधन किया जाए। ऐसे में, रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग फसल उत्पादन का एक अभिन्न हिस्सा बन गया है। यदि आंकड़ों को देखा जाए तो खेत में कीट नियंत्रण के लिए प्रयोग किए जाने वाले कीटनाशकों का 0.1% से भी कम भाग अपने लक्षित कीट तक पहुँच पाता है और 99.9% से अधिक कीटनाशक पर्यावरण में जाकर वहाँ लाभकारी जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हैं और साथ ही वातावरण को दूषित करता हैं। इसके अलावा, ये कीटनाशक जानवरों और मनुष्य के स्वास्थ के लिए भी हानिकारक होते हैं। कीटनाशकों के प्रभावी और इष्टतम प्रयोग के लिए कुछ मौलिक बिन्दुओं को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक हो जाता है। इसमें कीटनाशकों के प्रयोग के लिए सही यंत्र का चयन, प्रयोग की सही तकनीक, यंत्रों का उचित उपयोग एवं रख-रखाव और कीट जीवविज्ञान का पूर्ण ज्ञान अहम बिन्दु हैं। वर्तमान लेख में हम कीटनाशक प्रयोग द्वारा सफल कीट नियंत्रण सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त यंत्र एवं सावधानियों का वर्णन करेंगे।

कीटनाशकों का छिड़काव

खेत में कीटनाशकों के प्रयोग की सबसे आम और लोकप्रिय विधि छिड़काव है। छिड़काव के लिए अपेक्षित कीटनाशक की मात्रा की गणना *फार्मूलेशन* में सक्रिय घटक एवं कुल लक्ष्य क्षेत्र के आधार पर की जाती है। छिड़काव के दौरान यह सुनिश्चित करना अति आवश्यक है कि कीटनाशक की उचित खुराक प्रयोग हो और *स्प्रे* बूंदों का वितरण सही से हो। कीटनाशकों को व्यावसायिक रूप से विभिन्न रूपों में निर्मित किया जाता है जिसमें मुख्य हैं *इमल्सीफाईबल कनसंटरेट* (ईसी), *वैटेबल पाउडर* (डब्ल्यूपी), *सौलूबल कनसंटरेट* (एससी), सौलूबल पाउडर (एसपी), *सौलूबल डस्ट (एसडी), ग्रेन्युल (जी)* आदि।

मात्रा के आधार पर छिड़काव का वर्गीकरण

छिड़काव का प्रकार	पानी की मात्रा	बूंद का आकार (µm)
हाई वॉल्यूम (एचवी)	300–500 लीटर/हेक्टेयर	> 500
लो वॉल्यूम (एलवी)	50–150 लीटर/हेक्टेयर	200–300
अल्ट्रा लो वॉल्यूम (यूएलवी)	< 5 लीटर/हेक्टेयर	40–60

कीटनाशक छिड़काव में इस्तेमाल नोजल

नोजल समग्र कीटनाशक अनुप्रयोग संचालन का एक छोटा सा हिस्सा हैं परंतु वे उपकरण के प्रभावी अंग हैं जिसके माध्यम से *स्प्रे* गुजरता है। आवश्यक्तानुसार, उचित बूंद के आकार का उत्पादन करने के लिए नोजल के विभिन्न डिजाइनों का उपयोग किया जाता है और वर्तमान समय में कई अलग-अलग प्रकार के नोजल उपलब्ध हैं।

स्प्रे नोजल को 4 भागों में वर्गीकृत किया गया है:

- *हाइड्रोलिक* ऊर्जा *नोजल*
- गैसीय ऊर्जा *नोजल*
- *सेण्ट्रीफ्यूगल* ऊर्जा *नोजल*
- *थर्मल* ऊर्जा *नोजल*

हाई वॉल्यूम स्प्रेइंग विधियों के लिए उपयोग किए जाने वाले लगभग सभी *स्प्रेयर हाइड्रोलिक नोजल* के साथ *फिट* होते हैं। *नैपसैक* प्रकार के *लो वॉल्यूम स्प्रेयर* आमतौर पर गैसीय ऊर्जा नोजल के साथ संचालित किए जाते हैं।

कीटनाशकों के छिड़काव के लिए प्रयुक्त यंत्र

वर्तमान समय में बाजार में छिड़काव के लिए कई प्रकार के *स्प्रेयर* उपलब्ध हैं जिन्हें *मैन्युअल* अथवा *पावर* से संचालित किया जा सकता है। उपलब्ध *स्प्रेयर* यंत्रों को विभिन्न रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

I. **हस्त संचालित *हाइड्रोलिक स्प्रेयर*:** हस्त संचालित *स्प्रेयर* छोटे और सघन होते हैं और हाई *वॉल्यूम स्प्रेईंग* के लिए सबसे व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं। ये मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं:

- **स्टिर्रप पंप स्प्रेयर:** यह एक साधारण *हाइड्रोलिक स्प्रेयर* है जिसके *ऑपरेशन* के लिए दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इस *स्प्रेयर* में एक हाथ से संचालित *हाइड्रोलिक पंप* होता है और *पंप* के दूसरे चूषण हिस्से को फर्श पर एक बाल्टी में रखे हुए कीटनाशक के घोल में डाल दिया जाता है। पंप एक व्यक्ति द्वारा संचालित होता है जबकि दूसरे व्यक्ति के हाथ में *डिलीवरी लाइन* होती है जिससे वह छिड़काव करता है।
- ***कंप्रैशन स्प्रेयर:*** इस *स्प्रेयर* को पीठ पर बांध कर प्रयोग किया जा सकता है और इसके उपयोग के लिए केवल एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है। कीटनाशक घोल को इसमें बने हुए बेलनाकार *टैंक* में रखा जाता है। *फिल्टर* किए गए घोल को *टैंक* की 2/3 क्षमता तक भरते हैं जिसके बाद वायु पंप को संचालित करके टैंक में वायु के दबाव का निर्माण किया जाता है जो घोल को *स्प्रे नोजल* तक ले जाता है। पम्प संचालित करने वाले व्यक्ति को लगातार पंप करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसकी क्षमता 0.75-1.0 एकड़/दिन के करीब है। हालांकि, समय के साथ टैंक दबाव में कमी आने के परिणामस्वरूप असमान छिड़काव की समस्या इस *स्प्रेयर* में रहती है, जिस कारण यह खरपतवारनाशी कीटनाशकों के छिड़काव के लिए उपयुक्त नहीं है।
- **लीवर संचालित *नैपसैक स्प्रेयर:*** लीवर संचालित (*पिस्टन/डायाफ्राम टाइप*) नैपसैक स्प्रेयर सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाले हस्त *स्प्रेयर* में से एक है और इसे एक व्यक्ति द्वारा आराम से संचालित किया जा सकता है। इसे भी पीठ पर बांधा जा सकता है, और ऑपरेटर इसके पम्प को संचालित करने के लिए एक हाथ से *लीवर* को ऊपर और नीचे करके सक्रिय कर सकता है जबकि दूसरे हाथ से वह कीटनाशकों के छिड़काव की *डिलीवरी* नली को पकड़ कर छिड़काव कर सकता है।
- **फुट संचालित स्प्रेयर / *पेडल पंप स्प्रेयर:*** इस *हाइड्रोलिक स्प्रेयर* के *ऑपरेशन* के लिए दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है और *हाई वॉल्यूम स्प्रेइंग* के लिए इसका उपयोग किया जाता है। कीटनाशक घोल को एक बाल्टी में रखा जाता है और *पिस्टन* संचालित करके घोल को नली से चूसा जाता है। *स्प्रेयर* का *पंप,* पैर से एक *पेडल लीवर* द्वारा संचालित किया जाता है। *पंप* से तरल को एक दबाव कक्ष में वितरित किया जाता है जहाँ से तरल *स्प्रे नोजल* तक पहुँच जाता है। इस प्रकार का *स्प्रेयर* बगीचे और पेड़ों के छिड़काव के लिए सबसे उपयुक्त है।
- **ट्रैक्टर संचालित *हाइड्रोलिक स्प्रेयर:*** ट्रैक्टर-संचालित *बूम स्प्रेयर* का उपयोग बड़े क्षेत्र में फसलों पर कीटनाशकों का छिड़काव करने के लिए किया जाता है। *लोड* को अधिक समान रूप से फैलाने के लिए इस *स्प्रेयर* में ट्रैक्टर इंजन के साथ-साथ बड़ी क्षमता वाले टैंकों को ट्रेलरों पर या *सैडल टैंक* के रूप में रखा जा सकता है। इस *स्प्रेयर* का प्रयोग सड़क के किनारे खरपतवारनाशी *स्प्रे* करने के लिए भी किया जा सकता है। ऐसे *स्प्रेयर* बड़े क्षेत्रों में कम समय में छिड़काव कर सकते हैं एवं उच्च समानता और कार्य दक्षता प्राप्त कर सकते हैं।
- ***मोटराइस्ड नैपसैक स्प्रेयर* (धुंध *ब्लोअर*):** ये *लो वॉल्यूम स्प्रेयर* हैं जो गैसीय ऊर्जा नोजल के प्रयोग से चलता है। इन स्प्रेयरों में एक पंखें द्वारा उच्च गति की वायु धारा उत्पन्न की जाती है जिसे एक लचीली टयूब के माध्यम से बाहर छोड़ा जाता है। इस टयूब के अंत पर एक तरल प्रवाह *नोजल* लगा होता है। चूंकि उच्च गति वायु प्रवाह *नोजल* से गुजरता है, यह निकलते हुए तरल कीटनाशक घोल को बूंदों में तोड़ देता है जो उसके बाद वायु प्रवाह में प्रवेश करता है और बाहर छिड़क दिया जाता है।
- ***इलेक्ट्रोडाइन स्प्रेयर (इलेक्ट्रोस्टैटिक स्प्रेइंग):*** इस प्रकार के *स्प्रेयर* का उपयोग *अल्ट्रा-लो वॉल्यूम स्प्रेइंग* के लिए किया जाता है। *इलेक्ट्रोडाइन स्प्रेयर* का कामकाज एक ऐसी प्रणाली पर आधारित होता है जो एक *पौजिटिव* उच्च *वोल्टेज चार्जनोजल* के बीच स्थापित करता है एवं विद्युत बलों द्वारा रासायनिक *स्प्रे* की *चार्ज* की गई बूंदों को अत्यंत छोटी बूंदों में परिवर्तित करता है। तरल कीटनाशक को एक बोतल में डाला जाता है और गुरूत्वाकर्षण द्वारा नोजल तक लाया जाता है, जहाँ यह बैटरी द्वारा उत्पन्न चार्ज की गई बूंदों *(पौजिटिव चार्ज)* को उठाता है। *पौजिटिव चार्ज* की हुई बूंदें पौधों पर छिड़कने पर उनकी पूरी सतहों को ढक देती हैं। बूंदों का आकार 20 से 200 *माइक्रोन* के बीच होता है। इनमें *अल्वामास्ट, माइक्रोनेयर* इत्यादि *स्प्रेयर* का प्रयोग *अल्ट्रा लो वॉल्यूम* छिड़काव के लिए अक्सर किया जाता है।

कीटनाशकों की *डस्टिंग* के लिए उपकरण

कीटनाशकों के *डस्ट फार्मूलेशन्स* को खेत में वितरित करने के लिए उपयोग किए जाने वाले यंत्र को *डस्टर* कहा जाता है। *डस्टर* भी हस्त संचालित या पावर संचालित हो सकते हैं। *डस्ट* का बुरकाव करने के लिए उपयोग करे जाने वाले यंत्रों में मुख्य रूप से एक उत्तेजक (धूल कक्ष) होता है जिसमें एक *ऐजिटेटर,* समायोज्य छिद्र, *मीटरींग* तंत्र और वितरण टयूब होते हैं।

स्टिर्रप पंप स्प्रेयर

कंप्रेशन स्प्रेयर

नैपसैक स्प्रेयर

फुट संचालित / पेडल पंप स्प्रेयर ट्रैक्टर संचालित हाइड्रोलिक स्प्रेयर मोटराइस्ड नैपसैक स्प्रेयर (धुध ब्लोअर)

अल्ट्रा लो वॉल्यूम स्प्रेयर (बैटरी संचालित)

अल्ट्रा लो वॉल्यूम स्प्रेयर (वाहन माउंटेड)

रोटरी डस्टर

कीटनाशियों के प्रयोग हेतु विभिन्न प्रकार के यंत्र

हस्तसंचालित *डस्टस*

- ***प्लंजर डस्टर:*** यह एक साधारण कम लागत वाला *डस्टर* होता है जिसमें एक साधारण *प्लंजर,* एक धूल कक्ष और एक निर्वहन *(डिस्चार्ज) असेंबली* होती है। *डिस्चार्ज असेंबली* में एक सीधी *ट्यूब* या एक छोटी निकास पाइप होती है जिसका *डिस्चार्ज आउटलेट* को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। पंप से हवा को एक टयूब के माध्यम से *कंटेनर* में निर्देशित किया जाता है जहाँ यह धूल को उत्तेजित करता है और इसे निर्वहन छिद्र या टयूब से निकाला जाता है और पौधों पर बुरक दिया जाता है।
- ***बेलो डस्टर:*** यह रबड़, चमड़े या प्लास्टिक से बने साधारण *डस्टर* है। दबाने पर यह हवा को *पफ* करता है जो धूल को एक छोटे से बादल में बदल कर बाहर बुरक देता है।
- ***रोटरी डस्टर:*** यह *डस्टर* एक *ब्लोअर*/पंखे के प्रयोग से उच्च गति पर बड़ी मात्रा में हवा फेंकता है। इसके पंखे का संचालन एक *क्रैंक* घूर्णन द्वारा किया जाता है। कीटनाशक धूल को हवा की धारा में डाला जाता है और *आउटलेट* टयूब से बाहर बुरक दिया जाता है। *रोटरी डस्टर* को हाथ में लेकर या कंधे पर बांध कर प्रयोग किया जा सकता है।
- ***पावर डस्टर:*** ये *डस्टर्स इंजन* या *इलेक्ट्रिकल मोटर* की मदद से चलाए जाते हैं और ट्रैक्टर से भी संचालित हो सकते हैं। यह बड़े पैमाने पर कीटनाशक के प्रयोग के लिए उपयुक्त है।
- ***नैपसैक डस्टर:*** ये *डस्टर* वजन में हल्के होते हैं और ऑपरेटर की पीठ पर बांध कर इनका प्रयोग किया जा सकता है। *हॉपर* और *डिलीवरी* नली पाइप छोटे होते हैं। इनके टैंक में 8-10 किलो धूल तक डाली जा सकती है। इन *डस्टर्स* के *टैंक* से *ऐजिटेटर ट्यूब* को हटाकर और रासायनिक *टैंक* के *आउटलेट* में नली को लगाकर इन्हें एक *स्प्रेयर* में परिवर्तित किया जा सकता है।

कीट, रोग और खरपतवार नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का प्रयोग

सफल कीट नियंत्रण के लिए विभिन्न कारकों जैसे कि उचित कीटनाशक का ज्ञान, साथ ही कीटनाशक प्रयोग के लिए सही उपकरणों का चयन और कीट प्रकृति और जीवनचक्र का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है।

I. कीट नियंत्रण के लिए उचित यंत्र का चुनाव

- **स्थिर, रेंगने वाले और मिट्टी से उत्पन्न कीट**

  ऐसे कीटों के नियंत्रण के लिए *हाई वॉल्यूम* अथवा *लो वॉल्यूम* छिड़काव उपयुक्त होता है। यदि *हाई वॉल्यूम* छिड़काव करना हो तो सबसे उपयुक्त उपकरण *लीवर* संचालित नैपसैक *स्प्रेयर* है। इस *स्प्रेयर* का *हाइड्रोलिक* ऊर्जा *नोजल* के साथ 35-40 *पीएसआई* और 15-20 *स्ट्रोक/* मिनट की *लीवर ऑपरेटिंग* गति के साथ संचालन करके कीटनाशक का छिड़काव किया जा सकता है। यदि *लो वॉल्यूम* छिड़काव करना हो तो *मोटराइस्ड नैपसैक स्प्रेयर* (धुंध *ब्लोयर)* को *एयरब्लॉस्ट नोजल* एवं 2/3 *थ्रॉटल* की *ऑपरेटिंग* गति के साथ उपयोग किया जा सकता है।

- **पत्ते चूसने वाले छोटे कीट**

  ऐसे कीटों के लिए *लो वॉल्यूम* में छिड़काव करना उचित होगा। *मोटराइस्ड नैपसैक स्प्रेयर* (धुंध *ब्लोयर*) को *एयरब्लॉस्ट नोजल* एवं 2/3 थ्रॉटल की *ऑपरेटिंग* गति के साथ उपयोग किया जा सकता है।

उड़ने वाले कीट

उड़ने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए *मोटराइस्ड नैपसैक स्प्रेयर* (धुंध *ब्लोयर*) को *एयरब्लॉस्ट नोजल* एवं 2/3 *थ्रॉटल* की *ऑपरेटिंग* गति के साथ लो *वॉल्यूम* छिड़काव के लिए उपयोग किया जाता है। इसके अलावा बैटरी संचालित *लो वॉल्यूम स्प्रेयर* का भी *डिस्क नोजल* के साथ उपयोग किया जा सकता है। टिड्डियों के नियंत्रण के लिए *अल्ट्रा लो वॉल्यूम* छिड़काव भी करा जा सकता है।

रोग नियंत्रण के लिए उचित यंत्र का चुनाव

विभिन्न रोगों के नियंत्रण हेतु फफूँदीनाशकों का *हाई वॉल्यूम* छिड़काव करने के लिए लीवर संचालित *नैपसैक स्प्रेयर* का प्रयोग किया जाता है। कवकनाशी के छिड़काव के लिए इसको हालो कोन *नोजल* या *हाइड्रोलिक* ऊर्जा नोजल के साथ 35-40 *पीएसआई* और 15-20 स्ट्रोक/मिनट की *लीवर ऑपरेटिंग* गति के साथ संचालित किया जाता है। यदि लो वॉल्यूम में छिड़काव करना हो *तोमोटराइस्ड नैपसैक स्प्रेयर* (धुंध *ब्लोयर*) को *एयरब्लॉस्ट नोजल* और 2/3 *थ्रॉटल* की *ऑपरेटिंग* गति के साथ उपयोग किया जा सकता है। वैकल्पिक रूप से बैटरी संचालित *लो वॉल्यूम स्प्रेयर* का भी *डिस्क नोजल* के साथ उपयोग किया जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रण के लिए उचित यंत्र का चुनाव

अंकुरण पूर्व छिड़काव

अंकुरण के पूर्व खरपतवारनाशी के छिड़काव के लिए आमतौर पर बैटरी संचालित *लो वॉल्यूम स्प्रेयर* का उपयोग किया जाता है।

अंकुरण के बाद छिड़काव

अंकुरण के बाद छिड़काव के लिए *लीवर* संचालित *नैपसैक स्प्रेयर* आमतौर पर एक *फ्लैट फैन नौजल* के साथ 15-20 पीएसआई और 7 से 10 *स्ट्रोक*/मिनट की *लीवर ऑपरेटिंग* गति के साथ संचालित किया जाता है।

कीटनाशकों का उपयोग करते समय सावधानियाँ

विश्व बैंक ने अपनी एक रिपोर्ट में कृषि को एक खतरनाक व्यवसाय में वर्गीकृत किया है। इसके पीछे मुख्य कारण है कीटनाशकों के अनुचित एवं असुरक्षित उपयोग के कारण होने वाली बीमारियाँ और दुर्घटनाएँ। कीटनाशकों के उपयोग से उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, परंतु कई कीटनाशक मनुष्यों और अन्य प्रजातियों के लिए जहरीले होते हैं और मानव स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकते हैं। वैश्विक स्तर पर, कीटनाशकों के असुरक्षित एवं अनुचित उपयोग के कारण प्रदूषित पानी और खतरनाक कीटनाशकों के प्रत्यक्ष संपर्क में आ जाने से हर साल 3 लाख मौतें होती हैं, जिनमें से अधिकांश भारत और अन्य विकासशील देशों में होती हैं। ऐसे में कीटनाशकों के सुरक्षित उपयोग के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक हो जाता है, खासतौर पर कीटनाशकों को संभालने और परिचालन में कर्मचारियों की भूमिका, विभिन्न यंत्रों से छिड़कने के साथ-साथ कंटेनरों के उचित निपटारे एवं भंडारण की जानकारी आवश्यक है। विभिन्न स्तरों पर सावधानियों का विवरण निम्नवत है:

हैंडलिंग, मिश्रण और छिड़काव के दौरान

- कीटनाशक *कंटेनर* और पुस्तिका पर *लेबल* सावधानी से पढ़ा जाना चाहिए और खुराक आदि के बारे में निर्देशों का सही पालन किया जाना चाहिए।
- आवश्यकतानुसार सही उपकरण का चुनाव और प्रयोग करना चाहिए और कीटनाशकों का घोल बनाते समय और साथ ही उनके छिड़काव के समय *मास्क,* दस्ताने, चश्मा इत्यादि का प्रयोग व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए किया जाना चाहिए।
- कीटनाशक का सटीक माप और गणना की जानी चाहिए और रसायनों को खुले या अच्छी तरह हवादार इलाके में उनका घोल बनाना चाहिए।
- कीटनाशकों के साथ काम करते समय न तो कुछ खाना पीना है और न ही धूम्रपान करना चाहिए। साथ ही यह ध्यान रखना चाहिए कि आँखों या चेहरे को हाथों से न रगड़ा जाए।
- बेहद गर्म और हवादार मौसम के दौरान कीटनाशक छिड़कने से बचें।
- *कंटेनर* से कीटनाशक को निकालने के लिए मुँह का उपयोग कभी न करें या *नोजल* साफ करने के लिए *नोजल* में मुँह से हवा न दें। पानी और मुलायम ब्रुश के साथ *नोजल* साफ करना चाहिये।
- यदि छिड़काव करने के दौरान कोई अनियमित लक्षण दिखाई देता है, तो तुरंत चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिये।
- **खाली कंटेनरों और अनचाहे कीटनाशकों का निपटान**
- *स्प्रे टैंक* में बचे हुए कीटनाशकों को सिंचाई नहरों, जलमार्गों, तालाबों या कुएँ में कभी खाली नहीं किया जाना चाहिए।
- रिक्त *कंटेनर,* बाल्टी और मापने वाले उपकरणों को उपयोग के बाद तीन बार धोलकर ठीक से साफ करके उनका सुरक्षित जगह में भंडारण किया जाना चाहिए ताकि वह बच्चों/जानवरों की पहुँच से दूर रहें।
- कीटनाशकों के *स्प्रे* के बाद, सभी सुरक्षात्मक कपड़ों आदि को साबुन और पानी से अच्छी तरह से धोया जाना चाहिए और *स्प्रे* करने वाले व्यक्ति को डिटर्जेंट या साबुन का उपयोग करके पानी से स्नान करना चाहिए।

हिंदी सरल, सुबोध, सुदृढ़ और सुंदर भाषा है।
हिंदी है हम वतन है हिन्दुस्तान हमारा
मैं राजभाषा से राष्ट्रभाषा बन रही हूँ, मैं हिंदी हूँ, विश्व में छा रही हूँ।
हिंदी राजभाषा राष्ट्र का गौरव है, इसको अपनावें और गौरवशाली बनें।
हिंदी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं बल्कि देश में सर्वत्र बोली जाने वाली भाषा है।
-विलियम कैरी, भारतीय मिशनरी

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

चुकन्दर अतिथि के लिए परोसे

मिथिलेश तिवारी, राजीव रंजन राय, दिलीप कुमार, एस.आई. अनवर एवं ए.के. सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

चुकन्दर में कार्बोहाइट्रेड, प्रोटीन, खनिज लवण और विटामिन पाए जाते हैं। इसमें प्रचुर मात्रा में शर्करा पाई जाती है। सब्जी के उत्पाद के रूप में इसका प्रयोग किया जा सकता है। भारतीय लोगों की खाने और पकाने की रूचि विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग है। वे किसी भी भोजन को अपने स्वादानुसार पकाते और बनाते हैं। यद्यपि इस तरह से तैयार किया गया भोजन आहार व पौष्टिकता की दृष्टि से आवश्यक तत्वों को कम कर देता है। फिर भी स्वाद के लिए वे इस महत्वपूर्ण बात को ध्यान में नहीं रखते। इस प्रकार चुकन्दर के विभिन्न प्रकार के पकवान बनाकर अलग-अलग क्षेत्रों के अनुसार बनाया और खाया जाता है।

चुकन्दर के पोषक तत्व

100 ग्राम चुकन्दर में 9.59 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 6.76 ग्राम शर्करा, 2.8 ग्राम रेखा, 0.17 ग्राम वसा, 1.61 ग्राम प्रोटीन, 87.58 ग्राम जल, 43 मि.ग्रा. फास्फैरस, 27 ग्राम कैल्शियम, 10 ग्राम विटामिन सी तथा 4 मि.ग्रा. नियासिन होता है। चुकन्दर से तैयार होने वाले विभिन्न व्यंजन निम्नवत हैं :

चुकन्दर का हलवा

सामग्री : चुकन्दर- 1 कि.ग्रा., दूध, - 1 लीटर, चीनी - 750 ग्राम, सूखे मेवे (बादाम, काजू)- 50 ग्राम, खोया - 250 ग्राम, देशी घी - 50 ग्राम।

बनाने की विधि : घी को पहले *पैन* में गर्म करें। उसमें कद्दूकस किया हुआ चुकन्दर डालकर अच्छी तरह भूनें। चुकन्दर में चीनी मिलाकर 2 मिनट तक भूनें। फिर दूध मिलाकर 15 मिनट तक चलाते रहें। खोया को कद्दूकस करके हल्का सा भूनकर मिलाएँ। हलवा तैयार हो जाए तो उसमें सूखे मेवे (बादाम, काजू, इलायची) आदि डालकर बर्तन में सजाएं।

चुकन्दर की पकौड़ी

सामग्री : चुकन्दर- 1 कि.ग्रा., बेसन - 500 ग्राम, हल्दी - 1 चम्मच, धनिया - 2 चम्मच, जीरा भुना हुआ - 1 चम्मच, हरी मिर्च - 2, प्याज पिसी - 2 चम्मच, सरसों का तेल - 250 ग्राम, नमक स्वादानुसार।

बनाने की विधि : चुकन्दर को कद्दूकस कर फिटकरी के पानी में डालकर निचोड़ लें। बेसन के घोल में हल्दी, धनिया, जीरा भूना हुआ, हरी मिर्च कटी हुई, प्याज पिसी हुई, नमक स्वाद के अनुसार कद्दूकस किया हुआ चुकन्दर मिलाकर 5 मिनट तक रख दें। कढ़ाई में तेल गर्म करके पकौड़ी बनाकर उसमें डालें। हल्का लाल होने तक चलाएं (भूनें)। उसके पश्चात् पकौड़ी को छान लें। गर्मागरम पकौड़ियाँ तैयार हो जाएं तो *सॉस* के साथ *सर्व* करें।

चुकन्दर की खीर

सामग्री : चुकन्दर - 1 कि.ग्रा., चीनी - 500 ग्राम, खोया - 100 ग्राम, दूध - 2 लीटर, देशी घी - 50 ग्राम, सूखे मेवे - 10 ग्राम, इलायची - 10 ग्राम

बनाने की विधि : चुकन्दर को कद्दूकस कर फिटकरी के पानी में डालकर निचोड़ लें। उसके बाद देशी घी डालकर इसे 2-3 मिनट चलाते रहे। कद्दूकस करके हल्का सा भूकर खोया मिलाएं। दूध मिलाकर 15-20 मिनट तक अच्छी तरह उबालें तथा सूखें मेवे व इलायची इत्यादि डालकर अच्छी तरह मिलाएं। चुकन्दर की खीर तैयार हो जाने पर सजाकर इसे *सर्व* करें।

चुकन्दर की बड़िया

सामग्री : चुकन्दर - 1 कि.ग्रा., उरद की दाल - 500 ग्राम, जीरा- 1 चम्मच, हींग - 1 चुटकी, हल्दी - 1 चम्मच, धनिया - 2 चम्मच, मिर्च - 1 चम्मच, गरम मसाला - 1 चम्मच, नमक स्वादानुसार।

बनाने की विधि : चुकन्दर को कद्दूकस कर फिटकरी के पानी में डालकर निचोड़ लें। उरद की दाल को पीसकर उसमें हींग, हल्दी, धनिया, गरम मसाला, नमक आदि मिलाकर थोड़ी देर के लिए रख दें। उसके बाद छोटी-छोटी बड़िया बनाकर धूप में सुखा लें। सब्जी में डालकर बनाने के लिए चुकन्दर की बड़िया तैयार हैं।

चुकन्दर का पराठा

सामग्री : चुकन्दर - 1 कि.ग्रा., गेहूँ का आटा - 1 कि.ग्रा., हल्दी- 1 चम्मच, जीरा - 1 चम्मच, धनिया - 1 चुटकी, हरा धनिया, मिर्च- 2, घी - 100 ग्राम, मक्खन - 50 ग्राम, नमक - स्वादानुसार।

बनाने की विधि : चुकन्दर को कददूकस कर फिटकरी के पानी में डालकर निचोड़ लें। कद्दूकस किया हुआ चुकन्दर को आटे में भुना जीरा, हल्दी, धनिया, हरी मिर्च (बारीक कटी हुई), नमक, मिलाकर गूँथ लें। छोटी-छोटी लोईयां बनाकर पराठे बना लें। हल्का लाल होने तक तवे पर सेक लें। मक्खन लगाकर *सर्व* करें।

चुकन्दर के दही-मल्ले

सामग्री : चुकन्दर - 1 कि.ग्रा., धुली उर्द की दाल - 500 ग्राम, जीरा - 1 चुटकी, दही - 1 कि.ग्रा., पका केला - 2, चीनी - 50 ग्राम, चाट मसाला - 1 चम्मच, तेल - 250 ग्राम, नमक - स्वादानुसार।

बनाने की विधि : चुकन्दर को कद्दूकस कर फिटकरी के पानी में डालकर निचोड़ लें। उरद की दाल को पीसकर कद्दूकस किए हुए चुकन्दर में, हींग, जीरा, नमक आदि मिलाकर थोड़ी देर के लिए रख दें। तेल गर्म करके बड़े को लाल होने तक तल लें। उसके बाद नमक पानी का घोल बनाकर उसमें दो मिनट डुबो दें। बाद में पानी से बड़े को निकाल लें। दही में चीनी का घोल तैयार करें। दही बड़े को घोल में डालकर आधे घंटे के लिए रख दें। चाट मसाला, जीरा, नमक डालकर *सर्व* करें।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

लघु उद्योग प्रदर्शनी

आशा यादव एवं सुधीर कुमार
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत एक कृषि प्रधान देश है परन्तु कृषि के व्यवसाय में वर्ष में मुश्किल से छः महीने ही काम होता हैं, अतः वर्ष के बचे हुए छः महीने का उपयोग कुटीर उद्योग और लघु उद्योगों में किया जा सकता है। कुटीर उद्योग के विकास से देश की बेरोजगारी और गरीबी कुछ हद तक दूर हो रही है। सरकार द्वारा धन, कच्चा माल तकनीकी सहायता देकर तथा इनकें तैयार माल को खपत कराकर इन उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे लोगों की बेरोजगारी भी दूर होगी और देश का आर्थिक विकास भी होगा। उद्योग देश की रीढ़ होते हैं। पिछले कुछ वर्षों में हमारे लघु उद्योगों और कुटीर उद्योगों में कमी आई है। अतः हमें देश के लघु एवं कुटीर उद्योगों को आगे बढ़ाना चाहिए। हमें किसानों को प्रोत्साहित करना चाहिए और उन्हें लघु उद्योग को आगे बढ़ाने के लिए उनकी मदद करनी चाहिये। हमारे देशभक्त नेताओं ने लघु उद्योगों को प्रोत्साहन दिया है। आज यन्त्रीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण लघु उद्योगों को बढ़ावा मिला है। आज कृषि विभाग द्वारा लघु एवं कुटीर उद्योगों को लोगों तक पहुँचाने के लिये समय-समय पर प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती हैं। जो सामान हम अपने हाथ से या मशीन से बनाते हैं, उन्हें प्रदर्शित किया जाता है। छोटी मशीनों या फिर हाथ से बने समान को हम प्रदर्शनी में लगातें हैं, तो आस-पास के सभी लोग इन्हें देखने के लिये आते हैं और उन वस्तुओं के प्रति प्रोत्साहित होते हैं। प्रदर्शनी में रोचकता के साथ-साथ मनोरंजन का भी ध्यान रखा जाता है जिससे कि उसके प्रति लोगों का आकर्षण बना रहे। लोग इसे मेले के रूप में स्वीकार करते हैं और अपनी उन्नति करते हैं। यह प्रदर्शनी कई दिनों तक चलती है।

"किसी जाति की उन्नति में बने कारण सदा मेले।"
कृषि उद्योग धन्धों को बढ़ाते है सदा मेले।।
जगत जीवन में सुख शान्ति को लाते है सदा मेले।
अगली महाउल्लास पाते हैं सभी जन देखकर मेले।।

गत वर्ष मैंने इसी प्रकार की प्रदर्शनी आगरा में देखी। यहाँ हर वर्ष प्रदर्शनी लगायी जाती है यहाँ पर भारत के लघु उद्योगों की शिल्प और कला प्रदर्शित की जाती है। हस्तशिल्प के अलावा, संगीत, कला, नृत्य, गायन भी उत्कृष्ट शिल्प के सामने सभी जगहों पर प्रदर्शित किये जाते हैं। देश के सभी जिलों में अब लघु उद्योग को बढ़ावा देने के लिए प्रदर्शनी लगाई जाती हैं। हमारे लखनऊ शहर में भी ''लखनऊ महोत्सव'' का आयोजन हर साल किया जाता है जिसमें देश के कोने-कोने से शिल्पकार अपने-अपने सामानों को लेकर आते हैं और दुकान लगाते हैं, इसमें नृत्य, कला, संगीत, हस्तशिल्प, यांत्रिकों का प्रदर्शन किया जाता है।

सभी क्षेत्रवासी प्रदर्शनी को देखने के लिए आते हैं और अपनी-अपनी जरूरत का समान खरीदते हैं। उस स्थान की भव्यता और बिजली का प्रकाश व सजावट देखने लायक होती है। खादी ग्रामीण उद्योग को भी बढ़ावा मिलता है। इससे रोजगार के अवसर बढ़ते हैं और लघु उद्योग से जुड़े लोगों की आमदनी भी बढ़ती है, और देश भी तरक्की करता है। गाँव की महिलाएं भी खाली समय का उपयोग करती हैं और अपने परिवार की आमदनी बढ़ाने में सहयोग करती हैं। प्रदर्शनी में छोटे शिल्पकार से लेकर बड़े-बड़े कारीगरों के सामान की बिक्री होती है। इस प्रदर्शनी में लकड़ी के सामान, मिट्टी के बर्तन, जूट से बने सामान, कुम्भकारों आदि द्वारा निर्मित वस्तुएँ मिलती हैं। देश के कोने-कोने का प्रसिद्ध सामान हमें एक ही स्थान पर मिल जाता है। ऐसे उद्योगों की प्रदर्शनी हर बड़े शहरों में एक बार या दो बार अवश्य आयोजित की जानी चाहिये। इससे कुटीर उद्योगों को बढ़ावा मिलता है और लोगों को काम भी मिलता है।

इस क्षेत्र में हमें और आगे बढना चाहिए। हमारे प्रधानमंत्री जी ने छोटे उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिये बहुत सी योजनाएं चलाई हैं। जिसमें किसानों तथा उद्योग से जुड़े लोगों के लिए सहायता राशि जिससे लोग अपने कार्यों को असानी से आगे बढ़ा सकें और अपना तथा देश का विकास कर सकें। जिससे बेरोजगार लोगों को स्वालम्बी बनने का अवसर मिलेगा और वह अपने रहन-रहन के स्तर को और अच्छा कर सकते है, अपने परिवार की जीविका में सहयोग कर सकते हैं। हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली भी व्यवसाय को ध्यान में रखकर निर्धारित की गयी है। शिक्षा और व्यवसाय एक दूसरे से जुड़े हुये है। जो कि हमारे नौजवानों को व्यवसाय में सफलता दिलाए और जीवकोपार्जन का साधन बने। उत्तम शिक्षा उच्च तकनीकी व्यवसाय के लिये रामबाण है। धन की आवश्यकता सभी प्राणियों को होती है। अतः धन का अर्जन करने के लिए हमें लघु कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करना चाहिये जिससे हमें नई-नई जानकारी भी मिलती रहेगी और उद्योग तेजी से आगे बढ़ेगा। स्वरोजगार के अवसर भी बढ़ते रहेगें। हमारा भारत देश तेजी से विकास की ओर अग्रसर होगा। विद्या, धन एवं धैर्य किसी भी व्यवसाय में सफलता दिलाते हैं।

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है, प्राप्त भवन में टिके रहना।
हमें पहुँचना उस मंजिल तक, जिसके आगे राह नहीं है।।"

इस तरह प्रदर्शनी के माध्यम से हम लघु उद्योगों को लोगों तक पहुँचा सकते है और आगे बढ़ सकते है। इससे शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों का विकास तेजी से आगे बढ़ता है।

आमोद प्रमोद प्रभाग

दृष्टिकोण

सी.पी. सिंह एवं देवेंद्र सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

दृष्टिकोण के सामान्य और साधारण अर्थ को यदि हम समझने का प्रयास करें तो कह सकते हैं कि किसी भी व्यक्ति या समाज की दृष्टि के कोण या झुकाव को इंगित करने की शक्ति को दृष्टिकोण कहते हैं और यह किसी भी विषय के सोचने और समझने की सामान्य प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले कारकों में यह एक महत्वपूर्ण कारक है। उर्दू का शब्द 'नजरिया' हिंदी के 'दृष्टिकोण' का समानार्थक है। दृष्टि यानि *नजर* तथा दृष्टिकोण अर्थात *नजरिया* के अन्तर को किसी शायर ने इस तरह फरमाया है, **"*नजर* से देखते हैं हम सारे *जहाँ* को, मगर *नजरिया दीदार* कराता है *नजर* को"**। तात्पर्य यह है कि अपनी नजर से हम वही देखते (*दीदार* करते) हैं जो हमारा *नजरिया* यानि दृष्टिकोण होता है।

सामान्यतः दृष्टिकोण दो प्रकार के होते हैं, एक सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक। मगर विभिन्न व्यक्तियों के दृष्टिकोण और भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, चाहे वह सकारात्मक हों या नकारात्मक। वास्तव में दृष्टिकोण विकसित होने में अनेकों कारक कार्य करते है। इन कारकों में जीवन की प्रतिक्षण घटित होने वाली प्रत्यक्ष घटनाएं प्रमुख होती हैं। जिनका सर्वाधिक असर दृष्टिकोण के विकास पर पड़ता है। इनके अलावा कई घटनाओं या बातों को सुनकर, पढ़कर या अन्य ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करके हम भिन्न-भिन्न तरह की धारणाओं से प्रभावित होकर अपना दृष्टिकोण बनाते हैं। दृष्टिकोण में इस भिन्नता का पैमाना कुछ भी हो सकता है यानि एक व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण से पूर्णता विपरीत हो सकता है जैसे कि एक ईमानदार व्यक्ति का दृष्टिकोण एक बेईमान व्यक्ति के दृष्टिकोण से विपरीत हो सकता है। इसी प्रकार एक अनुभवी और अनुभवहीन, बालक, युवा और वृद्ध, पिता-पुत्र यहाँ तक कि एक ही परिस्थिति से गुजरे हुए दो जुड़वां भाईयों के दृष्टिकोण में अन्तर पाया जाता है।

वास्तव में क्या मनुष्य का दृष्टिकोण उसके सोचने व समझने के झुकाव का आधार बनता है या उसके सोचने और समझने के आधार पर दृष्टिकोण बनाता है? यह एक जटिल व एक-दूसरे पर निर्भर प्रक्रिया है। मेरे विचार से तुलसीदास रचित रामचरित मानस की निम्नलिखित चौपाई इस विषय पर कुछ प्रकाश अवश्य डालती है। **"जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी"**।।

जीवन में दृष्टिकोण का महत्व क्या है? इसे समझने के लिए आवश्यक है कि हम यह जानने की कोशिश करें कि इसकी आवश्यकता कहाँ है ? दरअसल जीवन के अधिकतर कार्य हम अपने सामान्य ज्ञान व परिस्थिति के अनुसार सम्पन्न करते हैं। मगर जिन कार्यों में हमें निर्णय लेने की आवश्यकता होती है वहाँ पर अधिकतर निर्णय हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करते हैं। *मसलन* हमें किसी व्यक्ति की आर्थिक मदद करनी है। यहाँ मदद करने और न करने के बीच निर्णय की परिस्थिति में हमारा दृष्टिकोण महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। हम आर्थिक दृष्टिकोण से सक्षम हैं या नहीं ? सहायता करना सामाजिक दृष्टिकोण से कितना आवश्यक है ? नैतिक दृष्टिकोण से हमें क्या करना चाहिए ? पारिवारिक दृष्टिकोण से इमें इस सन्बन्ध में किससे चर्चा करनी चाहिए ? आदि-आदि। इन सभी दृष्टिकोणों के अतिरिक्त, एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण होता है, वह हमारा निजी दृष्टिकोण। यही दृष्टिकोण किसी विषय पर सभी दृष्टिकोणों से विचार करने के बाद हमें अंतिम निर्णय पर पहुँचाता है। आपके निजी दृष्टिकोण को भी प्रभावित करने वाले अनेकों कारक हो सकते हैं जो कि आपके व्यक्तित्व का अंग हो सकते हैं जैसे कि आपकी उदारता, कंजूसी, स्वार्थ, संकोच, लोकप्रियता की महत्वाकांक्षा आदि-आदि।

क्या दृष्टिकोण में परिवर्तन भी होता है? दृष्टिकोण परिवर्तनशील है और परिवर्तनशीलता की गति में भिन्नता भी पाई जाती है जैसे एक बालक के दृष्टिकोण में परिवर्तन अपेक्षाकृत अति शीध्र होता है क्योंकि उसका मस्तिष्क विकासशील और परिवर्तनीय अवस्था में होता है और अनेकानेक घटनाएँ उसके जीवन में पहली बार घटित हो रही होती हैं जिससे उसकी धारणाओं में परिवर्तन होने से उसके दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो सकता है। जब कि बड़ी उम्र के लोगों में यह परिवर्तन अपेक्षाकृत मन्द गति से होता है बशर्ते कोई अप्रत्याशित या अकल्पनीय घटना न घटित हो जाय जो मन व मस्तिष्क को झकझोर दे या किसी माध्यम से ऐसा ज्ञान या अज्ञान पैदा हो जाय जो कि व्यक्ति को अपना दृष्टिकोण परिवर्तन के लिए विवश कर दे। हालांकि एक परिपक्व युवावस्था के बाद इसमें लगभग स्थिरता आने से

परिवर्तन के अवसर अपेक्षाकृत कम हो जाते हैं। दृढ़शक्ति में कमजोर व्यक्तियों के दृष्टिकोण में अपेक्षाकृत अधिक परिवर्तन होता है।

दृष्टिकोण का यद्यपि कोई पैमाना नहीं होता जिससे यह नापा जा सके कि किसका दृष्टिकोण कितना बड़ा है या कितना छोटा ? मगर यह स्पष्ट है कि जो लोग जितने अधिक लोगों के संपर्क में आते हैं और देश-दुनियाँ के विभिन्न भू-भागों में बसे हुए लोगों की भिन्न-भिन्न भाषाओं एवं संस्कृतियों के संपर्क में आते हैं उनका दृष्टिकोण निश्चय ही अपने क्षेत्र तक सीमित रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा विस्तृत होता है। इसका कारण भी बहुत स्पष्ट है कि ऐसे लोग विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के व्यक्तित्व से प्रभावित होने के साथ-साथ देश-विदेश में भ्रमण, जीवकोपार्जन एवं विभिन्न भू-भागों की संस्कृतियों में अपने आप को समायोजित करके वहाँ के निवासी बनाने के संघर्ष के अनुभव से परिपूर्ण होते हैं। वहीं एक क्षेत्र विशेष तक सीमित रहने वाले लोगों का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत संकुचित रह जाता है।

इन सभी बाह्य परिप्रेक्ष्यों के इतर यदि हम बात करें कि क्या दृष्टिहीनों का भी दृष्टिकोण होता है ? तो एक साधारण तर्क दिया जा सकता है कि जब उनके पास दृष्टि ही नहीं तो दृष्टिकोण कैसा ? मगर जैसा कि पहले ही उद्धत किया जा चुका है कि **"नजरिया दीदार करता है नजर को"** अर्थात नजरिया मात्र नजर से ही नहीं बनता है दृष्टिहीन व्यक्ति देख भले ही न पाते हों मगर किसी भी विषय पर ज्ञान प्राप्त करने के विभिन्न स्रोतों जैसे ब्रेल लिपि द्वारा पढ़कर, उसके बारे में सुनकर या अन्य अहसासों जैसे श्रवण, सूंघने, स्पर्श करने आदि से मस्तिष्क की विशेष प्रतिभावों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके और अंतः मन में उसका विश्लेषण करके अपने अंतःकरण में अपना दृष्टिकोण स्थापित करते हैं।

सभ्य व्यक्ति की पहचान

आर.के. सिंह एवं आर.एस. चौरसिया

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

हम किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत ओर सभ्य कहें? सभ्यता और संस्कृति की सही पहचान क्या है? एक सभ्य व्यक्ति में कौन-कौन से गुण होने चाहिए? यह कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जो समय-समय पर हमारे बीच उठते रहते हैं, जिन पर हम आपस में चर्चा करते रहते हैं। हमें उन प्रश्नों के उत्तर अवश्य आने चाहिए। हम प्रायः सुनते हैं कि वह बड़ा असभ्य है। ऐसे सुसंस्कृत व्यक्ति अब गिने-चुने रह गये हैं। हे भगवान**!** कैसे असभ्य और गंवार से पाला पड़ा। इन सब वाक्यों का अर्थ और संदर्भ क्या है? एक सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति में कुछ विशेषताएं होती हैं जो उसको ऐसा कहलाने का अधिकारी बनाती हैं। यह विशेषताएं आचरण, व्यवहार, सोच-विचार और भावनाओं के स्तर पर स्पष्टतया देखी जा सकती हैं। एक सभ्य व्यक्ति सहृदय, करूणामय और मित्रवत होता है। वह किसी को हानि, चोट और दुःख नहीं पहुँचाता। दूसरों के कष्ट में उनकी सहायता करता है। उसमें सहिष्णुता और सहनशीलता होती है। वह दूसरों के भावों और विश्वासों का आदर करता है तथा उनका विचार धैर्यपूर्वक सुनता है। उसके विचार उदार और हृदय विशाल होता है। उसमें धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास और संकीर्ण राष्ट्रीयता के भाव नहीं होते। वह पढ़ा-लिखा और विवेकशील होता है। उसमें गहरी भावनाएं होती हैं, परन्तु वह हर बात का निर्णय तर्क की तराजू पर करता है। वह भावनाओं में बह नहीं जाता। वह स्वभाव से ही प्रकृति प्रेमी, अनुशासित और कर्तव्यनिष्ठ होता है। वह अधिकारों से अधिक कर्तव्यों पर बल देता है। वह अध्ययनशील, विनम्र, कर्तव्यनिष्ठ और गंभीर होता है। उसे अपनी संस्कृति, सभ्यता और इतिहास का अच्छा ज्ञान होता है वह देश के नियम कानूनों का स्वभाव से ही पालन करता है तथा प्रशासन में अधिकारियों की सब तरह से सहायता करता है। एक सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति एक आदर्श नागरिक भी होता है। उसे अपने देश व उसकी सांस्कृतिक धरोहर पर गर्व होता है। वह कभी अफवाहों पर विश्वास नहीं करता और देशहित में तत्पर रहता है। उसका चरित्र प्रशंसनीय और अनुकरणीय होता है।

आमोद प्रमोद प्रभाग

पर्यावरण : कारण और निवारण

सुरेश कुमार
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

दोहावली

पीपल सरसी तट खड़ा रचता है इतिहास।
नभचर थलचर ने यहाँ, आय बुझाई प्यास।।
शुद्ध नहीं वातावरण, दूषित है आकाश।
शिष्ट मनुज ही कर रहे, सुंदर प्रकृति विनाश।।
खतरे में जग-जीवन है, सूख रहीं सब झील।
मलिन हुई जलवायु है, लुप्त हो रहीं चील।।
नदियाँ नाले बन रहीं, कुछ तो करिए ध्यान।
जहर घुल रहा नीर में, राखो इसका भान।।
जीवनदाता सभी, हम ऐसे बे पीर।
जहर रसायन घोलते, बिगड़ गया सब नीर।।
खाद्यान्न दूषित हुए, प्राणवायु और नीर।
कचरा पॉलीथीन पर, कुछ तो हो गंभीर।।
उगल रहे उद्योग हैं, और बस मोटर यान।
जहर धरा में घोलते, खाद रसायन जान।।
समय अभी है सोचिए, प्रकृति रहे खुशहाल।
जंगल जो कटते रहे, होगा अति बुरा हाल।।
नीम आम पीपल सहित, बट पाकर कचनार।
इनके रोपड़ से करो, पर्यावरण सुधार।।
नट पनघट सूखे सभी, बाल वृद्ध गमगीन।
वन्य जीव प्यासे फिरें, जल बिन तड़पत मीन।।
दूषित पर्यावरण से, विपत्ति हजारों होए।
तन-धन की हानि हो, चैन अमन सब खोए।।
पेड़ हमारे मित्र हैं, वन है मेरी जान।
पेड़ों की रक्षा करो, ये पर्यावरण की शान।।
हरियाली गायब हुई, उग्र हो गयी धूप।
पीला रंग अब हो चला, बागीचों का रूप।।
वायु धरा जल वृक्ष वन, कुदरत की सौगात।
यत्न-यत्न हो रही, बदल रहा परिवेश।
पर्यावरण बिगाड़ते, सकत रसायन देश।।
दिनकर की दाह तपी, वायु बड़ी बेपीर।
अग्निबाण सम आ लगे, व्याकुल होत शरीर।।
सुमन सुहानी वादियाँ, भयीं सकल वीरान।
अनिप-ताप का कारवाँ ताने चला कमान।।

जल संरक्षण

बारिश का सारंग है, कुदरत का वरदान।
इसका संचय कीजिये, है जीवन की खान।।
खाद्यान्न जो खत्म हों, फिर अर्जित हो जाए।
जल-जीवन समरूप हैं, मिटे कहाँ से आय।।
मानव यह मन जान ले, जल जीवन का मूल।
बूँद-बूँद रक्षण करो, पक्का रहे उसूल।।
बूँद-बूँद है सुधा सम, राखो इसे सँभाल।
बिन पानी हो जायगा, जीना बहुत मुहाल।।
सदा सुरक्षित जल रहे, ऐसा करें प्रयास।
वरना भावी समय में, कहाँ बुझेगी प्यास।।
सब धन से अनमोल है, जल की पावन बूँद।
मत इसको बरबाद कर, ऐसे आँखें मूँद।।
जल जीवन का सार है, यह ले मानव जान।
यही संदेशा दे गये, तुलसी और रसखान।।

श्रृंगारिक

धीरे-धीरे चैत ने, खोले अपने रंग।
स्वेदकणों की देह से, शुरू हो गयी जंग।।
लू के झोकों ने किया, दोपहर पर अधिकार।
ताने सीना घूमता, रवि बन थानेदार।।
प्यासी धरती पर पड़ी पानी की बौछार।
मुरझाई आभा खिली किए नवल श्रृंगार।।
आज प्रेम से मिल रहे, धरती और आकाश।
बूँद पाश में बँध गये, पूर भयी सब आस।।
आया सावन झूम के, छाई मस्त बहार।
वृक्ष वल्लरी सज गये, चहुँ दिश वन्दनवार।।
नदियाँ नाले सब भरे, दीखे मगन नदीश।
परती भू को मिल गयी, हरी घास बख्शीश।।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

पानी पीते समय रखें ये ध्यान, नहीं होगा स्वास्थ्य को कोई नुकसान

ब्रह्म प्रकाश
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

ऑक्सीजन के बाद, मानव जीवन के अस्तित्व के लिए परम आवश्यक है पानी।
प्रत्येक स्त्री-पुरुष के शारीरिक वजन का दो तिहाई अंश, होता बस यही पानी।।
प्यास को बुझाकर शारीरिक ताप के नियमन में, महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है पानी।
रक्त, हड्डियों व मस्तिष्क में नमी की उचित मात्रा बनाए रखने में सहायक ये पानी।।
शरीर के आँख, नाक व मुंह जैसे अंगों में, नमी का उचित स्तर बनाए रखता है पानी।
हमारे शरीर के सभी जोड़ों में *लुब्रीकेंट्स* व *कुशन* के रूप में कार्य करता है पानी।।
शरीर से पसीना, मूत्र व मल जैसे पदार्थों को शरीर से उत्सर्जित करता है ये पानी।
पाचन तंत्र में खाए हुए भोजन को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभाता है पानी।।
खाए भोजन को पचाने हेतु आवश्यक, मुंह की लार का मूल आधार है यही पानी।
जल में रेशों के घुलनशील होने के कारण, मल उत्सर्जन में भी मददगार है पानी।।
शरीर में प्राकृतिक शारीरिक *हाइड्रेशन* को, बरकरार रखता है यही बहुमूल्य पानी।
मूत्राशय के संक्रमण व मूत्र की नली में पथरी होने पर देता इनका निदान भी पानी।।
गर्भवती व दुग्धपान करने वाली महिलाओं को, पीना चाहिए अधिक मात्रा में पानी।
डिहाइड्रेशन की समस्या आपको हो सकती है, यदि आपने नहीं पिया पर्याप्त पानी।।
कोई नियम नहीं हैं दिन भर में एक व्यक्ति कितनी बार में किस मात्रा में पिए पानी।
शरीर के आकार, शारीरिक क्रिया-कलापों व मौसम के हिसाब से ही पीना चाहिए पानी।।
प्रतिदिन *एक्सरसाइज* या *वर्कआउट* के बाद भी अतिरिक्त मात्रा में सेवन करें पानी।
अधिक घूमने-फिरने या शारीरिक श्रम करने पर 3-4 बार पी सकते हैं एक गिलास पानी।।
इतना तो आप समझ ही गए होंगे अब तक, उचित समय पर अवश्य पीना चाहिए पानी।
स्मरण यह भी रखें कि शरीर पर दुष्प्रभाव डालता है गलत समय पर पिया गया पानी।।
खाने का पाचन सही तरह से नहीं हो पाता है, यदि खाना खाते ही यदि पी लिया गया पानी।
विभिन्न समस्याओं से बचना है यदि तो, खाना खाने के 40 मिनट बाद ही पीना चाहिए पानी।।
आप बहुत सूखा भोजन कर रहे हैं तो खाने के दौरान भी आप पी सकते हैं दो-तीन घूंट पानी।
प्रातःकालीन खाना खाने के बाद आप छाछ, मौसमी फलों का रस पिएँ या पी लें नींबू पानी।।
रात के खाना खाने के उपरांत प्यास लगने पर, दूध का सेवन कर सकते हैं, तो न पिएँ पानी।
सुबह खाली पेट पानी पीना ठीक होता है पर कभी भी पेशाब करने के तुरंत बाद न पिएँ पानी।।
चाय या कॉफी जैसे गरम पेय पदार्थ पीने के तुरंत बाद भी, नहीं पीना चाहिए कभी ठंडा पानी।
ठंडी प्रकृति वाले व खट्टे एवं अधिक जल वाले फल, खाने के बाद भी नहीं पीना चाहिए पानी।।
गर्मी में लू तथा सर्दी में ठंडक से शरीर को बचाने हेतु भी, पीना चाहिए पर्याप्त मात्रा में पानी।
तापमान की दोनों सीमाओं पर सुरक्षात्मक भूमिका में, रक्त परिसंचरण हेतु मददगार ये पानी।।
रोगी व्यक्तियों के संपर्क में रहने के बावजूद, संक्रमण से भी आपको सुरक्षित रखता है पानी।
जीवाणु व विषाणुओं को शरीर से निकालकर, इनके बहुगुणन में बाधा उत्पन्न करता ये पानी।।
बीमार होने पर शीघ्र स्वस्थ होने हेतु बेहतर रहेगा, यदि पिएँ प्रतिदिन आप आठ गिलास पानी।
चाय, कॉफी, रस व सूप की जितनी मात्रा पी ली हो, उतनी ही कम मात्रा में पी सकते हैं पानी।।

दिन में नींद आएँ परंतु आप सो नहीं सकते हों तो, नींद उड़ाने हेतु पी लें एक-दो गिलास पानी।
महत्वपूर्ण निर्णय लेना हो बैठक में यदि, बेहतर हो बैठक से पूर्व पी लें आप एक गिलास पानी।।
पेट साफ रखने के लिए सदैव अच्छा है जो सुबह-सुबह रोज, खाली पेट पी लें दो गिलास पानी।
नाश्ते के आधे घंटे पूर्व तथा आधे घंटे पश्चात अच्छा रहता है पी लें जो एक-एक गिलास पानी।।
सुबह व शाम के भोजन के 40 मिनट पूर्व व 40 मिनट पश्चात, पिएँ एक-एक गिलास पानी।
प्रत्येक शाम को एक-एक घंटे के अंतराल पर अच्छा है सभी को पीना एक-एक गिलास पानी।।
अधिकांश लोग यही समझ नहीं पाते कि ठंडा जल पीना अच्छा होता है या पीना गर्म पानी।
मेटाबौलिज्म स्तर बढ़ने से अतिरिक्त मोटापा घटेगा, जो पिएंगे आप एक गिलास गर्म पानी।।
आपके स्वास्थ्य को अतिरिक्त लाभ मिलेगा यदि पिया, शहद व नींबू का रस मिला गर्म पानी।
त्वचा के संक्रमण व मुहांसों की समस्या से निजात मिलेगी, पिएंगे जो आप गर्म पानी।।
आंतों के सही कार्य करने से कब्ज नहीं होता, यदि सोने से पूर्व पिएंगे आप गर्म पानी।
सर्दी, खांसी व गले के संक्रमण में लाभ मिलेगा, जो अदरक उबालकर पिएंगे गर्म पानी।।
आपकी रक्त वाहिकाओं में खून पतला होने से हानि पहुँचेगी, पिएंगे आप जो अत्यंत गर्म पानी।
गुर्दों को भी नुकसान पहुंचता है इसलिए नहीं पीना चाहिए बहुत ठंडा या बहुत गर्म पानी।।
झील, तालाब, कुओं का पानी असुरक्षित होने के कारण नहीं पीना चाहिए कभी ऐसा पानी।
उल्टी, दस्त, मिचली, पेट दर्द व एंठन हो सकती है जो आपने पिया इन स्रोतों का पानी।।

हिंदी है भारत की भाषा

सी.पी. प्रजापति
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

हिंदी है भारत की भाषा, इसका खूब प्रचार करो।
पूरी होगी मन की अभिलाषा, इसका तनिक विचार करो।
हिंदी तो अनमोल निधि है, जीने की ये सरल विधि है,
निराशा से चारों ओर घिरी है, नजरों से नहीं कभी गिरी है।
विश्व की महारानी बनेगी, बस थोड़ा सा इंतजार करो।
हिंदी जगत जावे बलिहारी, इसे अपनावें सभी नर-नारी।
अंग्रेजी के खिलाफ सभी हैं, इस पर तीखा प्रहार करो।
हिंदी है एक हवा का झोंका, आगे बढ़ने का मिला है मौका।
जीवन में तुम खाओ न धोखा, गलत मार्ग पर जाने से रोका।
बड़ी विचित्र है इसकी महिमा, इसका सदा सत्कार करो।
कम न होगी इसकी गरिमा बस दिल से इसे स्वीकार करो।
सुन्दर हो रह भाषा बोली, मिल के मनाएं ईद और होली।
हिंदी भरे रत्नों की झोली, दुश्मन की भी बनी हमजोली।
कम न होगी इसकी गरिमा, बस दिल से इसे स्वीकार करों।
देश के सोये भाग्य भी जागे, हर रोगों का उपचार करो।
हिंदी है भारत की भाषा, इसका खूब प्रचार करो।

परिणाम

राम जी लाल
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

क्या करूँ आज मैं फिर सजायी जाऊँगी,
कोई देखने आने वाला है।
आज मेरी नुमाइश लगायी जायेगी,
देखेगें सब मुझे पर, मैं किसी को न देख पाऊँगी।
सिर झुकाकर, नजर झुकाकर एक तरफ बिठा दी जाऊँगी,
पेपर दे रही हूँ जैसे अध्यापक के सामने।
चले गये वो लोग जिन्होंने लगायी थी नुमाइश मेरी,
फेल होऊँगी या पास, इसी बात से बैचेन है मेरा मन।
आ गया परिणाम नुमाइश देखने वालो का,
नुमाइश पसन्द नहीं आयी।
क्या कहूँ अपने दिल से कि
मैं फेल नहीं हुई, मुझे फेल कर दिया गया।

आमोद प्रमोद प्रभाग

प्रकृति के प्रति आभार

अरूण कुमार
लाल बहादुर शास्त्री गन्ना किसान संस्थान, लखनऊ

परम पुनीत प्रकृति ने हमको, पैदा कर पनपाया है।
हमने उसके उपकारों का, ये क्या मोल चुकाया है।।
जिसने पुतले में प्राणों को डाल, सजीव बनाया है।
फिर श्वासों की लय देकर, जीवन का छन्द रचाया है।।
जिसने सुख के साधन दे, आनन्द सुधा बरसाया है।
दुख की भट्टी में तप-तप कर, कुन्दन सा निखराया है।।
अपने सुख के कारण हमने, उसको दुःख पहुँचाया है।
उसके अंगों को बेच-बेचकर, अपना ऐश्वर्य बढ़ाया है।।
सोचो उसके उपकार हमें, जल देकर जीवनदान दिया।
हमने उस घट में अन्जाने, घर से लाकर विष डाल दिया।।
उसने धन धान्य उगाने को, धरती माँ सा उपहार दिया।
हमने अपनी करतूतों से, ऊसर बंजी साकार किया।।
अखबारों में क्या पढ़ा कभी, लोगों से कभी सुना है क्या?
माँ के आगे उसका बेटा भी, भूखा कभी मरा है क्या।।
तैंतीस करोड़ बच्चे थे जब, तब भी वह अन्न खिलाती थी।
उसको कुछ साधन दो मत दो, वह फिर भी अन्न खिलाती थी।।
अब एक अरब बच्चें हैं जब, तब भी सबको धन-धान्य दिए।
पर अन्धी विकास की आँधी में, हमने माँ को विषदान दिए।।
उसका जीवांश मिटा डाला, इतने विष का उपयोग किया।
सारा जलस्तर गिरा दिया, इतना अनुचित उपभोग किया।।
माँ कितनी भी सक्षम हो पर, हर हवस नहीं पूरी होती।
बच्चे की अनुचित मांगों की, हर आस नहीं पूरी होती।।
प्रकृति ने अपने अंश सहित, गौ माता का उपहार दिया।
जिसने पशु होकर भी मानव को, माँ सा प्यार दुलार दिया।।
अपने बच्चों का पेट काटकर, हमें दूध का दान दिया।
अपने बच्चे को बैल बनाकर, खेती को वरदान दिया।।
उसके गोबर से बनी खाद ने, फसलों का उद्धार किया।
गौ मूत्र बनी औषधियों से, हम सबका उपचार किया।।
पर उसी गाय माता को हमने, क्या अनुपम उपहार दिया।
यदि दूध दिया थोड़ा भी कम, तो हमने उसको मार दिया।।
गौ रक्षा के बिन जीवन की, रक्षा सम्भव कैसे होगी।
जीवन रेखा की सेवा बिन, मेवा सम्भव कैसे होगी।।
सोचों कही न ऐसा हो, माँ अपना जल वापस ले ले।।
प्रकृति से जितना लें उतना, उसके पोषण का ध्यान करें।
उतना लें जितना हक बैंठे, प्रतिपल शोषण का ध्यान करें।।
प्रकृति, धरती, गौ गंगा से, अब क्षमा याचना करनी है।
माँ तो माँ है बिसरा देगी, बस विनय वन्दना करनी है।।
अब भी है अवसर आओ सब, मिलकर संकल्प महान करें।
प्रकृति के थोड़े ऋण देकर, फिर उसको जीवनदान करें।।
धरती में जहर न डालेगें, यदि इतना ही संकल्प करें।
सब कुछ उपलब्ध हमें है, बस, समुचित उपभोग विकल्प करें।।
आओ हिम्मत करें अगर, मिलकर पैंतालिस कोटि युवा।
उस माँ को फिर कैसी चिन्ता, जिसके सम्बल हों, कोटि युवा।।
अगर आज चेतना नहीं लाए, तो कल पछताना होगा।
पानी पीने की खातिर भी, दूर देश में जाना होगा।।
हवा जहर कर डाली तो फिर, इतने *मास्क* कहाँ पाओगे।
लगा सिलैण्डर आक्सीजन के, कितने दिन तक जी पाओगे।।
धरती यदि बंजर कर ली, तो कितने दिन उपवास करोगे।
आने वाली संततियों का, बोलो कैसे त्रास हरोगे।।
करना क्या है? पूछ रहे हो, कुछ भी कठिन नहीं करना है।
केवल स्वार्थों से बचना है, सबका सदुपयोग करना है।।
जो माँ ने उपहार दिए हैं, उस पर सब जीवों का हक है।
प्रकृति जितनी मानव की है, उतना सब जीवों का हक है।।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–3), लखनऊ

छमाही प्रगति

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय-3) का अध्यक्षीय कार्यालय है। वर्तमान में लखनऊ स्थित 70 केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों द्वारा राजभाषा के कार्यों के मूल्यांकन की जिम्मेदारी भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान के पास है। इसी क्रम में दिनांक 26 नवम्बर 2019 को संस्थान में नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय-3), लखनऊ की वर्ष 2019-20 की द्वितीय बैठक का आयोजन किया गया। जिसमें नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय-3), लखनऊ के सदस्य कार्यालयों के प्रमुखों एवं हिंदी अधिकारियों ने भाग लिया। इस बैठक की अध्यक्षता, संस्थान के निदेशक एवं नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय-3), लखनऊ के अध्यक्ष, डॉ. ए.डी. पाठक ने की। उक्त बैठक में हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने वाले 10 कार्यालयों एवं राजभाषा पत्रिका हेतु 4 कार्यालयों को पुरस्कृत किया गया। इस बैठक में डॉ. ए.के. साह, सचिव, नराकास, (कार्यालय-3) ने अप्रैल से सितम्बर 2019 के बीच सदस्य कार्यालयों द्वारा राजभाषा में किए गए कार्यों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की। बैठक का संचालन श्री अभिषेक कुमार सिंह, राजभाषा अधिकारी, भाकृअनुप-भा.ग.अनु.सं., लखनऊ ने किया।

हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने वाले कार्यालयों की सूची

क्र.सं	कार्यालय का नाम	स्थान
1	मण्डल रेल प्रबन्धक कार्यालय, उत्तर रेलवे, लखनऊ	प्रथम
2	सीएसआईआर–भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ	द्वितीय
3	मण्डल रेल प्रबन्धक कार्यालय, पूर्वोत्तर रेलवे, लखनऊ	तृतीय
4	पुलिस उप महानिरीक्षक ग्रुप केन्द्र, के.रि.पु.बल, बिजनौर, लखनऊ	तृतीय
5	कार्यालय कमान्डेण्ट–91 बटालियन, द्रुत कार्य बल, के.रि.पु.बल. ग्रुप केंद्र, लखनऊ	तृतीय
6	क्षेत्रीय पासपोर्ट कार्यालय, लखनऊ	चतुर्थ
7	उत्तर रेलवे रेल इंजन कारखाना, चारबाग, लखनऊ	पंचम
8	अनुसंधान अभिकल्प और मानक संगठन (आर.डी.एस.ओ.), मानक नगर, लखनऊ	षष्ठ
9	भाकृअनुप–राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ	सप्तम
10	वेतन लेखा कार्यालय (अन्य श्रेणी), सैन्य चिकित्सा दल, लखनऊ	अष्टम

पत्रिका हेतु पुरस्कृत कार्यालय एवं पत्रिका का नाम

क्रम सं.	कार्यालय का नाम	स्थान
1	**मत्स्य लोकः** भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ	प्रथम
2	**विष विज्ञान संदेशः** सीएसआईआर–भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ	द्वितीय
3	**सारंगः** मण्डल रेल प्रबन्धक कार्यालय, उत्तर रेलवे, लखनऊ	तृतीय
4.	**सुगंधः** वैऔअप–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, लखनऊ	चतुर्थ

शब्दकोश

A

Apathy	उदासीनता
Apex	शीर्ष, शिखर, पराकाष्ठा
Apex body	शीर्ष निकाय
Appeal	अपील
Appearance	हाजिरी, आकृति, रूप
Appendix	परिशिष्ट
Applicant	आवेदक
Apply	आवेदन करना
Appointee	नियुक्त व्यक्ति
Appointing authority	नियुक्ति प्राधिकारी
Appointment	नियुक्ति
Appointment letter	नियुक्ति पत्र
Appraisal	मूल्यांकन, आँकना
Appropriate	उपयुक्त, उचित
Appropriate action	उचित कार्रवाई
Approval	अनुमोदन
Approximately	सन्निकटतः, लगभग
Area	क्षेत्र
Armed forces	सशस्त्र बल
Arrange	व्यवस्थित करना
Arrangement	व्यवस्था
Arrival	आगमन
Article	अनुच्छेद, वस्तु
Articles of association	संस्था के अंतर्नियम
Artificer	परिशिल्पी, कारीगर
Artisan	कारीगर, शिल्पी
Arts and crafts	कला और शिल्प
Ascending Order	आरोही क्रम
Ascertain	सुनिश्चित करना
Aspect	पहलू, पक्ष
Aspersion	लांछन, निन्दा, बदनामी
Assailant	हमलावर
Assassination	हत्या, वध
Assault	हमला, प्रहार
Assayer	पारखी
Assay master	अधिपारखी, महापारखी
Assemble	जुटना, एकत्र होना
Assembly	सभा
Assent	अनुमति, सहमति, स्वीकृति
Assert	दृढ़ता पूर्वक कहना
Ascending order	आरोही क्रम
Assessed value	निर्धारित मूल्य
Assessment	निर्धारण
Assessment year	निर्धारण वर्ष
Assignment	कार्यभार, नियुक्ति, सुपुर्द काम
Assistance	सहायता, मदद
Associate	सह, सम्मिलित करना, साथी
Association	संघ, सभा, समाज, सम्मेलन
Assumption	ग्रहण, मान्यता, कल्पना
Assure	आश्वस्त करना
At discount	बट्टे पर
Atmosphere	वायुमंडल, वातावरण
Atomic power	परमाणु शक्ति
At par	सममूल्य पर, बराबर मूल्य में
At premium	बढ़े मूल्य पर, अधिमूल्य पर
Attach	साथ लगाना, सम्बद्ध होना
Attached office	संलग्न कार्यालय
Attachment	संलग्नक
Attachment of earnings	कमाई की कुर्की

Attachment order	कुर्की आदेश
Attaining majority	व्यस्कता प्राप्त करना
Attainment	प्राप्ति, उपलब्धि, गुण
Assurance company	बीमा कंपनी
Assurance policy	बीमा नीति
Attached office	संलग्न कार्यालय
Attempt	प्रयत्न करना
Attendance	उपस्थिति, हाजिरी, सेवा
Attendance record	उपस्थिति रिकार्ड
Attendance slip	उपस्थिति पर्ची
Attendance time	उपस्थिति समय
Attention	ध्यान, सावधान
Attest	अनुप्रमाणित, प्रमाणिम करना
Attested copy	अनुप्रमाणित प्रति
Attitude	अभिवृत्ति, नजरिया, प्रवत्ति
Attractive prices	आकर्षक कीमत
Attractive salary	आकर्षक वेतन
Attributable	श्रेय देना
Attrition	क्षयण, घिसाव, रगड़
Auction	नीलामी
Auction catalogue	नीलामी सूची
Auctioneer	नीलामीकर्ता
Auctioneer commission	नीलामीकर्ता का कमीशन
Auctioneering agreement	नीलामी करारनामा
Auction sale	नीलामी बिक्री
Audible	श्रव्य, सुनाई देने योग्य
Audience	श्रोता
Audience research	श्रोता अनुसंधान
Audio-typist	श्रव्य टंकण
Audio-visual display	दृश्य–श्रव्य प्रदर्शन
Audio-visual publicity	दृश्य–श्रव्य प्रचार

Audit	लेखा–परीक्षा
Audited accounts	संपरीक्षित लेखा
Audited balance sheet	लेखा परीक्षित तुलनापत्र
Audit fee	लेखा–परीक्षा शुल्क
Auditing	लेखा–परीक्षा करना
Audition test	स्वर परीक्षण
Audit objection	लेखापरीक्षा आपत्ति
Auditor's report	लेखापरीक्षक की रिपोर्ट
Auditorium	प्रेक्षागृह
Audit paragraph	लेखापरीक्षा पैरा
Audit purview	लेखा परीक्षा क्षेत्र
Audit report	लेखापरीक्षा रिपोर्ट
Augmentation	आवर्धन, बढ़ाव, वृद्धि
Austerity	मितोपभोग, सादगी, तपस्या
Authentic	प्रामाणिक
Available	प्राप्य, उपलब्ध
Avenues of promotion	पदोन्नति के अवसर
Average	औसत, सामान्य
Avoid	वर्जन करना, परिहार करना
Await	प्रतीक्षा करना
Award	पंचाट, अधिनिर्णय, इनाम
Awareness	जागरूकता, भान, बोध
Awkward	भद्दा
Axiom	स्वयंसिद्ध, सिद्धान्त, सूक्ति

B

Budget	बजट, आय–व्ययक
Budget provisions	बजट प्रावधान
Bumper crop	भरपूर पैदावार
Buyer	खरीदार
Budget allocation	बजट आवंटन
Budget grant	बजट अनुदान

Bulk	थोक
By hand	दस्ती, हाथ से
Bye law	उपविधि
By force	बलपूर्वक
By instalment	किश्तों में
By post	डाक द्वारा

C

Cobering note	सह टिप्पणी
Creation	सृजन, रचना
Credibility	विश्वसनीयता, साख
Credit balance	जमा शेष
Crew	कर्मी दल
Cumulative	संचयी
Curtain	पर्दा, बाधा, नाटक, मृत्यु
Cyclical demand	चक्रीय मांग, आवर्ती मांग

D

Due	देय
Due date	नियत तारीख
Duplicate	दूसरी प्रति
Duty	कर्तव्य, फर्ज, चुंगी
Dynamic	गतिशील

E

Express delivery	तुरंत वितरण
Expunction	निकाल देना, हटा देना
Eye witness	चश्मदीद गवाह

F

Fumigator	धूमक
Function	समारोह, उत्सव, काम
Functional	प्रयोजनमूलक, क्रियात्मक
Functionary	कार्यकर्ता
Fund	निधि

G

Guilty	दोषी
Guilty conscious	अपराधबोध ग्रस्त
Groupism	गुटबाजी
Group pension plan	समूह पेन्शन योजना
Groupwise	समूहवार
Guard of honour	सैनिक सलामी

H

Hue and cry	पीछा, शोरगुल
Humane	मानवोचित, दयालु
Humanitarian grounds	मानवीय आधार
Humane rights	मानवाधिकार
Humiliation	अपमान, निरादर, मान–हानि
Huntment	अस्थायी इमारत
Hygiene	स्वास्थ्य विज्ञान
Hypothecation	दृष्टिबंधक, मानबंध आडमान

I

Irrecoverable	वापस न मिल सकने योग्य
Irrational	अज्ञानी, मूर्ख, तर्कहीन
Irregular	अनियमित
Irregularity	अनियमितता
Irrelevant	असंबंध
Irresponsible	गैर–जिम्मेदार
Irrigation works	सिंचाई निर्माण कार्य
Irrelevant	अप्रासंगिक, विसंगत
Isolated post	एकाकी पद
Issue	सन्तान, समस्या, निर्गम
Issue diary	निर्गम डायरी
Item	मद
Itemwise	मदवार

J

Jurisdiction	अधिकार क्षेत्र, इलाका
Justify	औचित्य, तर्कसंगति
Juvenile	बाल, नाबालिग व्यक्ति

K

Kith and kin	नजदीकी रिश्तेदार
Knock-off	काम रोकना, चुराना
Know-how	जानकारी
Knowingly	जानबूझकर
Knowledgeable	जानकार

L

Lock in period	परिबंधन अवधि
Lockout	तालाबंदी
Locus standi	अधिस्थिति
Long term	दीर्घकालिक
Loyalty	ईमानदारी, निष्ठा, स्वामिभक्ति

M

Mutual Understanding	आपसी समझ
Myth	मिथक

N

Notification	अधिसूचना
Notional pay	कल्पित वेतन
Numerical order	संख्या क्रम
Nutrition	पोषण

O

Overleaf	पृष्ठ के दूसरी तरफ
Overtime allowance	समयोपरि भत्ता
Ownership	सवामित्व

P

Pursuit	काम—काज, शौक, कोशिश
Purview	कार्य क्षेत्र, दायरा, सीमा
Put up slip	पेश पर्ची

Q

Quorum	गणपूर्ति, कोरम

R

Rural development	ग्राम विकास
Rural upliftment	ग्रामोत्थान
Rustication	निष्कासन, निस्सारण

S

Superannuation	अधिवर्षिता
Superfast charge	अतिद्रुत प्रभार
Superfluous	अतिरिक्त
Supplement	परिशिष्ट
Supplementary	अनुपूरक
Supplier	प्रदायक
Surcharged	अधिभारित
Surplus	अधिशेष
Survey	सर्वेक्षण
Suspension	निलंबन
Sustainable	धारणीय, चिरस्थायी
Sweepage	बटोरन
Swimming pool	तरण ताल
Syallabus	पाठ्य विवरण
Symposium	परिसंवाद
Symptom	लक्षण
Synopsis	रूपरेखा

T

Trace	असर, खोजना, चिन्ह
Traction	कर्षण, खिंचाव
Trade	व्यापार
Trainer	प्रशिक्षक

Training centre	प्रशिक्षण केन्द्र
Trait	लक्षण
Transcription	प्रतिलेखन
Transformation	रूपांतरण
Translation	अनुवाद
Transliteration	लिप्यंतरण
Trap	फंदा, जाल, फंस जाना
Tripel	त्रिपक्षीय
Tribute	श्रद्धांजलि, सम्मान की वस्तु
Tariff	दरसूची, कीमत, शुल्क
Tarnish	मलिन करना
Task	कार्य
Task force	कार्यदल
Taster	चखनिया
Typical	प्ररूपी, विशिष्ट, अनूठा
Typing	टंकण
Typescript	टाइप प्रति

U

Utilization certificate	अधोनीत शेष

V

Vouched	प्रमाणित

W

Work book	कार्यपुस्तक
Work culture	कार्य संस्कृति
Worker' compensation	कामगार क्षतिपूर्ति
Worker mobility	कामगार गतिशीलता
Working	कार्यचालन
Working committee	कार्य समिति
Working days	कार्य–दिवस
Working hours	कार्य–समय
Working knowledge	कार्यसाधक ज्ञान
Work order	कार्य आवेश
Work sheet	कार्य–पत्रक
Work stoppage	काम बंदी
Wounded	घायल
Writ-up	आलेख, समीक्षा
Walk in interview	प्रवेश साक्षात्कार
Wastage	बर्बादी, क्षति, नुकसान
Weathering	अपक्षय
Welfare	कल्याण
Wildlife	वन्यजीव
Withdrawal	वापसी
Without permission	बिना अनुमति
Work study	कार्य अध्ययन
Workshop	कार्यशाला
Worth recording	रिकार्ड के लिए उपयुक्त
Write off	बट्टे खाते में डालना

X

Xylograph	काष्ठ चित्र
Xyster	खुरचनी

Y

Yucky	घिनौना
Yummy	बढ़िया, स्वादिष्ट, मजेदार

Z

Zotheca	निवास कक्ष
Zymotic	खमीरी

संकलनकर्ता
(अभिषेक कुमार सिंह एवं ब्रह्म प्रकाश)

समाचार प्रभाग

राष्ट्रीय सहारा
राष्ट्रीयता ■ कर्त्तव्य ■ समर्पण

गन्ना अनुसंधान संस्थान राजभाषा पुरस्कार से सम्मानित

पुरस्कार प्राप्त करते निदेशक अश्वनी दत्त पाठक।

आलमबाग-लखनऊ (एसएनबी)। राष्ट्रीय कृषि विज्ञान परिसर नई दिल्ली में आयोजित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के 91वें स्थापना दिवस के अवसर पर आयोजित भव्य समारोह में देश के लगभग 40 से अधिक संस्थानों के साथ पर्तिस्पर्धा करते हुए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ को बड़े संस्थानों की श्रेणी में हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए हिंदी का सर्वाधिक प्रयोग करने के लिए राजर्षि टंडन राजभाषा पुरस्कार योजना के अंतर्गत प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त हुआ। संस्थान मे राजभाषा प्रभारी व प्रधान वैज्ञानिक डॉ. एके साह ने पुरस्कार के बारे में जानकारी देते हुए बताया कि राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए प्रति वर्ष संस्थान द्वारा विभिन्न प्रकार के रोचक तथा बौद्धिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। साथ ही छमाही अंतराल पर पत्रिका इक्षु का प्रकाशन किया जाता है। संस्थान द्वारा प्रत्येक वर्ष विभिन्न तकनीकों पर उत्कृष्ट साहित्य भी हिंदी में प्रकाशित किए जाते है। इन सभी प्रयासों को सराहते हुए लखनऊ संस्थान को यह पुरस्कार दिया गया है। स्थापना दिवस एवं पुरस्कार वितरण समारोह में रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी, उत्तर प्रदेश एवं पूर्व सचिव कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग, भारत सरकार प्रोफेसर पंजाब सिंह व सचिव, शिक्षा विभाग कृषि अनुसंधान, भारत सरकार एवं महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद डॉ. त्रिलोचन सिंह और उप महानिदेशक (कृषि प्रसार), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एवं निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली डॉ. एके सिंह की गरिमामयी उपस्थिति में डॉ. अश्वनी दत्त पाठक, निदेशक, भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ संग राजभाषा हिंदी अधिकारी अभिषेक कुमार सिंह ने पुरस्कार प्राप्त किया।

नवभारत टाइम्स
नवभारत टाइम्स। कानपुर (कानपुर व लखनऊ में एक साथ प्रसारित)। गुरुवार, 18 जुलाई 2019

सिटी हलचल

आईआईएसआर को मिला पहला पुरस्कार

■ एनबीटी, लखनऊ : भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान(आईआईएसआर) के 91वें स्थापना दिवस पर भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान को राजश्री टंडन राजभाषा पुरस्कार योजना 2017-18 के तहत पहला पुरस्कार मिला है। संस्थान के निदेशक डॉ. अश्विनी दत्त ने बताया कि यह पुरस्कार संस्थान को हिंदी भाषा में बेहतरीन काम करने के लिए दिया गया है।

टाइम्स। कानपुर (कानपुर व लखनऊ में एक साथ प्रसारित)। बुधवार, 24 जुल

गन्ना अनुसंधान संस्थान में लगेंगे एक हजार पौधे

■ एनबीटी, लखनऊः रायबरेली रोड स्थित भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में मंगलवार को पौधरोपण कार्यक्रम में ज्यादा से ज्यादा पौधे लगाने की अपील की गई। कार्यक्रम में बतौर मुख्य अतिथि चंद्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. सुशील सोलोमन मौजूद रहे। संस्थान के निदेशक डॉ. अश्विनी दत्त पाठक ने सभी वैज्ञानिकों और कर्मचारियों से ज्यादा से ज्यादा पौधे लगाने की अपील की। साथ ही आसपास के लोगों को भी पौधरोपण के प्रति जागरूक करने के लिए कहा। उन्होंने बताया कि एक माह तक चलने वाले पौधरोपण माह में संस्थान एक हजार पौधे लगाएगा। संस्थान की ओर से जिन गांवों को गोद लिया गया है, उन्हें भी ज्यादा से ज्यादा पौधे लगाने के लिए प्रेरित किया जाएगा।

91वीं बटालियन को मिला राजभाषा पुरस्कार

लखनऊ | निज संवाददाता

द्रुत कार्य बल (आरएएफ) की 91 बटालियन को राजभाषा हिन्दी के उत्कृष्ट कार्यन्वयन के लिए तीसरा स्थान मिला है। भारत सरकार के 72 कार्यालयों में से यह सम्मान 91 वीं बटालियन आरएएफ को मिला।

भारतीय गन्ना संस्थान में हुए नगर राजभाषा कार्यन्वयन समिति की छमाही बैठक के बाद 91वीं बटालियन के कमांडेंट वी प्रताप सिंह को पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्होंने निरीक्षक शमीम अख्तर को धन्यवाद दिया।

भारतीय गन्ना संस्थान में बुधवार को 91 बटालियन के कमांडेंट वी प्रताप सिंह को पुरस्कार प्रदान किया गया।

24 जुलाई 2019 दैनिक जागरण 7

नीम, पीपल, पाकड़ आदि पौधे रोपे गए

रायबरेली रोड स्थित भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में मंगलवार को वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। संस्थान के निदेशक डॉ .एडी पाठक सहित वैज्ञानिकों व कर्मचारियों ने परिसर फाइकस पांडा के पेड़ लगाए। डॉ .पाठक ने बताया कि 500 एकड़ में फैले संस्थान में एक माह के दौरान 1000 से अधिक नीम, पीपल, पाकड़, फाइकस जैसे पौधे लगाए जाएंगे। इस अवसर पर मुख्य अतिथि चंद्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ .सुशील सोलोमन ने पर्यावरण सरंक्षण पर बल दिया। निदेशक डॉ .एडी पाठक ने कार्यकर्ताओं से अपील की कि सभी लोग व्यक्तिगत स्तर पर अधिक से अधिक पौधे लगाएं।

दैनिक जागरण द्वारा आयोजित पौधरोपण कार्यक्रम में पौधे लगाते भारतीय गन्ना अनुसंधा कर्मचारी। इस दौरान कर्मचारियों ने पौधों की देखभाल का भी संकल्प लिया। • जागरण

बुधवार, 24 जुलाई 2019 21
हिन्दुस्तान

भारतीय गन्ना अनुसधान संस्थान में पौधरोपण किया

लखनऊ | हिन्दुस्तान संवाद

एक महीने चलने वाले पौधरोपण अभियान की शुरुआत भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान के परिसर में कुलपति ने पौधे लगाकर किया। पौधों की देखरेख की जिम्मेदारी संस्थान में लैंडस्केप राजीव रंजन को सौंपी गई है।

मंगलवार को भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान रायबरेली रोड लखनऊ, परिसर में पौधारोपण का शुभारंभ चंद्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. सुशील सोलोमन ने किया। संस्थान के निदेशक डॉ. एडी पाठक ने सभी वैज्ञानिकों तथा कर्मचारियों से अपील की, कि वे अपने घर के आसपास अधिक से अधिक पौधे लगाएं और जनमानस को पौधरोपण तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक करें।

संस्थान के वैज्ञानिक तथा मीडिया प्रभारी डॉ. एके साह ने बताया कि एक माह तक चलने वाले कार्यक्रम में 1000 फलदार, औषधीय गुणों से भरपूर और छायादार पौधे संस्थान परिसर में लगाए जाएंगे। [illegible] साथ ही दूसरे लोगों [illegible] पौधे [illegible] के लिए प्रेरित किया [illegible]।

राष्ट्रीय पशु बीमारी नियंत्रण एवं कृत्रिम गर्भाधान का शुभारम्भ : 11 सितम्बर, 2019

संस्थान में वृक्षारोपण : 23 जुलाई, 2019

राष्ट्रीय कार्यशाला: 'गन्ना किसानों की आय दोगुनी करने की चुनौतियाँ और भविष्य की रणनीति'

हिंदी पखवाड़े के दौरान आयोजित कार्यक्रम : 14–30 सितम्बर, 2019

हिंदी पखवाड़े के दौरान आयोजित कार्यक्रम : 14–30 सितम्बर, 2019

हिंदी कार्यशाला : 24 सितम्बर, 2019

हिंदी कार्यशाला : 21 दिसम्बर, 2019

नराकास बैठक : 26 नवम्बर, 2019

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

विजन

उत्कृष्ट, वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्धात्मक तथा गन्ने की खेती के लिए एक अग्रणीय अनुसंधान संस्थान के रूप में कार्य करना।

मिशन

भारत की गन्ना एवं ऊर्जा की भावी आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु गन्ने के उत्पादन, उत्पादकता, लाभप्रदता तथा स्थायित्व को बढ़ाना।

अधिदेश

- गन्ने के उत्पादन एवं सुरक्षा तकनीकों के सभी पहलुओं पर मूलभूत एवं अनुप्रयुक्त शोध करना तथा उपोष्ण क्षेत्रों हेतु नवीन प्रजातियों के प्रजनन का कार्य करना
- गन्ने की उन्नत प्रजातियों एवं प्रौद्योगिकियों के विकास हेतु राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर समन्वित शोध एवं निगरानी करना
- उन्नत तकनीकी का प्रसार एवं प्रशिक्षण।

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

army printing press

इक्षु राजभाषा पत्रिका वर्ष 8 अंक 2 जुलाई–दिसंबर, 2019